इतिहास-शिक्षण

श्रद्धेय गुरुवर

श्री बी० पी० जौहरी

प्रिंसिपल, आर० ई० आई० टीचर्स ट्रेनिंग कॉलिज

दयालबाग

को

सादर समर्पित

प्रस्तावना

स्वतन्त्र भारत में राष्ट्र-भाषा के पद पर हिन्दी का प्रतिष्ठापन और देश के अनेकों विश्वविद्यालयों में सघीय भाषा का शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी को स्थानापन्न करने के कारण छात्रों को बहुत समय से एक ऐसी पुस्तक का अभाव खटक रहा था, जो उन्हें उनकी मातृभाषा के द्वारा इतिहास के गूढ़ तत्वों का सुगम एव सरल अर्जन करने में सहायता कर सके। इसी दृष्टिकोण को अपने समक्ष रख कर हमने बी० टी०, एल० टी०, बी० एड० एव इतिहास-शिक्षण में विशेष योग्यता प्राप्त करने वाले छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये प्रस्तुत पुस्तक में विषय का विस्तृत प्रतिपादन करने का प्रयास किया है। प्रशिक्षण महाविद्यालयों के छात्राध्यापकों की व्यावहारिक कठिनाइयों को ध्यान में रखकर इस पुस्तक में इतिहास के समस्त अंगों का सरल और सुबोध भाषा में विवेचनात्मक ढग से विवरण दिया गया है, वह वस्तुत: उनके लिये लाभप्रद सिद्ध होगी। हिन्दी पारिभाषिक शब्दों की अनिश्चितता के कारण उनके अंग्रेजी पर्याय यथास्थान कोष्टक में दे दिये गये हैं। प्रश्न-शैली की जानकारी के लिये प्रत्येक अध्याय के अन्त में उससे सम्बन्धित प्रश्न हैं, जो कि विभिन्न विश्वविद्यालयों में पूछे जा चुके हैं। पुस्तक के अन्त में पाठ-सूत्र के नमूने, समय-रेखायें, आदर्श प्रश्न-पत्र तथा १६६१ के लिये सम्भावित प्रश्नों की सूची दे दी गई है, जो छात्रों के लिये हितकर सिद्ध होगी।

दयालबाग आगरा
२-५-६०.

गुरसरनदास त्यागी

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठ

अध्याय   पृष्ठ

इतिहास-शिक्षण

(Teaching of History)

for

B. T.; L. T.; B. Ed. and Others

लेखक

श्री गुरसरन दास त्यागी, एम० ए०, एम० एड०

लेक्चरार इन ऐजूकेशन

आर० ई० आई० ट्रेनिंग कॉलेज,

दयालबाग, आगरा

विनोद पुस्तक मन्दिर

हास्पिटल रोड, आगरा

प्रकाशक—
राजकिशोर अग्रवाल
विनोद पुस्तक मन्दिर
हॉस्पिटल रोड, आगरा

प्रथम संस्करण
१६६०
मूल्य ४)

मुद्रक—राजकिशोर अग्रवाल, कैलाश प्रिंटिंग प्रेस,
बागमुजफ्फरखाँ, आगरा

अध्याय—१

अध्याय—१

इतिहास क्या है (What is History)

इतिहास का उद्गम तथा अर्थ :—(History : Its Origin and Meaning):—यह सत्य है कि मानव लाखों वर्षों से इस पृथ्वी पर रह रहा है। लेखन कला का भी उसको ६००० वर्ष से ज्ञान प्राप्त है। इसके अतिरिक्त वह भूमि जोतने की क्रिया को इससे भी पहले से जानता है। इतिहास इससे भी कहीं अधिक प्राचीन है। वस्तुतः मानव का अध्ययन करने के कारण इतिहास का प्रारम्भ उसी समय से होता है जब से मानव पृथ्वी पर अवतरित हुआ है, परन्तु मानव के कार्यों तथा विचारों को हेरोडोटस (Herodotus) ने ५०० ई० पू० में एक क्रम दिया। इसलिये उसको इतिहास का जनक कहा जाता है। उसने जो घटनाएँ विश्व में घटीं, उनके विषय में अन्वेषण किया और इन अन्वेषणों के आधार पर उन घटनाओं का वर्णन किया। इन वर्णनात्मक घटनाओं को उसने इतिहासों (Histories) का नाम दिया। वह प्रथम व्यक्ति था जिसने घटनाओं को कथा रूप में लिखा और इसीलिये उसको कथात्मक इतिहास का जन्मदाता माना जाता है। वस्तुतः उसी के अध्यवसाय ने इतिहास नामक विज्ञान की उत्पत्ति की।

प्रबोधक इतिहास का उद्गम (Origin of Antique History) :— जिस प्रकार हेरोडोटस ने कथात्मक इतिहास को जन्म दिया उसी प्रकार ४११ ई० पूर्व में थ्यूसीडाइड्स (Thucydides) ने प्रबोधक इतिहास को जन्म दिया। इसने तथ्यों की उपयोगिता को अपना पथ-प्रदर्शक बनाया। उसने इन तथ्यों का संकलन करके उस समय की राजनैतिक दशा से उनका सम्बन्ध स्थापित किया और इस प्रकार के वर्णन को प्रबोधक या उपदेशात्मक इतिहास का नाम दिया।

वैज्ञानिक इतिहास का उद्गम (Origin of Scientific History):— इसके उद्गम के लिये विश्व जर्मन जाति का ऋणी है। सर्वप्रथम १९वीं शताब्दी में रेंक (Ranke) ने इतिहास का निर्माण वैज्ञानिक ढङ्ग से किया। १८२४ ई० में उसकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें उसने यथार्थता को प्रकट किया और निष्पक्ष रूप से घटनाओं का वर्णन किया। बाद में निबूर (Niebhur) ने इस क्षेत्र में बहुत बड़ा कार्य किया। इसका प्रभाव योरोप के विभिन्न देशों पर भी पड़ा।

इतिहास का अर्थ (Meaning of History) :—'History' शब्द का उद्गम ग्रीक शब्द Historia से हुआ है जिसका अर्थ है, "वास्तविक रूप से क्या घटित हुआ"। इस प्रकार सारांश रूप में इतिहास कुछ नहीं है, बल्कि निरन्तर घटनाओं का लेखा-जोखा है। शब्द कोष (Dictionary) के अनुसार इस शब्द का अर्थ भी इसी प्रकार है अर्थात् 'इतिहास सार्वजनिक घटनाओं का लेखा है'। यदि हम शाब्दिक अर्थ को लेते हैं तो हमें तीन दशाएँ प्राप्त होती हैं। प्रथम दशा यह है कि जो घटनाएँ इतिहास के द्वारा प्रतिपादित की जायँ वे सार्वजनिक घटनाएँ हैं। दूसरी यह है कि यह लेखा अविच्छन्नता बनाये रखे अर्थात् यह घटनाओं को एक फिल्म की तरह प्रस्तुत करे। एक घटना के पश्चात् दूसरी घटना आवे, उनमें विराम नहीं होना चाहिए। तीसरी यह है कि घटनाओं की इस लड़ी का प्रस्तुतीकरण ऐसे ढङ्ग से किया जावे जिससे चित्र पूर्ण बन जाय।

इतिहास सम्बन्धी धारणाएँ (Conceptions about History):—

इतिहास के सम्बन्ध में अनेक धारणाएं प्रचलित हैं, जिनको उसका वास्तविक रूप न मानकर केवल दूषित रूप ही कहा जा सकता है। कुछ लोग इतिहास को सामाजिक अङ्ग मानते हैं और उनकी यह धारणा है कि इतिहास की सहायता से समाज की रचना में बड़ी सहायता मिलती है। कुछ व्यक्ति इतिहास को कपोल कल्पित कहानियों तथा असत्य तथ्यों का संकलन मात्र समझते हैं। एक शताब्दी पूर्व इतिहास उपन्यास माना जाता था। इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री सर राबर्ट वालपोल (Sir Robert Walpole) को उसकी बीमारी में जब उसकी पत्नी ने इतिहास पढ़ने के लिये दिया तब वालपोल चिल्लाकर बोला, 'हाँ कोई भी वस्तु लेकिन इतिहास नहीं' ("Yes, anything but history")। नैपोलियन (Napoleon) इतिहास को सर्वसम्मत काल्पनिक कहानियाँ कहा करता था। ("What is history," Said Napoleon, "but a fable agreed upon".)। स्पेन्सर (Spencer) का विचार है कि इतिहास पथ-प्रदर्शन के लिये महत्त्वहीन तथा अनुपयुक्त है। उसका कथन है कि 'यदि तुम चाहते हो तो इतिहास के तथ्यों को मनोरंजन के लिये पढ़ो लेकिन यह कहकर अपनी चापलूसी मत करो कि वे शिक्षाप्रद हैं। ("Read them [the facts of history] if you like, for amusement; but do not flatter yourself they are instructive.") फ्रांस में विषयों का निर्धारण करते समय इतिहास को पाठ्य-विषयों में सम्मिलित करने की कुछ निरीक्षकों से जो सलाह ली गई वह अति महत्त्वपूर्ण है। एक निरीक्षक ने कहा कि इतिहास की शिक्षा निरर्थक है। जो पढ़ना जानते हैं वे इतिहास का अपने लिये अध्ययन कर सकते हैं। दूसरे निरीक्षक ने कहा कि इतिहास में शिक्षण असंम्भव है। तीसरे ने कहा कि इतिहास का शिक्षण हानिकारक है। इसके द्वारा छात्रों में वृथा अभिमान विकसित किया जाता है।

जहाँ इतिहास के विषय में इस प्रकार की विचारधाराएं हैं वहाँ दूसरी ओर ऐसे भी विद्वान् हैं जिन्होंने इतिहास को बहुत महत्व प्रदान किया है। क्रामवेल (Cromwell) ने घोषणा की कि इतिहास के रूप

में ईश्वर ने अपने को व्यक्त किया है। फ्रायड (Froude) का विचार है कि इतिहास शताब्दियों से सत्यासत्य की व्याख्या करता चला आ रहा है। जोन्स (Jones) कहता है कि 'इतिहास जीवन के अनुभवों की खान है, और आज का युवक, उसका अध्ययन इसलिए करता है जिससे कि वह जाति के अनुभवों से लाभ उठा सके। ("History is a veritable mine of life experiences and the youth of to-day studies history that he may profit by the experiences of the race")। जिलर (Ziller) ने इतिहास को अन्य विषयों की शिक्षा देने के लिये केन्द्रीय विषय बनाया।

इतिहास सम्बन्धी धारणाओं की आलोचनाः—इतिहास के विषय में इस प्रकार की धारणाएँ बिना किसी आधार के नहीं हैं। ये कुछ न कुछ आधार अवश्य रखती हैं। अतः यह प्रश्न उठता है कि इतिहास के विषय में ये धारणाएँ क्यों बन गई हैं ? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि विभिन्न काल में तथा परिस्थितियों में इतिहास की रचना विभिन्न उद्देश्यों से की गई और प्रत्येक उद्देश्य के अनुसार इतिहास का रूप भी बदलता रहा।

प्राचीन भारतीय इतिहास के दोषः—जब तक लेखन कला का विकास नहीं हुआ था तब तक मौखिक रूप से गद्य या पद्य के रूप में एक सन्तति दूसरी सन्तति को अपने समय की घटनाओं को प्रदान कर देती थी। प्राचीन काल का इतिहास अतीत की घटनाओं का कोई लेखा-जोखा नहीं रखता था। इस प्रकार हम इस काल के इतिहास में निम्नलिखित दोष पाते हैं :—

१—इस काल में इतिहास का कोई वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं था। उसका प्रयोग केवल साहित्य, कला, राजनैतिक तथा धार्मिक कार्यों के प्रचार के लिये किया जाता था।

२—१६ वीं शताब्दी के पूर्व का इतिहास वैयक्तिक अधिक था। वह राजाओं तथा उनके जीवन से ही सम्बन्धित था। उसमें समाज की विवेचना नहीं की जाती थी, अर्थात् सम्पूर्ण समाज की सामाजिक

तथा आर्थिक स्थिति के विषय में कुछ नहीं लिखा जाता था । इसके द्वारा राजाओं की सेनाओं को भी उत्साह प्रदान किया जाता था।

३ इतिहास की सामग्री को किसी व्यवस्थित क्रम में नहीं रखा जाता था । उस समय इतिहास तथा पौराणिक कथाओं में कोई भेद नहीं किया जाता था । उस समय के लेखक शासक का आश्रय प्राप्त करने के लिये उनकी प्रशंसा में इतिहास का निर्माण करते थे, जिसका उद्देश्य उनको प्रसन्न करना था न कि सत्यासत्य की विवेचना करना। उदाहरणार्थ, प्राचीन, राजपूत तथा मुस्लिम काल में चारणों तथा ब्रह्मभट्टों के द्वारा इतिहास राजाओं की प्रशंसा में लिखा जाता था और वे राजा की सेनाओं को उत्साह प्रदान किया करते थे । इस प्रकार इन गाथाओं, विरुदावलियों तथा ऐतिहासिक महाकाव्यों का मुख्य उद्देश्य केवल अपने आश्रयदाताओं का गुणगान करना था।

इतिहास की परिभाषा (Definition of History) :—इतिहास शब्द को दो अर्थों में प्रयोग किया गया है । इसके अर्थ हैं या तो घटनाओं का संकलन या स्वयं एक घटना । इतिहास के निर्माण के लिये घटना का होना आवश्यक है। जब इतिहास स्वयं घटना है तो प्रश्न यह उठता है कि यह घटना कब ?, कहाँ ? कैसे ? और क्यों घटी ? इतिहास इन प्रश्नों का ही उत्तर है। हेनरी जानसन (Henry Johnson) का विचार है कि, "इतिहास विस्तृत रूप में प्रत्येक घटना है जो कि कभी घटित हुई ।" इस प्रकार यह स्वयं अतीत काल से सम्बन्धित है अर्थात् भूत-कालीन घटनाओं का उल्लेख ही इतिहास है । इसका अर्थ यह है कि उसमें प्राचीन काल से लेकर एक क्षण पहले समाप्त हुए समय तक की सभी घटनाओं का वर्णन आ जाना चाहिए। परन्तु इसका आशय यह नहीं है कि अतीत काल में सब जीवों अथवा विश्व में हुई उथल-पुथल का विचार होना भी आवश्यक हो। इतिहास में केवल मानव जीवन की घटनाओं का ही उल्लेख होता है। डा० राधाकृष्णनन (Dr. Radhakrishnan) ने इतिहास को राष्ट्र की स्मरण-शक्ति कहा है। जिस प्रकार वैयक्तिक ऐक्य में स्मरण शक्ति

का बहुत महत्व है उसी प्रकार राष्ट्र की जातियो के लिये यह आवश्यक है और जातियों की स्मरण-शक्ति ही इतिहास है। उनके इस कथन में पर्याप्त सत्यता है। भिन्न-भिन्न विद्वानों ने इतिहास की परिभाषा भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। एक विद्वान ने इतिहास को नवद्वार-कलेण्डर कहा है। इसमें उसने इतिहास को केवल तिथि बताने या देने वाला कहा है। परन्तु इतिहास केवल तिथि ही नहीं देता है बल्कि कहाँ और क्यों जैसे प्रश्नों का भी उत्तर देता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि इतिहास केवल युद्धों का ही विवेचन करता है। लेकिन उन्होंने इतिहास के दूसरे पक्ष को नहीं देखा। जब कि इतिहास मानव समाज के प्रत्येक पहलू का वर्णन करता है। सबसे उपयुक्त परिभाषा रेपसन (Rapson) ने दी है, जो कि पूर्णतया सत्य है। "इतिहास घटनाओं का या विचारों की उन्नति का एक सम्बद्ध विवरण है।" ("History is a connected account of the course of events or progress of ideas.") इसमें इतिहास की वैज्ञानिकता को भी स्पष्ट किया गया है। विज्ञान एक सुसंगठित ज्ञान होता है। इस परिभाषा में घटनाएँ एक दूसरे से सम्बन्धित हैं जो कि इतिहास का निर्माण करती हैं। घटनाओं के तारतम्य को लेकर तथा उनका पूर्ण वर्णन करके इतिहास की रचना होती है। प्रो० घाटे (Prof. Ghate) ने इतिहास की परिभाषा इस प्रकार दी है कि इतिहास हमारे सम्पूर्ण भूतकाल का वैज्ञानिक अध्ययन तथा लेखा-जोखा अर्थात् ज्ञात-प्रमाण है। ("It is a scientific study and a record of our compelte past.") घाटे ने आगे कहा है कि इतिहास को काल और देश की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है, क्योंकि इतिहास उस काल से मानव का अध्ययन करता है जब से वह पृथ्वी पर अवतरित हुआ है। इस प्रकार उसने इतिहास की परिभाषा संक्षेप में इन शब्दों में दी है कि पृथ्वी पर मानव-जीवन के विकास का अध्ययन ही इतिहास है।

गत अतीत तथा वर्तमान मानव-जीवन का विवेचन करना ही इतिहास का विषय क्षेत्र है। समस्त विश्व मानव का निवास-स्थान

है। अतः इस विश्व में हुई समस्त हलचलों का वर्णन इतिहास में करना पड़ता है। इन हलचलों को लिखते समय इतिहास लेखक में व्यर्थ देशाभिमान नहीं होना चाहिए, अन्यथा वह विदेशियों के इतिहास का विवेचन यथार्थ रूप में न कर पायेगा और अपने देश की त्रुटियों का वर्णन छिपायेगा। ऐसा लेखक इतिहासकार कहलाने का अधिकारी नहीं है। निष्पक्ष रीति से बीती हुई घटनाओं का वर्णन करना इतिहासकार का कर्तव्य है। भूत कालीन सत्य घटनाओं का संकलन ही इतिहास नहीं है, वरन् वह् कालक्रम के अनुसार और विवेचनात्मक होना चाहिये। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संसार में रहने वाले विभिन्न समाजों के गत-जीवन का पक्षपात-रहित कालानुक्रम के साथ किया गया विवेचनात्मक वर्णन ही इतिहास है।

इतिहास एक विज्ञान (History As A Science) :—इतिहास की वैज्ञानिकता पर दृष्टिपात करने से पूर्व यह प्रश्न उठता है कि विज्ञान क्या है ? विज्ञान वह नियमित ज्ञान है जो कि प्रयोगात्मक तथा निरीक्षणात्मक ढङ्ग से प्राप्त किया जाता है। जो ज्ञान इस प्रकार से सुव्यवस्थित हो उसका उपयोग किया जा सकता है। ज्ञान स्वयं विज्ञान नहीं है। हक्सले (Huxley) कहता है कि, "मैं उस ज्ञान को विज्ञान मानता हूँ जो तर्क तथा प्रमाणों पर आधारित है।" इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विज्ञान वैज्ञानिक विधियों से सत्यासत्य की खोज करता है। प्रो० गूच (Gooch) ने विज्ञान को घटनाओं का क्रमानुसार कारण सूचित करने वाला कहा है। विज्ञान की परिभाषा निश्चित कर लेने के पश्चात इतिहास की वैज्ञानिकता पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। इतिहास की वैज्ञानिकता के विषय में बहुत से विद्वानों को सन्देह है। इन विद्वानों का कथन है कि इतिहास किसी निश्चित सिद्धान्त अथवा आदर्शों पर आधारित नहीं है। इसके द्वारा हम किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते हैं। जब इसके द्वारा किसी निश्चित सिद्धान्त की स्थापना नहीं हो पाती तो उसे विज्ञान की संज्ञा किस प्रकार प्रदान की जा सकती है। इसके तथ्यों में सदा विषमता होती

है। उनमें एक रूपता का अभाव है। इसमें भौतिक विज्ञान तथा गणित की भाँति निष्कर्ष नही मिलते। जैसे गणित में दो और दो चार होते हैं, जो प्रत्येक काल तथा परिस्थिति में परिवर्तन-रहित हैं।

कुछ विद्वानों का मत है कि इतिहास स्वयं अपनी पुनरावृति करता है। इस कथन में सत्यता नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि उसके तथ्य असमान होते हैं। इसलिये ऐसी स्थिति में कोई सामान्य नियम नहीं निर्धारित किया जा सकता है। ऐतिहासिक तथ्यों के ऐसे रूप भी नहीं हैं कि उनके द्वारा कोई प्रयोग किया जा सके।

इतिहास की वैज्ञानिकता के विरुद्ध सबसे बड़ा तर्क यह है कि इतिहास एक ऐसा विषय है जो मनुष्य की इच्छा तथा उसके कार्यों का विवेचन करता है। जो कि मनुष्य की इच्छाओं पर किसी प्रकार का अंकुश नहीं लगाया जा सकता है तथा वह अपने विचारों के लिये पूर्ण स्वतन्त्र है, अतः ऐसी स्थिति में उनके द्वारा विज्ञान के किसी नियम का निर्धारण नहीं हो सकता है। इतिहास की वैज्ञानिकता के विरुद्ध जो विचारधाराएँ हमें प्राप्त हैं उन्हें हम व्यर्थ अथवा निराधार नहीं कह सकते। इन विचारधाराओं की वास्तविकता स्वीकार करनी पड़ेगी। लेकिन जब हम इतिहास को विज्ञान कहते हैं तब हमारा मन्तव्य यह नहीं है कि इतिहास भौतिक विज्ञान के विभिन्न विषयों और ज्योतिष विज्ञान की भाँति एक ऐसा विषय है जिसके सम्बन्ध में हम परीक्षण तथा अवलोकन कर सकें। हम इतिहास के साथ निश्चित सिद्धान्त के अनुसार प्रयोग नहीं कर सकते हैं।

यह पूर्णतया सत्य है कि इतिहास भौतिक विज्ञान की भाँति विज्ञान का विषय नहीं है और इसमें न प्रयोग किये जा सकते हैं। परन्तु इतिहास अनेक घटनाओं का विवरण है, जो किस प्रकार, कब, क्यों तथा कहाँ घटित हुई, उन सबका वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विवेचन करता है। इस कारण से हम उसे विज्ञान कह सकते हैं। क्योंकि जिस ज्ञान का आधार तर्क तथा तथ्यों पर आश्रित है, वह एक प्रकार से विज्ञान है।

स्पेन्सर (Spencer) ने, जो कि शिक्षा में वैज्ञानिक प्रवृति का प्रवर्त्तक था, विज्ञान का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया था:-

१—सूक्ष्म-विज्ञान (Abstract sciences) :—इनके अन्तर्गत तर्क शास्त्र तथा गणित को रखा।

२—सूक्ष्म-स्थूल-विज्ञान (Abstract concrete sciences) :—इनके अन्तर्गत भौतिक तथा रासायनिक विज्ञानों को माना।

३—स्थूल-विज्ञान (Concrete sciences) :—इनके अन्तर्गत जीव-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, मनोविज्ञान तथा समाज शास्त्र को रखा। उसने इतिहास को समाज शास्त्र के अन्तर्गत माना।

पीयरसन (Pearson) ने विज्ञान के दो भेद किये हैं। प्रथम भौतिक विज्ञान तथा द्वितीय जीवविज्ञान। उसने इतिहास को जीवविज्ञान की श्रेणी में रखा। उसने भी जीव-विज्ञानों के समूह को स्थूल-विज्ञान माना है। इस प्रकार विज्ञानों के वर्गीकरण को देखने से यह ज्ञात होता है कि इतिहास एक विज्ञान है जो भौतिक विज्ञानों की भाँति निश्चित सिद्धान्तों का सृजन न करने के कारण अन्य सामाजिक विज्ञानों के अन्तर्गत आता है।

इतिहास की वैज्ञानिकता के विषय में प्रो० घाटे ने कहा है कि इतिहास एक आलोचनात्मक विज्ञान है जिसके द्वारा हम किसी तथ्य, किसी घटना अथवा किसी वस्तु की छानबीन करते हुए किसी वास्त-विक निर्णय पर पहुँचते हैं और उसका उसी के अनुरूप अर्थ निकालते हैं। ऐतिहासिक वैज्ञानिक विधि जो कि निरीक्षण, तुलना तथा नियमी-करण से बनती है, विज्ञान की सजातीय है। इतिहास भी इन्हीं नियमों के अनुसार अन्वेषण करता है अर्थात् वैज्ञानिक ढङ्ग को सत्य की खोज के लिये ग्रहण करता है।

(१) इतिहास में तथ्यों का संकलन होता है चाहे वे किसी भी स्थान से प्राप्त किये गये हों। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इतिहासकार उन समस्त तथ्यों का संकलन करता है जो कि उसे इति-हास के निर्माण के लिये कहीं से भी प्राप्त होते हों।

(२) वह एकत्रित तथ्यों का बड़ी सतर्कता के साथ विश्लेषण करता है। इस विश्लेषण का उद्देश्य यह ज्ञात करना होता है कि ये तथ्य सत्य, सम्भावित या असत्य हैं इनका विश्लेषण वह निष्पक्षता के साथ करता है।

(३) अन्त में, वह विश्लेषण तथा तुलनात्मक निरीक्षण के द्वारा सत्य पर पहुँचता है और सामान्य सिद्धान्तों का निर्धारण करता है। परन्तु ये सामान्य सिद्धान्त भौतिक विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार नहीं होते हैं। इतिहासकार के नियम समस्त दशाओं तथा समय में सत्य नही उतरते हैं। लेकिन उसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक होता है और उसके अन्वेषण की विधियाँ भी वैज्ञानिक होती हैं।

इतिहास वह विषय है जो कि मानव तथा मानव-जीवन से सम्बध रखने वाली बातों तथा उसके कार्यों से सम्बन्ध रखता है। उसकी प्रयोगशाला भौतिक तथा रासायनिक प्रयोगशालाओं की भांति नही है। उसकी प्रयोगशाला समस्त विश्व है। भौतिक विज्ञान की प्रयोगशालाओं में समस्त वस्तुएं मानव के अधिकार में रहती है लेकिन इतिहास के विषय की सामग्री भिन्न है। वह तो अस्थि-चर्म-रुधिर-पिण्डमय मानव के कार्यों से उपलब्ध होती है। यह संकीर्ण अर्थ में विज्ञान की कसौटी पर खरा नहीं उतरता बल्कि उदार अर्थ में यह भी समस्त सामाजिक विज्ञानों की भाँति एक विज्ञान है। इस विवेचना से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि इतिहास विज्ञान के उदार सिद्धान्तों के अनुसार वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरा उतरता है। इतिहास एक वैज्ञानिक विषय है, इसमें किसी प्रकार के सन्देह के लिये स्थान नहीं है।

इतिहास एक कला (History As An Art).—इतिहास की वैज्ञानिकता सिद्ध करने के पश्चात् हमारी दृष्टि उन विद्वानों की ओर आकर्षित होती है जो इतिहास को एक कला मानते हैं। जब इतिहास एक विज्ञान है तो कला नही हो सकता। यदि कला है तो विज्ञान नहीं हो सकता। इस प्रकार वह दो नावों पर कैसे सवारी कर सकता है। इन

विद्वानों का मत है कि विज्ञान तो सत्य तथ्यों का अस्थिपंजर ही प्रदान करता है। परन्तु कवि की कल्पना इन अस्थिखण्डों को जीवन प्रदान करती है। कवि की भावुकता से ये सत्य तथ्य सजीव हो उठते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि संशोधन के पश्चात् उनको सुन्दर तथा सरल भाषा में व्यक्त करना कला का कार्य है। रूपक, उपमा, आदि अलंकार तथा सुन्दर काव्य रचना सम्पन्न भाषा-शैली की आवश्यकता इतिहास लिखने में होती है। सरल तथा आकर्षक भाषा और रचना में यदि ऐतिहासिक तथ्यों का विवरण दिया जाय तभी वह पाठकों की समझ में आ सकता है। इस दृष्टि से इतिहास-विषय कला भी है। घटना सम्बन्धी बातों का संकलन विज्ञान है और उनकी रचना कला है। ये दोनों इतिहास के ही अंग है।

साहित्यकारों और कलाकारों का यह कहना है कि इतिहास साहित्य का एक अंग था इसकी कोई अलग सत्ता नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इतिहास और कला दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं, क्योंकि इतिहास के पास ऐसी बहुत सी सामग्री है जिसको कला की सहायता के बिना प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। इस कारण वह कला है। कला का शाब्दिक अर्थ है कि वैज्ञानिक अनुसन्धानों का प्रयोग मानव की समस्याओं को हल करने मे किया जाय। इसीलिये इतिहास का महत्व है। इस कारण इतिहास को कलात्मक रूप देना आवश्यक है। इसलिये इतिहासकार से कवि की कल्पना-शक्ति प्रयुक्त करने के लिये कहा गया। इतिहासकार कवि की कल्पना-शक्ति से उन सत्यों को पाठक के योग्य बनाये, जिससे वे सुन्दर तथा समझने के योग्य बन जायँ। लेकिन इतिहासकार को इस बात के लिये भी सतर्क रहना चाहिए कि कल्पना में कहीं वह तथ्यों की आधारशिला को न भूल जाय। जब अपनी कल्पना और सहृदयता के साथ इतिहासकार उस युग के साथ, जिसका वह इतिहास लिख रहा है, सहानुभूति पूर्वक विचार करेगा तब ही इतिहास का वास्तविक निर्माण-कार्य होगा। अतः यह आवश्यक है कि इतिहास को कला का रूप प्रदान किया जाय

जिसके द्वारा यह स्पष्ट हो सके कि वास्तव में वह सजीव मानवों तथा सजीव समाज का ज्ञात-प्रमाण है।

हम उपर्युक्त विवेचना द्वारा इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि इतिहास विज्ञान तथा कला दोनों का समन्वय है। जब वह सत्य की खोज करता है तब विज्ञान है और जब उन सत्यों के प्रतिपादन तथा वर्णन का विषय है तब वह कला है। इस प्रकार इतिहास वह माध्यम है जिसमें ज्ञान तथा क्रिया अविभाजित ऐक्यता प्राप्त करते हैं। गीता में एक स्थान पर कहा गया है कि 'विद्वान ज्ञान तथा क्रिया को एक मान कर खोजते हैं (The wise seek knowledge and action as one.) इस प्रकार इतिहास गीता के इस कथन की सत्यता को सत्य करता है। अर्थात् इतिहास में विद्वान् ज्ञान तथा क्रिया की प्राप्ति कर सकता है। उसका ज्ञान सत्य की खोज है और क्रिया सत्य का वर्णन है। इस सम्बन्ध में लार्ड एक्टन (Lord Acton) का निष्कर्ष बहुत हीं महत्वपूर्ण है। उनका कथन है कि इतिहास का अध्ययन आलोचनात्मक, पक्ष-पात रहित तथा नवीन है। इस प्रकार उन्होंने इतिहास को वैज्ञानिक तथा कलात्मक दोनों ही रूप प्रदान किये हैं।

प्रश्न

१—इतिहास की परिभाषा व्यक्त करते हुए उसका क्षेत्र स्पष्ट कीजिए।

२—'History is a study in Evolution' इस कथन की समालोचना कीजिए।

३—'A Science of history, in the true sense of the word, is an absurd notion.' इस कथन की समालोचना कीजिये और आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं?

४—'History is both a Science and Art.' इस कथन की विवेचना कीजिये।

अध्याय—२

इतिहास के उद्देश्य और महत्व (Aims and Values of History)

'इतिहास केवल अतीत काल के राजाओं के कार्यों के विषय में सूचना ही नहीं है वरन् यह एक विज्ञान भी है जो कि बुद्धि को विकसित करता है तथा बुद्धिमान व्यक्तियों को उदाहरणों के द्वारा सुशोभित करता है।" तारीख ए-दाऊदी। "History is not simply information regarding the affairs of kings who have passed away; but is a science which expands the intellect, and furnishes the wise with examples." Tarikh-i-Daudi)

इतिहास के उद्देश्यों को समझने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि उद्देश्य (Aims) तथा महत्व (Values) के भेद को समझ लिया जाय। साधारण रूप से छात्र उद्देश्य और महत्व में कोई विशेष अन्तर नहीं समझते हैं और यदि उनसे इनमें से किसी एक के विषय में पूछा जाय तो वे दोनों को मिश्रित कर देते हैं, क्योंकि उनके अनुसार उद्देश्य और महत्व एक ही वस्तु हैं, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है। उद्देश्य एक चेतनशील अभिप्राय

है जिसको हम किसी कार्य को करते समय अपने सम्मुख रखते हैं। जब हम किसी वस्तु की प्राप्ति का निश्चित उद्देश्य बना लेते है तब उसके लिये बहुत से साधन जुटाते हैं। कभी-कभी हमको अपने निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति हो जाती है और कभी नहीं भी होती है, परन्तु उस उद्देश्य की प्राप्ति न होने पर भी हमको बहुत से महत्वपूर्ण अनुभव प्राप्त होते हैं। इस प्रकार ध्येय की प्राप्ति के मार्ग में जो नवीन उपयोगी अनुभव या फल मिलें या उद्देश्य की प्राप्ति होने पर जो फल प्राप्त हों या लक्ष्य की प्राप्ति न होने पर जो फल मिलें, वे सब महत्व कहलायेंगे। कभी-कभी यह भी सम्भव हो सकता है कि लक्ष्य की खोज में प्राप्त हुए फल या महत्व निश्चत ध्येय से भिन्न भी हों परन्तु फिर भी वे सब महत्व के अन्तर्गत आयेंगे। प्रो० घाटे ने अपनी पुस्तक 'टीचिंग ऑफ हिस्ट्री' में उद्देश्य और महत्व के भेद को एक सुन्दर तथा परिचित उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है। उन्होंने लिखा है कि कोलम्बस ने भारत पहुँचने के लिए एक नवीन मार्ग की खोज करना अपना उद्देश्य निर्धारित किया था, परन्तु इस निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति न कर सका और भारत के लिये नवीन मार्ग की खोज करने के भ्रम में उसने अमेरिका का पता लगा लिया। इस प्रकार कोलम्बस का उद्देश्य भारत के लिये नवीन मार्ग खोजना था परन्तु उस ध्येय की प्राप्ति न होकर उसे अन्य नवीन फल की प्राप्ति हुई। यह फल या अनुभव ही महत्त्व हुआ। ध्येय एक हो सकता है परन्तु उसको प्राप्त करने के दौरान में कई फल या अनुभव प्राप्त हो सकते हैं जो उद्देश्य की अपेक्षा अधिक अथवा कम महत्त्व के हो सकते हैं। इस प्रकार से प्राप्त सभी अनुभव या फल महत्त्व के अन्तर्गत आयेंगे।

शिक्षालयों में इतिहास को पढ़ाने से हम बहुत से महत्त्व प्राप्त करते हैं, परन्तु जब हम इतिहास को शिक्षालयों में पढ़ाने के लिये निर्धारित करने का निर्णय करते हैं तब इन महत्त्वों को प्राप्त करना हमारा ध्येय नहीं होना। इसलिये हमको अपने ध्येयों तथा महत्त्वों को मिश्रित नहीं करना चाहिये। अब प्रश्न यह उठता है कि हम इतिहास

को क्यों पढ़ाते हैं या इतिहास शिक्षण के क्या उद्देश्य हैं। इन प्रश्नों का उत्तर देखने से पूर्व यह जानना अनिवार्य हो जाता है कि विभिन्न युगों में इतिहास के शिक्षण के क्या उद्देश्य थे।

इतिहास-शिक्षण के विभिन्न कालों में उद्देश्य (Aims of teaching History in Different Ages) :—लिवी (Livy) तथा थ्यूसीडाइडस (Thucydides) के समय में इतिहास स्मरणीय घटनाओं का विवरण था। उनके समय में इतिहास के शिक्षण का उद्देश्य स्मरणीय वस्तुओं को सुरक्षित रखना तथा प्रसिद्ध कार्यों या घटनाओं का ज्ञान पुरानी सन्तति के द्वारा नवीन सन्तति को सौंपना था। ये कार्य मनुष्य तथा उसके कुटम्ब दोनों के लिये महत्त्वपूर्ण थे। प्राचीन काल में इतिहास साहित्य का अङ्ग था। उस समय इतिहास-शिक्षण का उद्देश्य निर्देश देना तथा आश्रयदाताओं को प्रसन्न रखना था। मध्यकाल में इतिहास शिक्षण का उद्देश्य अपने देश के अतीत के लिये आदर तथा प्रेम उत्पन्न करना हो गया। १८ वीं शताब्दी में इतिहास में एक नई प्रवृति का समावेश हुआ जिसका प्रवर्त्तक वाल्टेयर (Voltaire) था। उसने कहा कि "मैं इतिहास लिखना चाहता हूँ लेकिन राजाओं तथा युद्धों का नहीं बल्कि समाज का। मेरा ध्येय मानव-मस्तिष्क का इतिहास लिखना है न कि महापुरुषों तथा राजाओं के कार्यों का। मैं यह जानना ाहता हूँ कि मानव ने बर्बरता से सभ्यता की श्रेणी तक आने के ·लये किन-किन स्तरों को पार किया है।" इस नई प्रवृत्ति ने १९ वीं ताब्दी की वैज्ञानिक प्रवृति के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। १९ वीं ताब्दी के इतिहास का उद्देश्य अतीत की घटनाओं को फिर से जीव बनाना हो गया। आज के इतिहास का अभिप्राय निर्देश, ानन्द तथा देशाभिमान प्रदान करना नहीं है वरन् इसके अध्ययन रने वालों को सरल, पवित्र तथा सत्यज्ञान से परिपूर्ण करना है। ा वैज्ञानिक प्रवृति तथा दृष्टिकोण ने इतिहास के उद्देश्यों के निर्धारण ी समस्या या आवश्यकता शिक्षा शास्त्रियों के सम्मुख प्रस्तुत की।

इस आवश्यकता का महत्त्व समझकर उद्देश्यों के निर्धारण के लिए विभिन्न प्रयत्न किये गये। वे निम्नलिखित हैं :—

कार्ल आगस्त मुलर का प्रयत्न (Formulation of Aims by Kai August Muller) :—राष्ट्रवाद तथा प्रजातन्त्र के उत्थान ने इतिहास को एक अलग विषय बनाने की आवश्यकता को प्रकट किया। इस कारण उसके शिक्षण के उद्देश्य निर्धारण करने के लिये भी प्रयत्न किया गया। आगस्त मुलर ने इतिहास को पाठ्य-क्रम में स्थान देने के पक्ष में कहा कि "इतिहास के द्वारा ही हम अपने काल की क्रियाओं का अर्थ लगा सकते हैं। यदि इतिहास नहीं होगा तो शिक्षालयों अध्ययन तथा अध्यापन निरर्थक है। क्योंकि इतिहास हमारे वर्तमान को स्पष्ट करता है।" उसने आगे कहा, "यदि इतिहास नहीं है तो सामाजिक वातावरण का कोई अर्थ नहीं है, वह निरर्थक है।" मुलर की इतिहास-शिक्षण के लिये दूसरी महत्त्वपूर्ण देन यह थी कि ऐतिहासिक अध्ययन में समवाय के सिद्धान्त पर जोर दिया जाय। उस द्वारा अन्य विषयों को समझने का समर्थन किया जाय। इस प्रक उसके द्वारा प्रतिपादित इतिहास शिक्षण के दो उद्देश्य हुए। प्रथ तो इतिहास के शिक्षण से वर्त्तमान को स्पष्ट करना, दूसरे उस सहायता से अन्य विषयों के अध्ययन को समझा जाय।

मिस ड्रमंड का प्रयत्न (Miss Drummond's Attempt) :- (१) इसके अनुसार इतिहास-शिक्षण का प्रथम उद्देश्य विषय लिये रुचि उत्पन्न करना तथा उसको स्थिर रखना है। शिक्षा में रु के सिद्धान्त को समझने के लिये हमें हरबार्ट (Herbart) की देनों दृष्टिपात करना होगा। हरबार्ट के अनुसार रुचि निर्देश का फल अर्थात् बालक को ज्ञान दिया जाय जिससे उसमें रुचि उत्पन्न होगी इतिहास ज्ञान का भाण्डार है। इसके द्वारा रुचि उत्पन्न की जा सक है। इस कार्य को स्थिर रखने के लिये क्रियात्मकता के सिद्धान्त अपनाना चाहिए। इतिहास में रुचि तब स्थिर की जा सकती है

इतिहास का अध्यापक इतिहास के ज्ञान का सम्बन्ध उनकी दिन प्रति-दिन की समस्याओं से स्थापित करेगा।

(२) **वैज्ञानिक दृष्टिकोण बनाना** (Creation of Scientific Attitude):—छात्रों को इस प्रकार पढ़ाया जाय जिससे वे अवैज्ञानिक वस्तुओं को त्यागने में समर्थ हो सकें। प्रत्येक उपाय से उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करने के लिये प्रयत्न किये जायँ। वैज्ञानिक दृष्टिकोण तभी उत्पन्न किया जा सकता है जब उसके मुख्य अंगों का विकास किया जायगा। इसके लिये सर्वप्रथम उनकी निरीक्षणात्मक-शक्ति बढ़ायी जाय। दूसरे, तर्कशक्ति तथा सत्य निर्णय करने की शक्ति को बढ़ाने पर जोर दिया जाय। जब बालकों में प्रत्येक वस्तु को सन्देह तथा संशय की दृष्टि से देखने की प्रवृति आ जायगी जो कि विज्ञान के तत्त्व हैं तभी उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न होगा। इतिहास-शिक्षण द्वारा यह प्राप्त किया जा सकता है। इसके साथ-साथ ऐतिहासिक कल्पना उत्पन्न करना भी इतिहास-शिक्षण का उद्देश्य है।

(३) इतिहास-शिक्षण का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास करना है। इस उद्देश्य के अनुसार बालकों को निष्पक्षता सच्चाई के साथ प्रत्येक देश की सभ्यता तथा संस्कृति का अध्ययन करना चाहिये। जब बालक इस सद्भावना को करने में समर्थ होंगे विश्व-संघ तथा विश्व-सरकार बनाने में सफलता प्राप्त होगी। इसके साथ ही उन्होंने इतिहास-शिक्षण का उद्देश्य यह रखा कि बालक मानवता के विकास तथा सभ्यता की क्रमिक उन्नति के विषय में ज्ञान प्राप्त करें और इसके साथ ही क्रमिक विवरण का या परिणामवाद सिद्धान्त (Theory of Evolution) को भी समझ जायँ।

लिंडवुड चेज का प्रयत्न (Lindwood Chase's Attempt):— लिंडवुड ने शिक्षालयों में इतिहास-शिक्षण के अधोलिखित उद्देश्यों को ...ो का समर्थन किया है :—

(१) ऐतिहासिक विधि का ज्ञान कराना जिसके द्वारा तथ्यों का ...रण होता है।

(२) पूर्वजों की देनों का गुणगान कराना।
(३) सामाजिक वातावरण की प्रकृति का ज्ञान प्राप्त कराना।
(४) इतिहास का उत्साह के साथ अध्ययन कराना।
(५) इतिहास में रुचि उत्पन्न कराना।
(६) सत्य देश-प्रेम उत्पन्न कराना।
(७) मानव-उन्नति का काल-क्रम के अनुसार अध्ययन कराना।
(८) समय-ज्ञान विकसित करते हुए, स्थान तथा समय में सम्बन्ध स्थापित करना।

विभिन्न विद्वानों के द्वारा दिये गये इतिहास-शिक्षण के उद्देश्यों पर दृष्टिपात करने के पश्चात् प्रश्न यह उठता है कि इतिहास का महत्त्वपूर्ण कार्य क्या है जिसके कारण इसको पाठ्य-क्रम में स्थान दिया गया है। सर्व प्रथम इतिहास ज्ञान का भाण्डार है, जिसमें बालक स्वेच्छानुसार अन्वेषण कर सकता है। इसके द्वारा बालक का पथ-प्रदर्शित किया जाता है। ए० एन० व्हाइटहेड (A. N. Whitehead) ने शैक्षिक जीवन को तीन भागों में विभाजित किया है (१) कौतूहल (Romance) (२) यथार्थता (Precision) तथा (३) सामान्यीकरण (Generalization)। इतिहास कौतूहल की तृप्ति करता है। इसके द्वारा बालक की जिज्ञासा तथा ज्ञान की पिपासा शान्त की जाती है।

दूसरे, इतिहास के द्वारा बालकों को एक विशेष प्रकार की मानसिक शिक्षा मिलती है, जिसके द्वारा बालक अपने जीवन की प्रतिदिन की समस्याओं को हल करने में सफल होता है। बालक को इतिहास में सबसे अधिक मस्तिष्क का प्रयोग करना पड़ता है। इसमें उसे अपनी तर्क-शक्ति, कल्पना-शक्ति तथा निर्णय-शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है, जिससे उसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। इस दृष्टिकोण से उसमें तथ्यों के संकलन, उनके परीक्षण और उनके आधार पर अपना निष्पक्ष निर्णय देने की योग्यता आ जाती है। वह सत्य की खोज का प्रेमी बन जाता है।

तीसरे, इतिहास बालक के मानसिक अन्तरिक्ष को विस्तृत करता

है, जिससे वह समस्त वसुधा को अपना कुटम्ब समझने के लिये उद्यत हो जाता है। वह समस्त विश्व को ऐक्य के दृष्टिकोण से देखता है। इस प्रकार उसमें सत्य देश-प्रेम के साथ-साथ विश्व-बन्धुत्व की भावना भी उत्पन्न हो जाती है।

चौथे, इतिहास का प्रमुख कार्य यह स्पष्ट करना है कि मानव तथा उसका समाज में विकास किस प्रकार हुआ है। उसका यह कार्य नहीं कि वह राजाओं, रानियों, युद्धों, सन्धियों तथा तिथियों के ही विषय में बताये। वह अतीत काल के वर्णन द्वारा वर्तमान का स्पष्टीकरण करता है। उसका महत्त्व इसलिये ही है। इसके अतिरिक्त उसका कार्य एक पग और आगे है। वह यह है कि उसके द्वारा बालकों में भविष्य के सम्बन्ध में सोचने की प्रवृत्ति जाग्रत की जाती है। सर जॉन सीले (Sir John Seeley) का कथन है कि "जब आप इतिहास का अध्ययन करें तो केवल इंगलैण्ड के अतीत का ही अध्ययन न करें वरन् उसके भविष्य का भी अध्ययन करें। इसमें आपके देश की भलाई है। यह नागरिक होने के नाते आप सब की रुचि है।" वर्तमान की विशद रीति से सहृदयता पूर्वक व्याख्या करना ही इतिहास का महान् उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य है। हम अपना सुखमय जीवन तभी व्यतीत कर सकते हैं जब कि हम अपने जीवन की समकालीन समस्याओं को पूर्ण रूप से समझ सकें। इन समस्याओं को समझने में तथा समझाने में इतिहास हमारी सहायता करता है। इतिहास-शिक्षा की हम इसलिये ही व्यवस्था करते हैं और इतिहास-शिक्षा का यही ध्येय है। सभ्यता की प्राप्ति साध्य होनी चाहिये। विश्व में सत्य से अधिक श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। यही इतिहास के अध्यापक का मुख्य ध्येय होना चाहिये।

इतिहास के उद्देश्यों पर दृष्टिपात करने के पश्चात् यह देखना आवश्यक हो जाता है कि इतिहास के महत्त्व या अनुभव अथवा फल क्या हैं? इतिहास-शिक्षण के कुछ महत्त्व तो बहुत ही साधारण हैं, जो कि इसके शिक्षण से प्रत्येक परिस्थिति में प्राप्त हो जाते हैं। दूसरे

महत्त्व सीमित तथा मुख्य प्रकार के हैं, जो कि विशेष प्रकार के इतिहास तथा उसको विशेष ढङ्ग से प्रस्तुत करने से ही प्राप्त होते हैं। परन्तु इस स्थान पर हमारा अभिप्राय मुख्य तथा सामान्य महत्त्वों के अलग-अलग प्रतिपादन से नहीं है, वरन् समान रूप से सबका विवेचन करने से है। इतिहास-शिक्षण के महत्त्वों का हम निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकरण कर सकते हैं :—

(१) नैतिक महत्त्व (Ethical Values)

(२) सांस्कृतिक तथा सामाजिक महत्त्व (Cultural and Social Values)

(३) अनुशासनात्मक महत्त्व (Disciplinary Values)

(४) सूचनात्मक महत्त्व (Informative Values)

(५) राष्ट्रीय महत्त्व (Nationalistic Values)

(१) **नैतिक महत्त्व** :—पाठ्य-क्रम में इतिहास को इस कारण बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है कि यह नैतिकता की शिक्षा प्रदान करता है। इसके अध्ययन से बालक सन्तों, महात्माओं, सुधारकों, नेताओं तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। उनका जीवन हमको उनकी भाँति उत्साही तथा सत्यप्रेमी बनने के लिये प्रोत्साहन देता है। इसके अतिरिक्त बालक यह जान जाता है कि अन्त में सत्य की ही विजय होती है चाहे सत्य-प्रेमी को जीवन में कितने ही कष्ट क्यों न उठाने पड़ें। असत्यता के द्वारा पतन होता है, इससे भी बालक परिचित हो जाते हैं। इसकी आलोचना में यह कहा गया है कि मनोवैज्ञानिक आधारों के अनुसार इतिहास के पाठ के द्वारा नैतिकता की शिक्षा नहीं देनी चाहिये। इतिहास द्वारा नैतिकता की शिक्षा के प्रदान करने के विरुद्ध निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये गये हैं :—

(अ) सत्यता आदि अच्छे गुणों की विजय सदैव नहीं होती है और बुराई तथा असत्यता का सदैव पतन नहीं होता। बहुत से अवसरों पर यह देखा गया है कि ईमानदार तथा सत्य-प्रेमी मनुष्य जीवन

भर कष्ट भुगतते रहते हैं और अयोग्य तथा मिथ्याभाषी सफलता प्राप्त करते हैं।

(ब) अनुभवों के आधार पर यह देखा गया है कि भारतीय छात्र सतों तथा पवित्र मनुष्यों के कार्यों मे कोई रुचि नहीं लेते हैं। वे शूर-वीरों के कार्यों में अधिक रुचि रखते हैं और उनकी पूजा करने लगते हैं। वे इस बात पर कोई ध्यान नहीं देते कि हमारे नायकों में क्या गुण हैं या क्या अवगुण हैं। उनके नायक चाहे कितने ही अवगुण रखते हैं। इसका बिना ध्यान किये वे उनके अनुयायी बन जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि छात्र गुरूनानक, चैतन्य या राजा राममोहनराय के अध्ययन में कोई रुचि नहीं लेते हैं। वरन् वे क्रिया-शील व्यक्तियों का अध्ययन करते हैं जैसे क्लाइव, तैमूर, बाबर आदि। इस प्रकार के व्यक्तियों के चरित्र उनको सरलता पूर्वक अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।

(स) इसके विरुद्ध एक यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि महानु-भावों के चरित्र विभिन्न जटिलताओं से परिपूर्ण होते हैं। उनके चरित्रों में गुण तथा अवगुण दोनों विद्यमान होते हैं। यदि केवल उनके गुणों का ही वर्णन किया जाय तो यह अवैज्ञानिक होगा। यदि दोनों का विवरण दिया जाय तो छात्रों में भी अवगुणों का उत्पन्न होना सम्भव है।

उपर्युक्त तर्क पर्याप्त सशक्त हैं। इनको हम निराधार नहीं कह सकते हैं। इस प्रकार इतिहास-शिक्षण के द्वारा दी गई इस नैतिकता की शिक्षा को अनुपयुक्त कहकर हमको इतिहास के अध्यापक के हृदय को दुखित नहीं करना चाहिये। वरन् उसको यह सुझाव दिया जाय कि वह इतिहास के शिक्षण में इसका प्रत्यक्ष रूप से प्रतिपादन न करके अप्रत्यक्ष रूप से बालकों को शिक्षा दे सकता है। डा० कीटिंग (Dr. Keatinge) ने कहा है, "यदि हमें इतिहास के शिक्षण से नैतिक महत्त्व प्राप्त करने हैं तो इन प्रकरणों का शिक्षण समस्यात्मक विधि द्वारा किया जाय।"

(२) **सांस्कृतिक तथा सामाजिक महत्त्व** :—इतिहास हमें अपनी वर्तमान संस्कृति को समझने के योग्य बनाता है। यह वर्त्तमान काल की संस्थाओं तथा दशाओं के उद्गम की विवेचना करता है और इन प्रश्नों का उत्तर देता है जैसे कब, कैसे, कहाँ से इनका उद्गम हुआ। यह हमें अतीतकाल के वर्णन द्वारा वर्त्तमान काल की सस्कृति को स्पष्ट करता है और यह बताता है कि प्राचीन संस्कृति की आत्म-सात् करने की विशेषता के कारण आज की संस्कृति इस रूप में हमें प्राप्त होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इतिहास हमारे वर्त्तमान समाज तथा सस्कृति का स्पष्टीकरण करता है। इतिहास के ज्ञान के द्वारा ही हम अपने वर्त्तमान को समझ पाते हैं। अतः यह हमें सामाजिक समस्याओं के समझने तथा समझाने में बहुत सहायता करता है।

(३) **अनुशासनात्मक महत्त्व** :—इतिहास मानसिक शिक्षा के लिये बहुत ही लाभदायक है। इसके द्वारा स्मरण, तर्क तथा कल्पना-शक्ति का विकास होता है। यह कहा जा सकता है कि इतिहास के द्वारा जितना मस्तिष्क को शिक्षित किया जा सकता है उतना शिक्षालय के किसी अन्य विषय से नहीं किया जा सकता है। परन्तु यह तभी सभव है जब बालक स्वयं इतिहास के अध्ययन में तुलना तथा विवेचना, तथ्यों का प्रस्तुतीकरण और निष्कर्ष निकाले। इसके अतिरिक्त वह स्वय तथ्यों के विवेचन के पश्चात् सत्यता का पता लगावे तथा अपनी निर्णय-शक्ति का प्रयोग करे और सिद्धान्तों का निर्धारण करे।

(४) **सूचनात्मक महत्त्व** :—इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इतिहास सूचनाओं का भाण्डार है जिसके द्वारा छात्र अपनी ज्ञान की पिपासा को तृप्त कर सकता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि 'एक विज्ञान का इतिहास स्वयं विज्ञान है।' इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इतिहास का ज्ञान स्वयं ज्ञान है। इतिहास में बालक अपनी शक्ति तथा अनुभव के आधार पर खोज कर सकता है। इतिहास मानव की, विज्ञान और कला, भाषा तथा साहित्य, सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन, दार्शनिक तथा

आर्थिक विकास से सम्बन्धित, सभी समस्याओं का हल प्रदान करता है। इतिहास मानव का भविष्य के लिये पथ-प्रदर्शन करता है।

(५) **राष्ट्रीय महत्व** :—इसमें कोई संदेह नहीं है कि इतिहास अपने अध्ययन करने वालों में देश-प्रेम तथा देश-भक्ति उत्पन्न करता है। इसी तत्व के कारण जर्मन निवासियों ने इतिहास को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया था। देश-प्रेम तथा देश-भक्ति का उद्देश्य निर्धारित कर उन्होंने अपने शिक्षालयों में इतिहास-शिक्षण कराया और इसके द्वारा एक पवित्र आर्य जाति का सृजन किया। हिटलर ने इसी उद्देश्य से विश्व में इस जाति को सर्व प्रथम स्थान दिया और इसी की सत्ता समस्त विश्व में स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसने जर्मन निवासियों के सम्मुख यह उद्देश्य रखा कि 'मेरा देश, सत्य या असत्य' (My country, right or wrong) परन्तु इस प्रकार का इतिहास-शिक्षण इतिहास के वैज्ञानिक आधार की जड़ों को खोखला करता है। वैज्ञानिक इतिहास सतर्कता के साथ तथ्यों का एकत्रीकरण, आलोचनात्मक तथा असंवेगात्मक विवेचन चाहता है। यदि 'मेरा देश, सत्य या असत्य' इस उद्देश्य से इतिहास का शिक्षण किया जाता है तो वह अन्तर्राष्ट्रीय-भावना को भारी ठेस पहुँचायेगा। इतिहास का उद्देश्य तर्कयुक्त देश-प्रेम उत्पन्न करना तथा विश्व बन्धुत्व की भावना विकसित करना है।

उपर्युक्त विवेचना के देखने से यह प्रतीत होता है कि इतिहास के अध्ययन से बहुत से महत्व प्राप्त होते हैं। हम यह जानते हैं कि किसी भी विज्ञान का महत्व सत्य के प्रतिपादन में है और इसलिये हम इतिहास से भी और कुछ नहीं चाहते केवल सत्य की अभिव्यक्ति चाहते हैं यह सत्य के प्रतिपादन में पर्याप्त सहायक है।

प्रश्न

१—इतिहास-शिक्षण के उद्देश्यों की विवेचना कीजिए तथा यह भी बताइये कि ये हमारे शिक्षालयों में किस प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं ?

(Discuss the aims of teaching and state how best they can be realised in the schools of our country.)

(B. T. 1957)

२—इतिहास-शिक्षण के द्वारा नैतिक शिक्षा किस प्रकार प्रदान की जा सकती है ? उदाहरणों द्वारा इसे स्पष्ट कीजिये ।

३—"उच्चतर माध्यमिक पाठशालाओं में इतिहास-शिक्षण का प्रयोग विद्यार्थियों में नागरिक तथा नैतिक भावों के विकास के लिये किया जा सकता है ।" इस कथन की समालोचना कीजिये ।

(*"Teaching of History in our high schools can be used for* developing civic and moral sense in the students." Discuss fully.)

(B. T. 1959.)

४—इतिहास-शिक्षण अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के सम्बन्ध में कैसे सहायक हो सकता है ? उदाहरणों द्वारा स्पष्ट कीजिये ।

(How can the teaching of history promote International good will ? Explain with reference to some specific examples.)

(L. T. 1959)

५—'शिक्षालयों में इतिहास-शिक्षण का उद्देश्य छात्रों को उत्तम नागरिक बनाना है ।' आप इस विचारधारा से कहाँ तक सहमत हैं ? आपके अनुसार शिक्षालयों में इतिहास-शिक्षण का क्या उद्देश्य होना चाहिये ?

('The aim of teaching History in schools is to make the pupils good citizens'. How far do you agree with this view ? What, according to you, should be the aim of teaching History in schools.)

(B. T. 1958)

अध्याय—३

इतिहास का वर्गीकरण (Kinds of History)

"विद्यार्थियों को यह जानने में सहायता देनी चाहिये कि इतिहास क्रमिक विकास का लेखा-जोखा है.........यह निरन्तर परिवर्तन की शक्तियुक्त गाथा है। छात्रों को इतिहास की एकता का गुणगान करने के लिये सहायता प्रदान करनी चाहिये। उनमें यह भावना उत्पन्न नहीं करनी चाहिये कि इतिहास बिखरी हुई कहानियों का संकलन है जो कि साहसिक कार्यों से पूर्ण कहानियों के समान है।"(Pupils should be helped to realize that history is an account of an evolutionary process.........that it is dynamic story of continual change. Pupils should be helped to appreciate the unity of history, and not to view it as a broken pattern of stories which they are all too likely to equate with tales of advanture.

—'Teaching of History' by C. P. Hill.

इतिहास केवल एक हो प्रकार का हो सकता है। इतिहास, मानवता के क्रमिक विकास के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। इसलिये हमें विश्व का इतिहास तथा सामाजिक इतिहास चाहिए। हम वास्तव

में मानव में रुचि रखते हैं कि वह पृथ्वी पर कब आया और उसने किस प्रकार सामाजिक जीवन का विकास किया। इसके अतिरिक्त उसने हमारे लिये इतिहास किस प्रकार तैयार किया। हम किसी विशेष काल में रुचि नहीं रखते वरन् समस्त समय तथा कालों में रुचि रखते है। इसके अतिरिक्त हम सामाजिक जीवन के एक विशेष क्षेत्र मे रुचि नही रखते, वरन् जीवन के सभी अगों में हमारी रुचि है। यही हमारा आदर्श है। इसको हम शिक्षालय जीवन के कुछ वर्षों के कोर्स स प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसलिए हमको एक समझौता करना पड़ता है। हम विश्व इतिहास में से एक छोटा भाग ले लेते हैं, जिसे राष्ट्रीय इतिहास कहते हैं और उसका अध्ययन हम अपने शिक्षालयों में करते हैं। हम इससे भी एक लघु-विभाग राष्ट्रीय-इतिहास से ले सकते हैं। उसको स्थानीय इतिहास का नाम दे सकते हैं, जिसका शिक्षालय-जीवन के किसी भी स्तर पर अध्ययन करा सकते हैं। हम विश्व के इतिहास को विभिन्न प्रकार से विभाजित कर सकते हैं। हम विश्व इतिहास या राष्ट्रीय इतिहास का विशेष काल अध्ययन के लिये ले सकते हैं। उदाहरणार्थ हम मानव-विकास के एक अंग के अध्ययन के लिये रोम, भारतवर्ष, ग्रीस अथवा समस्त विश्व का प्राचीन काल का इतिहास ले सकते हैं, या किसी भी राष्ट्र के मध्य-काल का इतिहास ले सकते हैं जैसे मुगल कालीन भारत अथवा स्टूअर्ट-कालीन इंगलैण्ड। हम विश्व या एक राष्ट्र के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा वैधानिक इतिहास का अध्ययन कर सकते हैं। हम चाहे किसी भी प्रकार से इतिहास का अध्ययन करें, वह चेतनायुक्त समष्टि का ही एक भाग होगा। यह विभाजित किया हुआ भाग उस चेतनायुक्त समष्टि से अलग अपना कोई अस्तित्व नहीं रखता है। यदि हम किसी काल का शिक्षण देते हैं तो हमको उसके अतीत तथा भविष्य दोनों की ओर ध्यान देना पड़ता है। इसके बिना हम उसका शिक्षण सफलता पूर्वक नहीं कर सकते हैं। यदि हम राजनीतिक इतिहास का प्रतिपादन कर रहे हैं तो हमको सामाजिक तथा आर्थिक दशाओं

को भी सहायता लेनी पड़ेगी और छात्रों का उनके प्रभाव पर, ध्यान दिलाना पड़ेगा।

यह बहुत ही महत्वपूर्ण तथ्य है कि कोई भी राष्ट्र अकेला अन्य देशों से पृथक नही रह सकता है। उदाहरणार्थ हम अपने राष्ट्र को ही ले सकते हैं। हम यह पढ़ते हैं कि भारत भौगोलिक स्थितियों के अनुसार सबसे अलग है, परन्तु ये सब वातें निरर्थक हैं, क्योंकि भारतवर्ष कभी भी बचे हुए विश्व से अलग नहीं रहा है। बाह्य देशों के मनुष्य पर्वतों को पार करके तथा समुद्र के मार्ग से भारत में प्राचीन समय से आते रहे हैं और उनका आना किसी भी काल में बन्द नहीं हुआ है। भारतीय भी इन मार्गों के द्वारा दूसरे देशों में गये हैं। जितनी यह बात भारत के लिये सत्य है उतनी ही विश्व के अन्य देशों के लिये भी सत्य है। विभिन्न राष्ट्रों के इतिहास का क्रमिक विकास एक ही स्रोत से हुआ है। उनके विकास का इतिहास एकाकी तथ्य नहीं है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को अतीत से ही प्रभावित करता रहा है और वह मानवता के विकास में अपना सहयोग प्रदान करते आरहे हैं। इस प्रकार हम जारविस (Jarvis) के शब्दो में कह सकते हैं कि "इतिहास एक सम्पूर्ण एकता है।" "History is a united whole." ये शब्द सदैव से हमारे कानों में गुंजार करते आ रहे हैं और मानव को इतिहास की अनुपम अखण्डता को स्थिर रखने के लिये प्रोत्साहित करते रहे हैं।

इतिहास का वर्गीकरण:—वर्गीकरण के साथ जो रुचियाँ सम्बन्धित हैं वे अधोलिखित है:—

(१) इतिहास के वर्गीकरण के पक्ष में यह रुचि दी जाती है कि इसके द्वारा ऐसे प्रश्नों की उत्पत्ति होती है, जिससे इतिहास की सत्यताओं की सीमाओं का ज्ञान सरलता से प्राप्त किया जा सकता है अर्थात् उसकी सत्यता की क्या सीमा है? समाज शास्त्र, भूगोल आदि विषयों से उसका क्या सम्बन्ध है? इन सब प्रश्नों का उत्तर हमें इतिहास के वर्गीकरण से मिल जाता है।

(२) क्रोस (Croce) ने इतिहास को मानव-नाटक या लीला माना है। *उसका कथन है कि जिस प्रकार नाटक विभिन्न भागों में बंटा होता है जैसे प्रारम्भ, शिखर या मध्य और अन्त।* इसी प्रकार इतिहास को कालों में विभाजित करना आवश्यक है। क्योंकि मानव के विचार तर्क-विद्या में संगठित होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक काल का इतिहास बँटा होना चाहिये—उसका प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त। क्रोसे के इस दृष्टिकोण का टरगौट (Turgot) ने भी प्रतिपादन किया है। उसका कथन है कि इतिहास मानवता का जीवन है, जो कि उन्नतिशील है। प्रत्येक काल आने वाले तथा बीते हुए काल से जुड़ा हुआ है।

यद्यपि इतिहास मानव-जीवन के सभी अंगों का विवेचन करता है तथापि बहुत से इतिहासकारों का यह विचार है कि उसको केवल एक अंग पर केन्द्रीकरण करना चाहिये। इन इतिहासकारों ने विभिन्न अगों को पृथक-पृथक केन्द्रीकरण के लिये महत्त्वपूर्ण माना है और इतिहास का निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकरण किया है :--

(१) राजनीतिक इतिहास (Political History)

(२) आर्थिक इतिहास (Economic History)

(३) सामाजिक इतिहास (Social History)

राजनीतिक इतिहास :—अरस्तू ने इतिहास को मानव की कहानी माना था। लेकिन उसने मनुष्य के कार्यों में राजनीतिक कार्यों को ही महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। अरस्तू ने इतिहास के राजनीतिक अग को मानव-उन्नति तथा विकास के लिये मुख्य आधार माना था। फ्रीमैन (Freeman) का विचार है कि इतिहास राजनीतिक घटनाओं का लेखा है। उसने इतिहास को अतीत की राजनीति माना है और इतिहास को समाज के राजनीतिक जीवन के विकास को ही लिखना चाहिये। इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि समाज के जीवन पर राजनीतिक घटनाओं का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है और वे सामाजिक तथा आर्थिक फलों का भी निर्धारण करती हैं। यदि 'इतिहास का निर्माण किया जाय तो उसमें ये राजनीतिक घटनाएँ क्रम पैदा करने में बहुत

सहायता प्रदान करती हैं। इनके द्वारा काल-क्रम सरलता से प्रतिपादित किया जा सकता है। इस प्रकार का क्रम वैज्ञानिक इतिहास का मुख्य तत्त्व है। परन्तु इस प्रकार इतिहास को केवल राजनीतिक विषय का लेखा बनाना भूल होगी। उसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) राजनैतिक इतिहास वैज्ञानिक इतिहास का लेखा देने में असमर्थ रहता है, क्योंकि राजनीतिक इतिहास केवल शासकों तथा उनके कार्यों से ही सम्बन्ध रखता है। यह साधारण मनुष्यों के विषय में कुछ भी वर्णन नहीं करता। कुछ मनुष्यों का विचार है कि शासक या नृपतिगण अपने समय का प्रतिनिधित्व करते हैं। परन्तु यह तर्क ठीक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि साधारण मनुष्यों के विषय में राजाओं के रहन सहन से कुछ पता नहीं लगाया जा सकता है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि नृपतिगण बड़े ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत करते हैं परन्तु उनकी प्रजा का जीवन बहुत ही कष्टों तथा दुखों में व्यतीत होता है। यदि वे अपने समय का प्रतिनिधित्व करते हैं तो उनकी प्रजा का जीवन भी सुखमय होना चाहिये, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता।

(२) इसमें कोई सन्देह नहीं है कि राजनीतिक क्रियाएँ सामाजिक तथा आर्थिक कारणों से निश्चित होती हैं, परन्तु कभी-कभी भौगोलिक परिस्थितियों से भी निश्चित की जाती हैं। फ्रांस की क्रांति रूसो तथा वाल्टेयर के प्रचार से नहीं हुई वरन् उसकी नींव में सामाजिक तथा आर्थिक दशाएँ थीं, जिन्होंने क्रान्ति को जन्म दिया।

(३) मानव केवल संवेग, भावना या बुद्धिमात्र ही नहीं है। यदि इतिहास अपने नाम के महत्व को प्रकट करना चाहता है तो उसे मनुष्य के प्रत्येक अंग का वर्णन करना चाहिये न कि केवल राजनीतिक अंग का। उसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक, शैक्षिक आदि सभी क्षेत्रों के विकास का विवरण देना चाहिये।

(४) राजनीतिक इतिहास का एक दोष यह भी है कि वह समाज के सभी अंगों का विवरण नहीं देता। उसको समाज के नैतिक, सामा

जिक, आर्थिक, वैधानिक, धार्मिक आदि सभी अंगों का वर्णन करना चाहिये ।

आर्थिक इतिहास :—मार्क्सवादियों का विचार है कि आर्थिक आवश्यकता ही समस्त सामाजिक आचरण की जड़ है । अर्थशास्त्र *कुछ भी नहीं है वरन् समस्त मानवीय सम्बन्धों का आधार है ।* राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्तन अधिकतर आर्थिक परिवर्तनों के ही कारण होते हैं । इतिहास हमें बताता है कि यदि राजनीतिक परिवर्तनों का विश्लेषण किया जाय तो हमें उनके कारण अधिकतर आर्थिक ही मिलेंगे । रूसी क्रान्तियों की जड़ आर्थिक ही थी । स्वेज नहर का प्रश्न, वास्तव में अपनी प्रकृति में आर्थिक ही था परन्तु वह समस्त राष्ट्रों के सम्मुख राजनीतिक प्रश्न के रूप में उपस्थित हुआ । इन्हीं कारणों से इतिहासकारों का मुख्य अभिप्राय आर्थिक कारणों तथा फलों की विवेचना करना रहा है ।

यह सत्य है कि इतिहास में आर्थिक कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं और यह भी सत्य है कि इसको प्राचीन काल में स्पर्श नहीं किया गया था । क्योंकि उस काल में राजनीतिक कारण प्रधान था । परन्तु इसको ही समस्त विकास का आधार मानना भूल होगो । मानव केवल रोटी से ही जीवित नहीं रहता अर्थात् वह भोजन के लिये जीवित नहीं रहता, वरन् उसमें परसेवा की भावना भी होती है । जिसकी संतुष्टि करना आवश्यक है । इतिहास हमें त्याग के कार्यों के बहुत से उदाहरण प्रदान करता है जिससे मनुष्य अपने में स्वार्थ त्याग करने की भावना विकसित करता है । बहुत से राजनैतिक परिवर्तन ऐसे हैं, जो कि आर्थिक कारणों के बिना भी हुए हैं । प्राचीन काल के बहुत से शासकों तथा राजाओं ने चढ़ाइयाँ कीं जिनका कारण आर्थिक नहीं था । उदाहरणार्थ मुहम्मद तुगलक ने हिमालय के कुछ प्रदेशों को अपने अधिकार में करने के प्रयत्न से आक्रमण किया था, परन्तु उसका कारण आर्थिक न होकर अपने राज्य की सीमा बढ़ाना था ।

सामाजिक इतिहास :—राजनीतिक तथा आर्थिक इतिहास पृथक

रूप से जीवन-चित्र का पूर्ण रूप हमारे सामने नहीं ला पाते। हमारे सामाजिक जीवन का कोई शृंखलाबद्ध घटना-चक्र नहीं है। उनका क्रम-बद्ध इतिहास भी तैयार नहीं किया जा सकता है। पाठ्य-क्रम की दृष्टि से भी यदि हम विचार करें तो उनकी सहायता से पाठ्य-क्रम निर्मित करना भी अत्यत्त कठिन है। सामाजिक इतिहास का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इसके अन्तर्गत वे सभी बातें आती हैं जो समाज में घटित हुई हैं। इस जीवन के अन्तर्गत कृषि, उद्योग, शिक्षा, कौटुम्बिक जीवन, भोजन, वस्त्र तथा शारीरिक क्रियाएँ, श्रम तथा नौकरी, साहित्य, शिल्पकला, सिलाई, परम्परा तथा संस्थाएँ, रहन-सहन आदि सब कुछ आ जाता है। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी बातें है जो सामाजिक जीवन के अन्तर्गत आती हैं। एक प्रकार से आर्थिक तथा राजनैतिक परिवर्तन भी सामाजिक जीवन के ही अंश हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक तथ्यों का चयन करना बड़ा कठिन है। एक समस्या यह उठ खड़ी होती है कि इनका चयन किस प्रकार किया जाय और उनको चयन करते समय किन सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाय ?

सामाजिक इतिहास के विरुद्ध एक यह तर्क दिया जाता है कि इसके द्वारा समय-ज्ञान विकसित करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। इसी कारण इतिहासकार सामाजिक इतिहास को पाठ्य-क्रम में रखने के पक्ष में नहीं हैं। इसके अतिरिक्त समस्त सामाजिक परिवर्तनों का एक आदर्श नहीं है। इन सभी कारणों से सामाजिक इतिहास को एक अलग विषय का स्थान नहीं दिया जा सकता है।

विभिन्न विभागों का समन्वय आवश्यक (The Need of Common way between the different divisions of History) :— जब तक इन विभिन्न विभागों में समन्वय नहीं किया जायगा तब तक इतिहास का शिक्षण ठीक रूप से व्यवस्थित नहीं हो सकता है। इनके समन्वय के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये जाते हैं :—

(१) यह सदैव हितकारी रहेगा यदि इतिहास का विभाजन राष्ट्र के दृष्टिकोण से किया जाय। उसका भी विभाजन काल विशेष की दृष्टि से किया जा सकता है। परन्तु यह विभाजन का कार्य बड़ी सतर्कता तथा दूरदर्शिता के साथ किया जाना चाहिये।

(२) जिसकाल-विशेष का इतिहास शिक्षण के लिये चुना जाय उसके मुख्य अंगों का पूर्ण विवेचन किया जाय और उनकी महत्ता के अनुसार उन पर ठीक प्रकार से ध्यान दिया जाय।

(३) सामाजिक अग के वर्णन के साथ-साथ अन्य दोनों अंगों का भी विवेचन किया जाना चाहिए। उनको भी अछूता नहीं छोड़ा जाय वरन् उनकी महत्ता के अनुसार उन पर ध्यान दिया जाय।

(४) इनके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहिये कि जो भी काल विशेष तथा वर्ग-विशेष चुना जाय उनके तथ्यों की ऐतिहासिक क्रमबद्धता तथा घटनाओं की श्रृंखला कभी टूटने न पाये। समय तथा काल विशेष का पुरा पूरा ध्यान रखा जाये। इसके अतिरिक्त घटनाओं के कारण तथा फल की भी विवेचना करना इतिहास का कार्य है।

इन उपर्युक्त सुझावों को ध्यान में रखकर हम इतिहास के शिक्षण के लिये भारतीय इतिहास का इस प्रकार वर्गीकरण कर सकते हैं। किसी भी राष्ट्र के प्रारम्भिक इतिहास के वर्गीकरण में कठिनाई नहीं होती। इन राष्ट्रों का प्रारम्भिक इतिहास संस्थाओं तथा रीतिरिवाजों तक ही सीमित रहता है। गूच (Gooch) का कथन है कि 'प्रत्येक राष्ट्र का प्रारम्भिक इतिहास व्यक्ति विशेष तथा कानून निर्माताओं के स्थान पर रीति रिवाजों तथा संस्थाओं का होना चाहिये।' ("The early history of every nation must be rather of individuals, of customs than of law givers.) हमारे प्राचीन भारत के इतिहास में सामाजिक पक्ष की प्रधानता है। लेकिन उसकी विवेचना के साथ-साथ दूसरे पक्षों की भी विवेचना की जानी चाहिये। उस समय की राजनीतिक स्थिति कैसी थी ? आर्थिक कियाएँ किस प्रकार की थीं ? इनके अतिरिक्त शैक्षिक जीवन के विषय में भी वर्णन किया जाय।

गुरुकुल पद्धति तथा हमारी शैक्षिक प्रगति ने किन-किन बातों में दूसरे राष्ट्रों को प्रभावित किया और दूसरे राष्ट्रों से इस क्षेत्र में किन वस्तुओं को ग्रहण किया ? इसके अतिरिक्त धार्मिक क्षेत्र का भी विवरण दिया जाना चाहिये। जाति-प्रथा की विवेचना आर्थिक दृष्टिकोण से भी की जानी चाहिये। इसी प्रकार मध्यकाल की भी विवेचना होनी चाहिये। यद्यपि इस युग में राजनैतिक घटनाओं की प्रधानता रही, फिर भी दूसरे अङ्गों को अछूता नहीं छोड़ा जाना चाहिये। लेकिन आधुनिक युग की दूसरे ढङ्ग से विवेचना की जाय। कम्पनी के काल का पृथक विवरण दिया जाय और उसके पश्चात् के काल को विभिन्न अङ्गों में विभाजित करके विवेचना की जाय जैसे शिक्षा, वैधानिक प्रगति, स्वतन्त्रता प्राप्ति का इतिहास, पुनुरुत्थान का प्रभाव आदि।

एक दूसरे आदर्श के अनुसार वर्गीकरण (Another Division Pattern) :—उपर्युक्त विवेचना से यह देखा गया है कि इतिहास अविभाज्य है। इसमें सम्पूर्ण एकता है। इसका वर्गीकरण केवल उसके प्रस्तुतिकरण की सुविधा के लिये किया गया है। इतिहास मानव-विकास की गाथा है और उसका विकास विभिन्न युगों में निवास-स्थान के अनुसार हुआ है। मानव किसी स्थान पर रहा, जैसे ग्राम, कस्बा, शहर आदि। इनके इतिहास को हम स्थानीय इतिहास कहते हैं। उसी प्रकार जब मानव एक वृहत भौगोलिक एकता में रहता है, तो उसे राष्ट्रीय इतिहास कह देते हैं। विश्व इतिहास मानव के सम्पूर्ण इतिहास की विवेचना करता है। इस आदर्श के अनुसार इतिहास का अधोलिखित रूप से वर्गीकरण किया जा सकता है :—

(अ) विश्व इतिहास (World History)

(अ) राष्ट्रीय तथा प्रान्तीय इतिहास (National and Provincial History)

(स) स्थानीय इतिहास (Local History)

(अ) विश्व इतिहास।

यदि हम यह जानना चाहते हैं कि विश्व में क्या हो रहा है और वास्तव में विश्व की सुरक्षा को समझना चाहते हैं तो हमें एक विस्तृत दृष्टिकोण उत्पन्न करना होगा। इस दृष्टिकोण को उत्पन्न करने के लिये बहुत से साधन सुझाये गये हैं परन्तु सबसे प्रमुख और जिसकी महत्ता को सब विद्वान स्वीकार करते हैं विश्व के इतिहास का शिक्षण है। इसके द्वारा बालकों को मानवता के विकास का तथा राष्ट्रों की अन्योन्याश्रिता का ज्ञान प्राप्त होता है। विश्व इतिहास के हमें दो रूप मिलते हैं, एक तो १८ वीं शताब्दी का तथा दूसरा वर्तमान शताब्दी का। १८ वीं शताब्दी तथा उससे पूर्व की घटनाएँ केवल अपने राष्ट्र तथा निकटवर्ती राष्ट्रों को ही प्रभावित कर पाती थीं। फ्रांस की क्रांति का प्रभाव धीरे-धीरे योरुप महाद्वीप में फैला था। अप्रत्यक्ष रूप से भले ही समानता, भ्रातृत्व तथा स्वतन्त्रता के शब्दों ने दूसरे राष्ट्रों को पश्चात्काल में प्रभावित किया हो परन्तु आज की घटनाओं की भांति प्रत्यक्ष रूप से नहीं किया था। वैज्ञानिक प्रगति ने विश्व के सभी राष्ट्रों को एक दूसरे के समीप ला दिया। आज एक राष्ट्र का कोई प्रश्न उस राष्ट्र का ही नहीं वरन् समस्त विश्व का प्रश्न बन जाता है— उदाहरणार्थ स्वेज नहर का प्रश्न मिश्र राष्ट्र का नहीं था वरन् विश्व की राजनीति का प्रश्न था। इतिहासकारों का मत है कि विश्व इतिहास के आधुनिक रूप को शिक्षण के लिये लिया जाय, लेकिन इस रूप के शिक्षण के लिये जो पाठ्य-वस्तु ली जाय उसका चयन बड़ी सतर्कता से किया जाय। इसके लिये इतिहासकार को उन विचारों तथा भावनाओं पर भी ध्यान देना चाहिये जो कि प्रत्येक महाद्वीप में कम या अधिक रूप में फैले हुए हैं जैसे-साम्यवाद, राष्ट्रवाद, पूँजीवाद, आदि। दूसरे इतिहासकार को उन महापुरुषों पर भी दृष्टि डालनी चाहिये जिन्होंने विश्व के सम्मुख अपने विचार महत्वपूर्ण ढङ्ग से रखे जैसे गांधी जो, आइन्सटीन, लेनिन, चर्चिल आदि। इतिहासकार को उन आन्दोलनों तथा विचारधाराओं पर भी ध्यान देना चाहिये, जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को अच्छा बनाने का प्रयत्न किया है।

विश्व इतिहास की विवेचना पर दृष्टिपात करने के पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि हम विश्व इतिहास का शिक्षण क्यों करते हैं ? इसका शिक्षण शिक्षा के किस स्तर पर किया जाना चाहिये ? ये प्रश्न प्रत्येक शिक्षा शास्त्री के सम्मुख उपस्थित होते हैं। इनका उत्तर अद्योलिखित हैं :—

(१) इतिहास मानव-विकास की गाथा है। जब से मानव इस पृथ्वी पर अवतरित हुआ, उसी समय से इतिहास का जन्म हुआ है। यह केवल भारतीयों, चीनियों आदि के विकास की कहानी नहीं है वरन् सम्पूर्ण मानवता के विकास की कहानी है। इतिहास की इस परिभाषा रूपी कसौटी पर विश्व-इतिहास ही खरा उतरता है। इसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये विश्व-इतिहास को पाठ्य-क्रम में स्थान दिया गया है।

(२) कोई भी राष्ट्र अकेला कभी नहीं रहा। यदि हम किसी भी राष्ट्र से सम्बन्धित विकास की कहानी का अध्ययन करते हैं तो हमें यह स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है कि उसने सांस्कृतिक विकास के उसी मार्ग को अपनाया जो दूसरे राष्ट्रों में अपनाया गया था। हम अपने राष्ट्र को उदाहरण के लिये ले सकते हैं। हमारी सभ्यता विश्व की प्राचीन सभ्यता कही जाती है। यदि उसका ही विश्लेषण किया जाय तो यह प्रतीत होगा कि यह विभिन्न जातियों के प्रभावों के कारण इस दशा में पहुँची है। उसने विभिन्न जातियों के प्रभावों को अपने में आत्मसात कर लिया और उनको अपना सांस्कृतिक रूप प्रदान किया। इन सब बातों का निरीक्षण करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि समस्त देश तथा राष्ट्र एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। इस कारण विश्व इतिहास का शिक्षण आवश्यक है, क्योंकि हम एक राष्ट्र के इतिहास का शिक्षण दूसरे राष्ट्र के इतिहास से सम्बन्ध बताये बिना नहीं कर सकते हैं।

(३) विश्व-इतिहास के द्वारा विश्वमैत्री का सिद्धान्त निर्धारित कर सकते है। समस्त राष्ट्र द्वितीय महायुद्ध के भयानक परिणामों से

ग्रसित है। इन भयों को दूर करने के लिये विश्व-इतिहास का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसके द्वारा समस्त राष्ट्रों के युवकों में विश्व-बन्धुत्व की भावना उत्पन्न की जा सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति विश्व-इतिहास का पारितोषिक होगा।

विभिन्न शिक्षा-शास्त्रियों के सम्मुख यह प्रश्न उठ रहा है कि विश्व इतिहास को किस स्तर के अध्ययन के लिये रखा जाय। सभी शिक्षा शास्त्री इस बात से सहमत हैं कि विश्व-इतिहास प्रारम्भिक स्तर पर नहीं रखा जाय, क्योंकि इतिहास कारण तथा प्रभाव का विज्ञान है। इसके लिये तर्क-शक्ति की आवश्यकता है। रूसो (Rousseau) ने, जो कि शिक्षा-क्षेत्र में उन्नतिशील शिक्षा का जनक कहा जाता है, प्रारम्भिक स्तर को 'तर्क की सुप्तावस्था' (Sleep of reasons) कहा है। इस कारण यह काल विश्व-इतिहास के अध्ययन के लिये उपयुक्त नहीं है। दूसरे, बालक विश्व की समस्याओं को इस स्तर पर समझने में असमर्थ रहेंगे। तीसरे सांस्कृतिक समस्याएँ बालक की रुचि तथा प्रकृति के अनुसार ठीक नहीं हैं। इन सब दशाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि विश्व इतिहास को उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के लिए रखा जाय। मेकेन्जी (Mackenzie) ने विश्व-इतिहास के लिये एच० जी० वैल्स तथा कारटर (H. G. Wells and Carter) की पुस्तकों को निर्धारित किया है। उत्तर प्रदेश के शिक्षा-बोर्ड ने विश्व-इतिहास को हाईस्कूल के लिये निर्धारित कर दिया है। इस दिशा में अन्य प्रदेशों के शिक्षा-बोर्डों को भी ध्यान देना चाहिए।

(ब) राष्ट्रीय तथा प्रान्तीय इतिहास :—भारतीय विद्यालयों के पाठ्य-क्रम में राष्ट्रीय-इतिहास की प्रधानता है। परन्तु राष्ट्रीय इतिहास के शिक्षण में विभिन्न कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। सर्व प्रथम एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से पूर्णतया पृथक नहीं रह सकता है। यदि हम भारतीय इतिहास का शिक्षण इस प्रकार प्रारम्भ कर दें कि भारत में आर्य लोग बाहर से आये तो यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि वे कहाँ से और कब आये और उनसे पहले भारत में कौन सी जाति रहती थी,

उसकी सभ्यता किस प्रकार की थी तथा उसने अपनी सभ्यता किस प्रकार प्राप्त की थी ? यदि हम इन सब प्रश्नों का विश्लेषण करना प्रारम्भ करें तो हमें दूसरे राष्ट्रों के इतिहास को भी ध्यान में रखना पड़ेगा। उनकी सहायता के बिना हम इन प्रश्नों की विवेचना रहीं कर सकते हैं। इसी कठिनाई को दूर करने के लिये कुछ विद्वानों का बिचार है कि प्रारम्भिक स्तर पर हो हमें विश्व इतिहास का ज्ञान देना चाहिये। इन विद्वानों में अल्तमिरा (Altamira) तथा एच० ए० एल० फिशर (H. A. L. Fisher) हैं। उनका विचार है कि राष्ट्रीय इतिहास का शिक्षण देने से पूर्व छात्रों को गुफाओं के मनुष्यों, बेबीलोनियन, अरबवासियों, ग्रीसवासियों तथा रोमवासियों के विषय में ज्ञान देना चाहिये और इसके पश्चात् माध्यमिक स्तर पर राष्ट्रीय इतिहास के साथ साथ विश्व-इतिहास का प्रारम्भिक पाठ्य-क्रम निर्धारित करना चाहिये। दूसरी समस्या राष्ट्रीय इतिहास के शिक्षण में यह उत्पन्न होती है कि राष्ट्र मे बहुत से ऐसे प्रान्त है जो कि अपना स्वयं एक इतिहास रखते है। भारत के बहुत से प्रान्त तो योरुप के बहुत से देशों से बड़े हैं। तब यह प्रश्न उठता है कि उस प्रान्तीय इतिहास का शिक्षण किया जाय जिसमें बालक रहता है या भारतवर्ष के सम्पूर्ण इतिहास का शिक्षण किया जाय। इस प्रश्न को हम विभिन्न स्तरों पर इतिहास को श्रेणीबद्ध करते समय हलकर सकते है। इसके अतिरिक्त प्रान्तीय इतिहास राष्ट्र के सम्पूर्ण इतिहास को जो देन प्रदान करता है हमें उन दोनों का शिक्षण सम्पूर्ण इतिहास के साथ देना चाहिये। इसप्रकार हम राष्ट्रीय इतिहास का शिक्षण अपने शिक्षालयों में प्रदान कर सकते हैं।

(स) **स्थानीय इतिहास**—विभिन्न इतिहासकारों का मत है कि स्थानीय इतिहास को इतिहास के पाठ्य-क्रम मे स्थान दिया जाना चाहिये। हस्लक (Hasluck) का विचार है कि इतिहास के कोर्स में स्थानीय इतिहास के कुछ पाठों का समावेश करना अत्यन्त हितकारी है। के० डी० घोष (K. D. Ghose) का भी यही मत है कि

राष्ट्रीय इतिहास के लिये स्थानीय इतिहास को जो देन है उनका समावेश करना आवश्यक है। प्रो० घाटे का विचार है कि स्थानीय इतिहास का अर्थ यह नहीं है कि जिम कस्बे या जिले मे बालक रहता है उसका इतिहास ही स्थानीय इतिहास है। जिस पड़ौस में अथवा जिस स्थान पर एक मनुष्य रहता है उस स्थान के वातावरण की भी विशेषता होती है। छात्रों को इन विशेषताओं का ज्ञान होना चाहिये या उनसे उनको परिचित किया जा सकता है। एक दूसरे विद्वान का मत है कि उत्तम प्रकार से चयन किया हुआ स्थानीय इतिहास एक पाठ को विस्तार प्रदान करता है तथा अनुभवपूर्ण क्रियाओं के लिये प्रोत्साहित करता है; जैसे किसी ऐतिहासिक स्थान का भ्रमण या पर्यटन। हमारे देश में स्थानीय इतिहास के अध्ययन के लिये बहुत से अवसर प्राप्त हैं। यदि कोई शिक्षालय प्राचीन नगर या कस्बे में स्थित है जो ऐतिहासिक वस्तुओं के लिये प्रसिद्ध है तो वह स्थान स्थानीय इतिहास के शिक्षण के लिये बहुत लाभदायक है। ऐसे स्थान, आगरा, दिल्ली, ग्वालियर, हैदराबाद आदि है। भारतीय शिक्षालयों में स्थानीय इतिहास के शिक्षण पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया जाता है। इतिहास का अध्यापक अपने छात्रों को इतिहास के पृथक तथ्यों की गोलियों को सटकने के लिये प्रस्तुत करते है। इस प्रकार स्थानीय इतिहास के प्रति उनका व्यवहार असहानुभूतिपूर्ण रहता है, जो कि अनुचित है। इस प्रकार स्थानीय इतिहास का अर्थ तथा महत्त्व देखने के पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि स्थानीय इतिहास से क्या लाभ हैं? इससे प्राप्त होने वाले लाभ निम्नलिखित है :—

१—स्थानीय इतिहास के द्वारा बालकों में अपनी स्थानीय परम्पराओं तथा रीतिरिवाजों के प्रति आदर की भावना उत्पन्न की जा सकती है। ये परम्पराए तथा रीतिरिवाज उस स्थान के नैतिक जीवन का प्रतिबिम्ब होती हैं। इनके द्वारा वह विदेशी परम्पराओं को समझने में समर्थ होगा।

२—इसके द्वारा अनुदारता की भावना को दूर किया जा सकता है और इससे बालकों का दृष्टिकोण भी विस्तृत बन जाता है।

३—स्थानीय इतिहास हमें अपने पूर्वजों के विषय में भी परिचित कराता है। तथा इसके ज्ञान से हम अपने अतीत का भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसके द्वारा बालकों में उस स्थान के प्रति प्रेम की भावना उत्पन्न होती है।

४—स्थानीय इतिहास का शिक्षण बालकों में निर्धन मनुष्य के जीवन के प्रति सद्भावना तथा सहानुभूति उत्पन्न करता है और इसके ज्ञान से वह उन समस्याओं को समझने का प्रयत्न करता है, जो कि उसकी निर्धनता का कारण बनी हुई हैं।

५—स्थानीय इतिहास बालकों में वैज्ञानिक प्रवृति विकसित करता है। उनका दृष्टिकोण तर्कपूर्ण तथा निरीक्षणात्मक बन जाता है।

६—आधुनिक युग में पाठ्य-क्रम-सहगामी-क्रियाओं पर अधिक बल दिया जा रहा है लेकिन स्थानीय इतिहास बालकों के विकास के लिये एक नवीन मार्ग की सृष्टि करता है। इसके शिक्षण से उनके चरित्र का निर्माण सुचारु रूप से किया जा सकता है।

स्थानीय इतिहास के अध्ययन के लिये विधियाँ (Methods of study of local history) :—कुछ विद्वानों का विचार है कि स्थानीय इतिहास पृथक विषय नहीं होना चाहिये। उन्होंने इसके पक्ष में दो मत दिये हैं। प्रथम तो इसमें पृथक तथा विस्तृत पाठ्य-क्रम बनाना कठिन है और जब कि आधुनिक परिवर्तनों के अनुसार समाज-शास्त्र को पाठ्य-क्रम में रखा गया है तो इसको शिक्षालय समय-तालिका में समय मिलना भी कठिन प्रतीत होता है। दूसरे इसमें पाठ्य-पुस्तकों का बहुत अभाव है। इन कारणों को ध्यान में रखकर विद्वानों ने इसके अध्ययन के लिये आकस्मिक विधि (Incidental method) को अपनाने के लिये कहा है। जब अध्यापक राष्ट्रीय इतिहास की विवेचना कर रहा हो तो उसको प्रसंगवश स्थानीय तथा प्रान्तीय घटनाओं पर भी पूर्णतया प्रकाश डाल देना चाहिये। इस प्रकार के विवेचन से

इतिहास का अध्यापक छात्रों में इतिहास के प्रति रुचि पैदा कर सकता है; क्योंकि बालक अपनी निकटवर्ती तथा पड़ौस की वस्तुओं में अधिक रुचि रखता है और इसके द्वारा राष्ट्रीय इतिहास भी समझ में आयेगा। राष्ट्रीय इतिहास उसके स्थानीय इतिहास के द्वारा अपनी वास्तविकता को धारण कर लेगा।

१—स्थानीय स्थानों के निरीक्षण तथा भ्रमण से स्थानीय इतिहास का अध्ययन किया जा सकता है।

२—स्थानीय समुदायों के संगठन से स्थानीय इतिहास का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इनके इतिहास-शिक्षक द्वारा इतिहास के लिये बालकों में रुचि उत्पन्न कर सकता है, जैसे पुरातत्त्व सम्बन्धी समुदाय बनाने चाहिये।

३—स्थानीय परिवर्तनों के अध्ययन से भी स्थानीय इतिहास की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। हमारे जिले या कस्बों ने राष्ट्रीय आन्दोलनों में क्या, कब और किस प्रकार भाग लिया। इन सब बातों का ज्ञान हम इस विधि से प्राप्त कर सकते हैं।

४—छात्रों को विभिन्न स्थानों के निरीक्षण का लेखा रखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इन लेखों के द्वारा वे स्थानीय इतिहास का निर्माण करने में समर्थ हो सकेंगे।

५—छात्रों को अपनी स्थानीय सड़कों के नामों तथा महत्त्व को जानने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

प्रश्न

१—इतिहास-शिक्षण में स्थानीय सामग्री का क्या महत्त्व है ? उसको माध्यमिक स्तर पर आप कैसे प्रयोग करेंगे ?

(What is the value of local material in the teaching of History ? What are its varieties and how would you use them at the higher secondary stage ?

(L. T. 1959)

२—स्थानीय इतिहास से क्या तात्पर्य है ? किसी जिले का उदाहरण देकर समझाइये कि इससे आप क्या काम लेंगे ?

(What is meant by 'Local History' ? Explain with-reference to particular district. What use you will make of it.)

(L. T. 1956)

३—स्थानीय इतिहास के शिक्षण के महत्त्व की विवेचना कीजिए।

(Critically estimate the value of teaching Local History)

(L. T. 1953)

४—विश्व-इतिहास के शिक्षण के पक्ष में तर्क प्रस्तुत कीजिये और बताइये कि आप इसका शिक्षण शिक्षा के किस स्तर पर करोगे ?

(Attempt a defence of the teaching of the World History along with National History. At what stage will you introduce World-History ?

(L. T. 1955)

५—विश्व-इतिहास का क्या महत्त्व है ? उदाहरण सहित समझाइये।

(What is the importance of World History ? Explain with examples.)

६—९ वर्ष की औसत आयु वाले छात्रों के लिये विश्व-इतिहास की कहानियों का शिक्षण रुचिकर तथा कठिन क्यों है ? उदाहरणों सहित समझाइये।

(Why is the teaching of stories from World-History to pupils of average age 9 intersting but difficult ? Explain with illustrations) (B. T. 1957)

७—भारतीय इतिहास के किस काल का स्थानीय इतिहास आपके उस स्थान के इतिहास-शिक्षक की दृष्टि से बहुत लाभदायक है ? उसका किस प्रकार प्रयोग करेंगे ?

(In which period of Indian History would your local-history work prove most useful to you as a History Teacher in that locality ? Indicate clearly the use that you would make of it.)

(B. T. 1958)

अध्याय—४

इतिहास का पाठ्य-क्रम (History Syllabus)

तथ्यों का संकलन तथा संगठन (Selection & Organization of Facts)

"इतिहास के अध्यापक का यह आदर्श नहीं होना चाहिए कि वह इतिहास के तथ्यों को विस्तृत रूप से याद करने के लिए बालकों से अभ्यास करावे, वरन् वह ऐतिहासिक तथ्यों को ऐसे ढङ्ग से योजित करे जिससे बालकों को ऐतिहासिक विकास का पूर्ण तथा विस्तृत ज्ञान प्राप्त हो जाय।" ("The ideal of the teacher should be so to plan historical course as to give pupils a broad sweep of historical development and not drill them in details of any one of the courses of history." Professor Tout.

हम इतिहास की सीमा, परिभाषा, क्षेत्र, वैज्ञानिकता तथा उसके विभिन्न दृष्टिकोणों का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। इन बातों का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् हमें यह निर्णय कर लेना होगा कि विभिन्न कक्षाओं में तथा शिक्षालय-जीवन में हमें किस प्रकार तथा कितना

इतिहास पढ़ाना चाहिये । हमें शिक्षालय-जीवन के लिए तथ्यों का इस प्रकार चयन करना चाहिये, जिससे शिक्षार्थी उनसे लाभ उठा सकें और हमारे लक्ष्य की भी पूर्ति हो जाय । इन तथ्यों का निर्णय किस प्रकार हो, यह एक समस्या है, जिसका समाधान करना यहाँ हमारा ध्येय है । सर्वप्रथम, हम यह निर्णय कर सकते हैं कि माध्यमिक स्तर तक हमें इतना इतिहास पढ़ाना है । तब उसे हम विभिन्न कक्षाओं के क्रमिक विकास के अनुसार विभाजित कर सकते हैं । इस सिद्धान्त के अनुसार हम छात्र से अधिक महत्व इतिहास की शिक्षा को प्रदान करते हैं । इस सिद्धान्त की मनोवैज्ञानिकता पर सन्देह किया जाता है । आधुनिक-शिक्षा-विशेषज्ञ बालक को पाठ्य-क्रम का केन्द्र मानते हैं । इसी कारण वे पाठ्य-क्रम बनाते समय बच्चे की आवश्यकताओं, अनुभवों तथा रुचियों को ध्यान में रखने के लिए निर्देश करते हैं । यह सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक आधार पर पाठ्य-क्रम का निर्णय करता है । इन आधारों पर विचार करने से पूर्व यह जानना हितकारी होगा कि इतिहास का पाठ्य-क्रम बनाने से क्या लाभ हैं ? ये लाभ अधोलिखित हैं:—

(१) कार्य की विस्तृत योजना निर्धारित करने से कार्य सुचारु रूप से चलता है । उससे नियमहीनता को दूर किया जा सकता है ।

(२) इसके द्वारा कार्य की पुनरावृत्ति को समाप्त किया जा सकता है । हमारे विद्यालयों में बालक स्कूल छोड़ने से पूर्व भारतीय इतिहास की कई बार पुनरावृत्ति करता है । इसका कारण इतिहास के पाठ्य-क्रम के सम्बन्ध में पूर्व-निश्चित-योजना का अभाव है ।

(३) इसके द्वारा बालक की प्रगति की भी परीक्षा होती है कि शिक्षार्थी ने कितना ग्रहण कर लिया है और कितना नहीं ग्रहण किया है ।

(४) यह कार्य-कुशलता का पोषक तत्व है तथा इसके द्वारा परीक्षा के प्रश्न पत्रों के बनाने में भी सहायता मिलती है ।

यह कहने में अत्युक्ति न होगी कि इतिहास का कोई आदर्श पाठ्य-

क्रम नहीं है जो कि विश्व की समस्त जातियों के लिये उपयुक्त हो। परन्तु ऐसा पाठ्य-क्रम बनाना सम्भव है। पाठ्य-क्रम बनाते समय जिन सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाना चाहिए वे निम्नलिखित हैं:—

(१)**एकता का सिद्धान्त** (Principle of Unity):—जैसा कि हम पिछले अध्याय में कह चुके हैं कि इतिहास अखण्ड तथा सम्पूर्ण एकता में आबद्ध है। इस एकता को ध्यान में रखकर हमें इतिहास के तथ्यों का चयन करना चाहिए। हमें जातियों की उन देनों को चुनना चाहिए जो कि सामान्य भण्डार में वृद्धि करती हैं। हमें इस बात को अपने सम्मुख रखना चाहिए कि मानव जाति का इतिहास विकास का इतिहास है। इस कारण हम मानव-गाथा को विभिन्न विभागों में नहीं ले सकते हैं, क्योंकि इनके द्वारा पूर्ण मानव चित्र नहीं प्रस्तुत किया जा सकता है। इस एकता को स्थिर बनाए रखने के लिए हमें इतिहास की सामग्री को अपनी सम्पूर्णता के साथ इतिहास-शिक्षण प्रारम्भ करने से पूर्व निश्चित कर लेना चाहिए। इस एकता के द्वारा हम इतिहास का शिक्षण प्रभावशाली बना सकते हैं और उसका अन्य विषयों से समन्वय कर सकते हैं।

(२) **रुचि का सिद्धान्त** (Principle of Interest) :—इतिहास-सामग्री का निर्वाचन करते समय ऐसे तथ्य चुने जायँ जो कि बालकों में रुचि उत्पन्न करें। परन्तु रुचि को आनन्द से मिश्रित नहीं करना चाहिए। इतिहास के वे तथ्य लिए जायँ जिनके द्वारा बालकों में इतिहास की सत्यता को जाँचने की प्रवृत्ति उत्पन्न की जा सके। इस सिद्धान्त के मानने वालों का मत है कि छात्रों को विषय का वही भाग पढ़ाना चाहिए जिसमें उनकी स्वाभाविक रुचि हो। इस सिद्धान्त का सबसे अधिक लाभ यह है कि रुचि होने से बालक अध्ययन में ध्यान लगाते हैं और विषय भी शीघ्रता से समझ में आ जाता है। इस सिद्धान्त को अपनाने में कुछ विशेष कठिनाइयाँ हैं। प्रथम तो यह है कि सभी बालकों में लाभदायक रुचियाँ स्वयंमेव नहीं होती हैं वरन् उनमें उत्पन्न करनी पड़ती हैं। दूसरी कठिनाई शिक्षा की कक्षा-पद्धति

की है। सभी बालकों में समान रुचियों का आविर्भाव एक साथ ही नहीं होता है और एक कक्षा में बहुत से विद्यार्थी होते हैं जिनमें वातावरण, बुद्धि तथा आयु की विषमताएँ होती हैं। इसलिए इस सिद्धान्त को अपनाने में कुछ कठिनाई अवश्य होती है।

(३) **केन्द्रीयकरण तथा समन्वय का सिद्धान्त** (Principle of Concentration and Correlation):—पाठ्य-क्रम बनाते समय सिद्धान्त को ध्यान में रखना चाहिये। हरबार्ट (Harbart) ने सर्वप्रथम यह बताया कि हमारा पाठ्य-क्रम विभिन्न कणों में संगठित है, अर्थात इसमें कोई समन्वय नहीं है। पाठ्य-क्रम के तथ्य ऐसे होने चाहिये जिनके द्वारा समन्वय स्थापित किया जा सके। उसके शिष्य जिलर (Ziller) ने इस सिद्धान्त को केन्द्रीयकरण का रूप दिया। उसका विचार था कि एक विषय को केन्द्र बनाकर अन्य विषयों का शिक्षण प्रदान किया जाय। इसके लिये उसने इतिहास को केन्द्र बनाया, जिस प्रकार क्राफ्ट को बेसिक शिक्षा में केन्द्रीय विषय बनाया गया। इस सिद्धान्त को प्रयोग में तभी लाया जा सकता है, जब उसके तथ्य इसके लिये चुने जायँ। उन्हीं तथ्यों का निर्णय किया जाय जो कि समन्वय तथा केन्द्रीयकरण स्थापित करने में सहायता प्रदान कर सकें। इसके लिये इतिहास को छात्रों के दैनिक जीवन से सम्बन्धित किया जाय और स्थानीय इतिहास की सामग्री को पाठ्य-क्रम में रखा जाय। पाठ्य-क्रम बनाते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि इतिहास का अन्य विषयों से क्या सम्बन्ध है।

(४) **शैक्षिक मूल्य का सिद्धान्त** (Principle of Educative Value)—इतिहास के पाठ्य-क्रम का मुख्य ध्येय केवल सूचना देना ही नहीं है वरन् वह बालकों के चरित्र-निर्माण में भी सहायता प्रदान करता है। इसके द्वारा तर्क-शक्ति, विचार-शक्ति, स्मरण-शक्ति तथा निर्णय-शक्ति का भी विकास होता है। इसके द्वारा वर्तमान काल की समस्याओं का हल प्राप्त होता है। इन सब ध्येयों की पूर्ति का ध्यान रखकर हमें इतिहास के तथ्यों का चयन करना चाहिये। यदि इतिहास के तथ्यों का

चयन ठीक प्रकार से किया जाय तो इतिहास सामाजिक शिक्षा स्थान ग्रहण कर सकता है, जो कि बालक को उसके वातावरण के अनुकूल शिक्षा देकर उसमें सामाजिक चेतना उत्पन्न करता है।

(५) **समय का सिद्धान्त** (Principle of Availability of Time):— इस सिद्धान्त का भी ध्यान रखना आवश्यक है। उतनी ही पाठ्य-सामग्री का चयन किया जाना चाहिये जो कि निर्धारित समय में पूर्ण की जा सके। हमारे यहाँ इतिहास का अध्ययन मुख्य रूप से ५ वर्षों में होता है परन्तु अब इसमें एक वर्ष और जोड़ दिया गया है।

(६) **आन्तरिक परिस्थितियाँ** (Internal Circumstances):–ऐसी अनेक प्रयोगिक परिस्थितियाँ हैं, जो कि इतिहास के पाठ्य-क्रम के निर्धारण को प्रभावित करती हैं। इतिहास-कक्ष तथा उसकी सामग्री इतिहास के तथ्यों को प्रस्तुत करने में अत्यन्त सहायक है। शिक्षालय में यदि एक प्रोजेक्टर है तो उसके द्वारा इतिहास शिक्षक सामाजिक इतिहास को सफलता के साथ प्रस्तुत कर सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि उन्ही तथ्यों का चयन किया जाना चाहिये जिनको प्रस्तुत करने के लिये शिक्षालय सामग्री प्रदान कर सकता है। पुस्तकालय भी पाठ्य-क्रम के निर्धारण को बहुत प्रभावित करता है।

यहाँ पर प्रो० सी० पी० हिल (Prof. C. P. Hill) के द्वारा निश्चय किये हुये पाठ्य-क्रम निर्धारण के सुझावों को देना असंगत नहीं होगा! उनके सुझाव निम्नलिखित हैं:—

(१) पाठ्य-क्रम इस प्रकार योजित किया जाय कि वह शिक्षालयों की आवश्यकताओं को पूर्ण करे।

(२) पाठ्य-क्रम इस प्रकार रचा जाय कि इसके द्वारा इतिहास का अन्य विषयों से सम्बन्ध स्पष्ट हो।

(३) बालकों की रुचि, अवस्था आदि का ध्यान रखकर विभिन्न स्तरों के अनुकूल पाठ्य-क्रम निर्धारित किया जाय।

(४) पाठय-क्रम में लोच होना चाहिये जिससे इसका क्रम प्रयोग

के लिये सदैव उन्मुक्त रहे अर्थात् उसमें प्रयोग किये जा सकें और नवीन सामग्री को स्थान दिया जा सके।

(५) उच्च कक्षाओं के लिये विशेष काल निर्धारित किये जायँ।

(६) इतिहास का पाठ्य-क्रम सदैव सामाजिक पुनर्जीवन के निर्माण के लिये एक साधन का कार्य करे।

तथ्यों के संकलन का मनोवैज्ञानिक आधार
(Psychological Basis of Sclection of Facts)

मनोवैज्ञानिक आधार के अनुसार इतिहास-शिक्षा की व्यवस्था अभी शिक्षालयों में नहीं हो सकी है। विभिन्न अवस्थाओं की क्षमता का ज्ञान प्राप्त करना और उसके पश्चात् यह पता लगाना कि प्रत्येक अवस्था पर किन तथ्यों की शिक्षा दी जानी चाहिए, यह बड़े धैर्य का कार्य है। बालकों की शिक्षा उनके मानसिक स्तर के अनुसार होनी चाहिये। इतिहास के अध्यापकों तथा पाठ्य-क्रम के निर्धारकों का यह मुख्य कर्तव्य है कि वे विभिन्न अवस्था के विद्यार्थी-समूहों के लिये इतिहास की शिक्षा की व्यवस्था करें। शिक्षा-शास्त्रियों तथा समाज-शास्त्रियों ने इस समस्या को मनोवैज्ञानिक रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया है। इस आधार के अनुसार पाठ्य-क्रम बनाने के दो प्रयत्न किये गये जो कि इस प्रकार हैं—

(१) सांस्कृतिक-युग-सिद्धान्त (Culture-Epoch-Theory)

(२) जीवन-गाथा-सिद्धान्त (Boigraphical Method)

सांस्कृतिक-युग-सिद्धान्त—सांस्कृतिक, युग-सिद्धान्त या पुनरावृति के सिद्धान्त के प्रवर्तक अमेरिका के स्टेनली हाल (Stanley Hall) कहे जाते हैं। इन्होंने मानव-जीवन के प्रारम्भिक काल से लेकर वर्तमान काल तक के विकास पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया और मनुष्य के क्रमिक विकास का अध्ययन कर यह निश्चय किया कि मनुष्य अपने जीवन-काल में ही मानव-विकास के सम्पूर्ण क्रमों की पुनरावृति करता है। स्टेनली हाल महोदय का कहना है कि प्राणी खेल में ही

अपनी जाति के विकास की सीढ़ियों को पार करता है। सभ्यता के आदि काल में मनुष्य की मानसिक स्थिति कदाचित आज के बालकों के समान थी। बालक अपने पूर्वजों के सभी अनुभवों का उत्तराधिकारी होता है। वह सूक्ष्म रूप में उनके समस्त संस्कार लेकर उत्पन्न होता है। इन संस्कारों की अभिव्यक्ति वह अपने खेलों द्वारा किया करता है। पर इस अभिव्यक्ति की आवश्यकता क्या है, इसका उत्तर माँ के उदर में स्थित भ्रूण की विभिन्न अवस्थाओं से मिल सकता है। शरीर विज्ञान-शास्त्रियों का मत है कि भ्रूण अपनी माँ के उदर में सभी प्रधान जीवों की मूल अवस्था को पार करने के पश्चात् मानव-जाति के आकार में आता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मानव और जाति के विकास में समानता होती है। इसका अर्थ यह है कि जिन अवस्थाओं में होकर मानव-जाति का सांस्कृतिक विकास हुआ है व्यक्ति भी अपने जीवन में उन्हीं अवस्थाओं की पुनरावृति करता है अर्थात् उन्हीं अवस्थाओं में होकर अपना विकास करता है। दूसरे शब्दों में बालक अपनी बाल्यावस्था के कुछ वर्षों में अपने पूर्वजों की उन सब महत्वपूर्ण क्रियाओं को दोहराता है, जिन्होंने आदि काल से लेकर अब तक मानव जाति के सांस्कृतिक विकास में योग प्रदान किया है। इसलिये बालक की इतिहास की शिक्षा की सामग्री जाति के सांस्कृतिक-विकास की उस अवस्था से लेनी चाहिये जिस अवस्था में होकर बालक निकल रहा हो। इसका अर्थ यह है कि यदि बालक छोटी अवस्था में हो तो उसे प्रारम्भिक मानव के जीवन की कहानी पढ़ने को देनी चाहिये। और यदि वह युवावस्था में हो तो उसे जाति के यौवन काल का इतिहास पढ़ने को देना चाहिये। इस दृष्टि से इतिहास के पाठ्य-क्रम के तथ्यों का चुनाव होना चाहिये।

इस सिद्धान्त के प्रवर्तकों का कहना है कि बालक सर्वप्रथम स्वार्थी तथा असभ्य होता है। जो वस्तु उसके हाथों में आती है वह उसको नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। उसके पश्चात् उसे साहसिक कार्यों से पूर्ण कहानियाँ सुनना रुचिकर होता है, क्योंकि इस स्तर पर वह मनो-

वैज्ञानिक रूप से रुधिर के प्यासे हिंसक पशु के तुल्य है। इन्हीं बातों के आधार पर इतिहास के तथ्यों का निर्णय करते हैं। मानव-जाति की शिशु अवस्था का इतिहास शिशुओं के लिए उपयुक्त है, बाल्यावस्था का इतिहास बालकों को पढ़ाना चाहिये और मानव-जाति के इतिहास का अन्तिम प्रकरण प्रौढ़ों के लिए उपयुक्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार हम इतिहास की शिक्षा की निम्नलिखित रूप से व्यवस्था कर सकते हैं:—

(१) प्राचीन काल का इतिहास प्रारम्भिक अवस्था में (प्राइमरी स्तर पर) बच्चों को पढ़ायेंगे।

(२) मध्यकाल का इतिहास, जूनियर-स्कूल-स्तर पर।

(३) वर्तमान काल का इतिहास, हाईस्कूल कक्षाओं के लिए।

(४) वर्तमान काल का आलोचनात्मक इतिहास उच्च कक्षाओं के लिए।

परन्तु इसे मान्यता प्रदान करने से पूर्व हमें इस सिद्धान्त की वैज्ञानिकता पर विचार करना चाहिए।

सांस्कृतिक-युग-सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Culture-Epoch-Theory):—(१) वैज्ञानिकता की कसौटी पर यह सिद्धांत खरा नहीं उतरता है। इस सिद्धान्त का वैज्ञानिक विवेचन नहीं हो सकता है और यह सिद्धान्त बहुत कुछ कल्पना के आधार पर निर्मित हुआ है। इसका मूल-सिद्धान्त है कि बालक तत्वतः बर्बर तथा असभ्य है, यही भ्रमात्मक तथा असत्य प्रतीत होता है, क्योंकि बालक बर्बर तथा असभ्य नहीं होता है। जीव-विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार बालक तथा बर्बरता दोनों ही पैतृक तथा वातावरण की देन हैं। बालक का वंशानुगत परम्पराओं तथा वातावरण के अनुसार विकास होता है। जबकि एक बर्बर मनुष्य अपनी वंश-परम्परा तथा वातावरण-विशेष की परिस्थिति के अनुसार पूर्ण विकसित प्राणी होता है। इसके विपरीत बच्चा शैशव काल में उस स्थिति में नहीं रहता है। न तो उसका

अपनी शक्तियों पर पूरा अधिकार ही रहता है और न उसका शारीरिक विकास ही पूर्ण रहता है।

(२) पाठ्य-क्रम में लोचपन होना चाहिये, दृढ़ता नहीं। इसमें ऐतिहासिक अन्वेषणों तथा समय के परिवर्तनों को स्थान मिलना चाहिये। इस सिद्धान्त के अनुसार पाठ्य-क्रम में लोचपन के लिये स्थान नहीं है।

(३) इस सिद्धान्त के समर्थकों का कहना है कि व्यक्ति तथा जाति के विकास में समानता होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बाल्यावस्था के स्तर पर दोनों में समानता दृष्टिगोचर होती है, परन्तु उसके पश्चात् जब ऐतिहासिक काल आता है तब उसमें तथा बालक के विकास-काल में कोई समानता नहीं होती है। इस काल में बालक का विकास तीव्र गति से होता है और बालक के शारीरिक विकास तथा बौद्धिक विकास के सतुलित रूप की स्थापना नहीं हो पाती।

(४) इस सिद्धान्त के विपक्ष में एक तर्क यह दिया जाता है कि समस्त जातियों ने अपने विकास में एक ही मार्ग को नहीं अपनाया अर्थात् उनका किसी एक ही नियम के अनुसार क्रमिक विकास नहीं हुआ। संसार में ऐसी अनेक जातियाँ हैं जो सभ्यता की दौड़ में दूसरों की अपेक्षा बहुत आगे बढ़ गई हैं। कुछ जातियाँ ऐसी हैं जो बहुत ही पिछड़ी हुई हैं। सम्भव है कि अनेक ऐसी जातियाँ भी हों, जिन्हें विकास में उतनी कठिनाई का अनुभव न हुआ हो जितनी कठिनाई का अनुभव अन्य जातियों को हुआ।

सांस्कृतिक-युग-सिद्धान्त के गुण (Attributes of Culture-Epoch-Theory) :–(१) इस सिद्धान्त से इतिहास के शिक्षकों तथा इतिहासकारों को पाठ्य-क्रम के निर्धारण में बड़ी सहायता मिली है। इस सिद्धान्त के अनुसार बच्चों की इतिहास-शिक्षा की सुन्दर योजना बनायी जा सकती है, तथा इसके द्वारा बालकों के लिये एक सुन्दर पाठ्य-क्रम निश्चित किया जा सकता है।

(२) विषय-प्रतिपादन तथा शिक्षण विधियों में भी इस सिद्धान्त ने पर्याप्त मात्रा में सहायता दी है। इसने इतिहास के शिक्षकों को इतिहास को वास्तविक बताने के लिये बाध्य कर दिया है। इतिहास का अध्यापक विभिन्न प्रतिरूप (models), चित्र तथा अन्य सहायक सामग्री की सहायता से इतिहास को वास्तविक तथा इतिहास-शिक्षण को प्रभावशाली बनाता है।

(३) इस सिद्धान्त पर इसलिये बल दिया जाता है कि इतिहास केवल सूचना-मात्र ही नहीं है वरन् इसके द्वारा बालक की बुद्धि का भी विकास किया जा सकता है। इसलिये अध्यापक को सूचना ही नहीं देना है वरन् बालकों की कल्पना-शक्ति को भी विकसित करना है। इसके अतिरिक्त उसे बालकों के स्थायी भावों को ठीक प्रकार से संगठित करना है। इसी कारणवश इस सिद्धान्त के समर्थकों ने इसकी पूर्ति के लिये साहित्यिक तत्वों का उपयोग करने के लिये भी परामर्श दिया, अर्थात् भावुकता तथा कल्पना-शक्ति के विकास के लिये इन साहित्यिक तत्वों का उपयोग किया जाय।

जीवन-गाथा सिद्धान्त—यह सिद्धान्त भी मनोविज्ञान पर आधारित है। इसका मुख्य प्रवर्तक कारलाइल (Carlayle) है। इस सिद्धान्त के समर्थकों का मत है कि इतिहास के तथ्यों का निर्णय जीवन-गाथाओं के अनुसार हो सकता है। उनका विचार है कि महापुरुष अपने समय का प्रतिनिधित्व करते हैं, अतः उनकी जीवन-गाथाओं को इतिहास के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करना चाहिए अर्थात् इन महापुरुषों की जीवन-गाथाओं के द्वारा इतिहास की शिक्षा प्रदान की जाय। कारलाइल का विचार है कि "सामान्य पुरुष भेड़ों के झुण्ड के समान हैं और महापुरुष उन शिकारी कुत्तों के समान हैं जो भेड़ों की रक्षा करते हैं।" इसके समर्थकों का कथन है कि निश्चित क्रम तथा काल के अनुसार इन महापुरुषों के जीवन का क्रमिक इतिहास निर्मित करना चाहिए। उन्होंने आगे कहा है कि इतिहास काल-क्रम के अनुसार महापुरुषों की जीवन-गाथाओं की एक लड़ी है। विश्व-इतिहास भी इसी

प्रकार महापुरुषों की जीवन-गाथाओं की एक शृंखला है। जैसे ऊपर कहा गया है कि महापुरुष काल-विशेष के प्रतिनिधि होते हैं, उनके जीवन का अध्ययन करने से उनके समय का पूरा ज्ञान हो जाता है। इन्हीं महापुरुषों के द्वारा ऐतिहासिक आन्दोलन प्रभावित होते हैं तथा चलाये जाते हैं। इस सिद्धान्त के परिणामस्वरूप ही इतिहास में वीर-पूजा की उत्पत्ति हुई। ये महापुरुष ऐसे सजग सन्तरी और प्रहरी हैं जो अपनी प्रजा का सदा नेतृत्व करते रहते हैं और साधारण जनता उनका अनुकरण करती रहती है। जनता में न तो स्वय इतनी शक्ति है और न बुद्धि है कि वह अपना पथ स्वतः निश्चित कर सके।

जीवन-गाथा-सिद्धान्त की उपयोगिता (Utility of the Biographical-Theory) :—(१) १३ वर्ष की अवस्था से निम्न आयु के बच्चों के लिये व्यक्ति (Individual) को समझना कठिन है। उनके लिए स्थूल तथ्य तथा घटनाओं का चयन करना चाहिए। उनके लिए सबसे स्थूल तथ्य मानव है, चाहे वह पुरुष है या नारी। इन घटनाओं को केन्द्र मानकर व्यक्ति और समूहों के चरित्रों का वर्णन करना चाहिये। इससे यह लाभ होगा कि किसी व्यक्ति-विशेष को आवश्यकता से अधिक महत्व न मिलेगा तथा उसका व्यक्तित्व साधारण व्यक्ति से पृथक न प्रतीत होगा।

(२) कोई भी अपने काल-विशेष का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व नही कर सकता है। अतः विभिन्न विभागों के व्यक्तियो के चरित्रों का चयन होना चाहिए। इस प्रकार के चयन का परिणाम यह होगा कि हमारे सम्मुख इतिहास का सर्वांगीण रूप उपस्थित होगा। उसमें शान्ति के पुजारी तथा युद्ध के संचालक दोनों का स्पष्ट चरित्र उपस्थित हो सकेगा।

(३) किसी एक महापुरुष की जीवन-गाथा के चयन से तब तक कोई लाभ न होगा, जब तक कि उसकी जीवन-गाथा के साथ ही साथ उसके शिष्यों, समर्थकों तथा उसकी गति-विधि का पूरा चित्रण न उपस्थित किया जाय। इसके अतिरिक्त उसके विचारों की प्रतिक्रिया

पर भी ध्यान देना होगा। यदि हम बौद्ध धर्म के विषय में अध्ययन कर रहे हैं तो गौतम बुद्ध के चरित्र के विषय में बताने से ही कोई लाभ न होगा, जब तक कि हम उसके शिष्यों, समर्थकों, प्रचारकों तथा विरोधियों के विषय में ज्ञान नहीं देते अर्थात् हमें अशोक, हर्ष, कुमारिल भट्ट तथा शकराचार्य के विषय में भो ज्ञान देना चाहिए। इसके अतिरिक्त उसका विभिन्न व्यक्तियों पर क्या प्रभाव पड़ा, यह भी बताना अति आवश्यक है।

इन गाथाओं के चयन में हमें बड़ी सतर्कता रखना चाहिए। सर्वप्रथम तो इस बात का प्रयत्न होना चाहिए कि इनकी ऐतिहासिकता तथा ऐतिहासिक आधार न समाप्त हो जाय अर्थात् वे कल्पित कहानी न बन जायँ। दूसरे, जिस जीवन-गाथा को चुना जाय उसको इन बातों की कसौटी पर कस लेना अनिवार्य है। यह जीवन-गाथा या घटना किस काल की है अर्थात् किस काल का इतिहास बताती है तथा इस कथा का वास्तविक उपयोग क्या है, इन बातों को ध्यान में रखकर यदि चयन किया जाय तो प्रारम्भिक अवस्था के लिए इतिहास की शिक्षा-व्यवस्था हो सकती है।

जीवन-गाथा-सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of Biographical-Theory) :—(१) इस सिद्धान्त के विपक्ष में यह कहा जाता है कि यह प्रजातन्त्र का विरोधी है तथा गणतन्त्रवाद को पूर्णतया भुलाता है अर्थात् व्यक्तिवाद पर अधिक बल देता है और समाजवाद के लिए स्थान प्रदान नही करता है। इसके अतिरिक्त वह साधारण मनुष्य के विषय में कुछ नहीं कहता है।

(२) महापुरुष अपने काल-विशेष के प्रतिनिधि नहीं होते हैं। वे सदैव अपने समय से ऊपर रहते हैं और साधारण समाज से स्पष्टतः पृथक रहते हैं। वे अपने समय के क्रान्तिकारी तथा विद्रोही होते हैं। वे सदा अपने समय की व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करते हैं। ये महापुरुष अपने क्षेत्र में महान् भले ही हों, परन्तु वे सम्पूर्ण मानव-जीवन की प्रतिभा अथवा विकास का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं।

(३) इतिहास, महापुरुषों के कार्यों को लेखे के रूप में उसके प्रतिपादन के लिए शृंखला-बद्ध नहीं कर सकता है।

उपर्युक्त आलोचना में सत्यता का आभास है परन्तु फिर भी इस सिद्धान्त से हमें तथ्यों के चयन में पर्याप्त सहायता मिलती है। परन्तु इन दोनों सिद्धान्तों के तथ्यों के निर्णय से अधिक सहायता हमें इतिहास के प्रतिपादन में मिलती है। इस प्रकार तथ्यों के निर्णय सिद्धान्तों की विवेचना करने के पश्चात् हमारे सम्मुख यह प्रश्न उठता है कि इन चयन किए हुए तथ्यों को प्रस्तुतिकरण के लिए किस रीति से सङ्गठित किया जाय ? कक्षा के सम्मुख इस पाठ्य-सामग्री को रखने के पूर्व ही हमें इसका उचित रूप से सगठन करना होगा। इसका सगठन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है—

(१) एक-समान-केन्द्र-विधि (Concentric Method)

(२) काल-क्रम विधि (Chronological or Periodical Method)

(३) प्रकरण विधि (Topical Method)

(४) परावर्तन विधि (Regressive Method)

(५) लोक समाज-विधि (Community Method)

एक-समान-केन्द्र-विधि—इस विधि के विकास का श्रेय पेस्तालॉजी (Pestolozzi) को जाता है जो कि भिखारियों को उद्योगी मनुष्य बनाना चाहता था। उसका विचार था कि इतिहास के शिक्षण द्वारा समाज का पुनर्जीवन किया जा सकता है। यह विधि जर्मनी में इतिहास के शिक्षण के लिए प्रयोग में लायी गयी, जो कि बहुत ही प्रभावशाली तथा सफल सिद्ध हुई और इसका प्रभाव योरुप के अन्य देशों पर भी पड़ा। इस योजना के अनुसार इतिहास की सम्पूर्ण बातें प्रत्येक वर्ष पढ़ायी जाती हैं। पीठिका एक ही समान रहती है अर्थात् यदि हम भारतवर्ष का इतिहास समस्त स्तरों पर पढ़ाना चाहते है तो इसकी रूप रेखा समान रहेगी। केवल पाठ्य-क्रम के सक्षिप्त तथा विस्तृत होने का ही भेद रहेगा। प्रत्येक वर्ष उन रूप रेखाओं को विस्तृत बनाया जायेगा। सर्वप्रथम, केवल रूपरेखाएँ

ही दी जायेंगी, तत्पश्चात् प्रतिवर्ष उनके विस्तार में वृद्धि होती जायेगी। व्यवहारिक रूप में इतिहास के सम्पूर्ण पाठ्य-क्रम को विभागों में बाँट दिया जाता है, जैसा कि हमारे शिक्षा-बोर्ड ने कर दिया है। प्रथम तीन वर्षों में अर्थात् छटी, सातवीं तथा आठवीं कक्षाओं में सम्पूर्ण भारतीय इतिहास की रूप रेखाएं निर्धारित करदी गई हैं और उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में फिर इसी इतिहास की सामग्री को विस्तार के साथ रखा गया है। फिर उच्च कक्षाओं में उनका आलोचनात्मक तथा विस्तारमय अध्यापन कराया जाता है।

यह विधि ऐतिहासिक सामग्री के संगठन तथा शिक्षण को वृतों के द्वारा प्रतिपादित करती है। इसके साथ ही बालक का अध्यापन भी कराया जाता है। सम्पूर्ण इतिहास को एक समान-केन्द्र के वृतों की लड़ी के रूप में रखा जाता है, जिसमें बालक केन्द्रीय स्थान ग्रहण करता है। बाल्यावस्था में शिक्षण जीव-विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार रहता है और दूसरे स्तर पर जब कि बालक विकसित हो जाता है तो उसका वृत बढ़ा दिया जाता है। जैसे-जैसे वह विकसित होता जाता है वैसे-वैसे उसकी शिक्षा का वृत भी बढ़ता जाता है। परन्तु शिक्षा के विषय समान रहते हैं।

एक-समान-केन्द्र विधि की आलोचना (Criticism of Concentric Method) :—यद्यपि यह विधि बहुत लाभदायक है, तथापि इसमें कतिपय न्यूनताएं हैं जो निम्नलिखित हैं—

(१) इसके विपक्ष में एक महत्वपूर्ण तर्क यह दिया जाता है कि इस विधि के द्वारा तथ्यों की आवृति होती है, जिससे इतिहास के प्रतिपादन में कोई रोचकता नहीं आ पाती है और जिसके कारण छात्रों में नीरसता आती है तथा वे इन तथ्यों को सुनने तथा पढ़ने में कोई रुचि नहीं लेते है। परन्तु इसके समर्थकों का कहना है कि विषय की रोचकता का श्रेय उसके अध्यापक पर निर्भर है। नीरस से नीरस विषय को अध्यापक की कला रोचक बना सकती है। इस तर्क में पर्याप्त सत्यता है। अध्यापक उनको पढ़ने के लिये तत्पर बना सकता

है परन्तु जब बालक उनका अध्ययन स्वयं करेगा तब वह रुचि नहीं लेगा। वे उनका अध्ययन परीक्षा के दृष्टिकोण से भले ही करलें परन्तु रुचि के साथ नहीं करेंगे।

(२) दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि यह विधि मनोवैज्ञानिक ढङ्ग पर आधारित नहीं है। यह मनोवैज्ञानिक सूत्रों जैसे, सरल से कठिन की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर आदि का अनुसरण नही करती है।

(३) इस सिद्धान्त के अनुसार तीन-चार वर्षो के अन्दर ही दो-तीन सहस्र वर्षों का इतिहास पढ़ाने का यत्न किया जाता है, अतः छात्रों को समय तथा काल का वास्तविक बोध नहीं हो पाता, और विभिन्न चरित्रों तथा समय की विशेषताओं का समझ सकना शिक्षार्थी के लिये कठिन हो जाता है, क्योंकि प्रत्येक समय छात्र को काल सम्बन्धी एक दीर्घ मार्ग पार करना पड़ता है जिसमें अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। वह इसी को तय करने में लगा रहता है। उसे इतना अवकाश ही नहीं मिल पाता है कि वह काल को तथा चरित्र की विशेषताओं को समझ सके।

(४) इसके विरुद्ध एक तर्क यह उपस्थित किया जाता है कि किसी भी स्तर पर बालक को इतिहास का पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता, क्योंकि उसके वृत की प्रत्येक स्तर या कक्षा पर वृद्धि होती रहती है, अतः बालक किसी भी वर्ष में इतिहास का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता।

इन आलोचनाओं से अध्यापक के हृदय को दुखी नहीं करना चाहिये। इस विधि का प्रयोग यदि सतर्कता के साथ किया जाय तो यह अत्यन्त हितकारी सिद्ध होगी। प्रो० घाटे का विचार है कि प्रारम्भिक कक्षाओं में ऐतिहासिक चरित्रों का चयन और उच्च कक्षाओं में आलोचनात्मक तथा प्रकरणात्मक अध्ययन किया जाय तो इसके पर्याप्त दोषों का निराकरण किया जा सकता है।

काल-क्रम विधि—इस सिद्धान्त के लिये हमें फिर पेस्तालॉजी की ओर ध्यान देना पड़ेगा। पेस्तालॉजी ने इस विधि का कक्षा-कक्ष में

प्रयोग किया। उसने इसको रूसो के "शिक्षा प्रकृति के अनुसार" शब्दों से प्रेरित होकर अपनाया। बालक की अवस्था, रुचि और प्रकृति के अनुसार दी जाने वाली शिक्षा बहुत ही महत्वपूर्ण होगी अर्थात् जब बालक जिस शिक्षा का अनुभव करता है तब उसे वही शिक्षा दी जाय। रूसो ने कहा था कि, "हर एक प्रकार की शिक्षा के लिये एक समय होता है, जिसका पालन हमें विधिवत् करना चाहिये अर्थात् हमें उसी के अनुसार शिक्षा देनी चाहिये।" अपने गुरु के इन शब्दों के अनुसार पेस्तालॉजी ने भी कहा कि "प्रत्येक बालक को उसी प्रकार पढ़ाना चाहिये जैसी उसकी प्रकृति की मांग हो। इसके अतिरिक्त दूसरी विधि हानिकारक सिद्ध होगी।" इस प्राकृतिक प्रस्तुतिकरण को इतिहास में उसने अपनाया और कहा कि समस्त इतिहास को विभिन्न स्तरों पर बाँट देना चाहिये और प्रत्येक स्तर की विषय-सूची भिन्न होनी चाहिये। यह विधि सांस्कृतिक-युग-सिद्धान्त से भी सहायता प्राप्त करती है। यदि हम इतिहास को इस विधि के अनुसार विभिन्न स्तरों पर रखें तो हमको प्रत्येक स्तर पर एक काल का इतिहास रखना पड़ेगा। परन्तु यह वितरण काल-क्रम के अनुसार होगा। उदाहरणार्थ हम भारतीय इतिहास को विभिन्न स्तरों के लिये इस प्रकार निर्धारित कर सकते हैं :—

(१) प्राचीन काल—कक्षा ६ के लिये।

(२) राजपूत तथा सल्तनत काल—कक्षा ७ के लिये।

(३) मुगल-काल—कक्षा ८ के लिये।

(४) ब्रिटिश काल—कक्षा ९ के लिये।

(५) आधुनिक काल—(स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् का काल) कक्षा १० के लिये।

इतिहास के शिक्षक को इन कालों का चयन करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

(१) प्रत्येक काल अपनी कुछ विशेषताएँ रखता है। उसका चयन

करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि उस काल की मुख्य विशेषताओं का परित्याग तो नहीं किया गया या उनका सम्बन्ध-विच्छेद तो नहीं हो रहा है।

(२) प्रत्येक काल की एक केन्द्रीय समस्या होनी चाहिये जिसके चारों ओर विभिन्न ऐतिहासिक घटनाएँ तथा व्यक्तित्वों का होना आवश्यक है। उदाहरणार्थ यदि हम मराठा-काल का चयन करते हैं, तो उस काल की सबसे प्रमुख समस्या स्वराज्य-प्राप्ति थी और उसको प्राप्त करने के लिये विभिन्न प्रयत्न किये गये जो कि ऐतिहासिक घटनाएँ हैं। जैसे—पानीपत का युद्ध, (सारदेसाई के अनुसार)—शिवाजी की आगरा यात्रा, आदि। इसमें बहुत से व्यक्तियों ने कार्य किया जैसे शाहजी, शिवाजी बाजीराव प्रथम, बालाजीराव, दत्ताजी भाऊ, विश्वासराव आदि।

(३) जो काल चुना जाय वह महापुरुषों की क्रियाओं से परिपूर्ण होना चाहिये, क्योंकि बालक गुरुनानक, कबीर तथा चैतन्य आदि के कार्यों में रुचि नहीं रखते, वरन् नेपोलियन, राणाप्रताप तथा सिकन्दर के कार्यों में रुचि रखते हैं।

(४) कुछ विद्वान तो सांस्कृतिक-युग-सिद्धान्त से प्रभावित होकर यह कहते हैं कि प्रारम्भिक कक्षाओं में मानव-जाति का प्रारम्भिक इतिहास पढ़ाया जाना चाहिये। इस धारणा के अनुसार इतिहास सामग्री का विभिन्न स्तरों पर वितरण होना चाहिये। परन्तु यह सदैव सत्य नहीं है कि मानव-जाति का प्रारम्भिक इतिहास सरल है। भारतीय प्राचीन इतिहास जटिलताओं से परिपूर्ण है। योरुप का प्राचीन सांस्कृतिक इतिहास भी बहुत जटिल है।

काल-क्रम-विधि की उपयोगिता (Utility of the Periodical Method) :—(१) नवीन पाठ्य-सामग्री के प्रस्तुतिकरण से रोचकता आती है और इससे नीरसता को दूर किया जा सकता है। यह सिद्धांत प्रत्येक कक्षा के लिये नवीन सामग्री प्रदान करता है।

(२) इस सिद्धान्त के द्वारा विषय के अध्ययन में रुचि स्थापित की जा सकती है। इसके अतिरिक्त नवीन पाठ्य-सामग्री से पाठ्य-क्रम में विचित्रता उत्पन्न होती है।

(३) नवीनता तथा रुचि कक्षा-कक्ष की अनुशासन की समस्या को सुलझाने में सहायक है। इस सिद्धान्त से विषय में रुचि तथा नवीनता उत्पन्न की जा सकती है।

काल-क्रम-विधि सिद्धान्त की आलोचना (Criticism of the Periodical Theory):—(१) इस सिद्धान्त के द्वारा मनोविज्ञान तथा उसके सूत्रों का उल्लघन किया जाता है। जब हम इतिहास को कालों में विभाजित करते हैं तब एक काल ऐसा भी हो सकता है जो बहुत सरल तथा दूसरा जटिल हो। यदि हम काल-क्रम के अनुसार उनको लें, तो हो सकता कि पहले जटिल काल आवे और उसके पश्चात् सरल। उस समय हम "सरल से जटिल की ओर" वाले सूत्र का उल्लघन करते हैं।

(२) इस सिद्धान्त के अनुसार काल की घटनाओं के भूलने की भी सम्भावना है, क्योंकि जो काल एक स्तर पर पढ़ाया जा चुका है उसकी आवृत्ति का कोई अवसर दूसरे स्तर पर नहीं मिलता है।

(३) यदि इतिहास का शिक्षक इतिहास का विभाजन सांस्कृतिक-युग-सिद्धान्त के अनुसार करता है तो प्राचीन काल का इतिहास बालकों को ही पढ़ाया जायगा, अतः उसे सरलातिसरल रखना पड़ेगा और उस काल के इतिहास का विस्तृत तथा गम्भीर अध्ययन करने का अवसर ही नहीं मिलेगा। वे अपने प्राचीन काल के इतिहास की सांस्कृतिक और सामाजिक विकास की बातों का अध्ययन नहीं कर पायेंगे। इस प्रकार प्राचीन काल का इतिहास कुछ कहानियों तथा गाथाओं तक ही सीमित रह जायगा। इससे यह स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त प्राचीन काल के इतिहास के साथ पूर्ण न्याय नहीं कर पाता, जो कि इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी दुर्बलता है।

(४) यह इतिहास के प्रत्येक अध्यापक की क्षमता के बाहर है कि वह अपने राष्ट्र के इतिहास का विभाजन उपयुक्त कालों में कर सके। यह इस सिद्धान्त की दुर्बलता है कि इतिहास की सामग्री का विभाजन बालक की अवस्था, रुचि तथा प्रकृति के अनुसार ठीक प्रकार से नहीं किया जा सकता है।

काल-क्रम तथा एक-समान-केन्द्र विधियों के लाभ तथा दुर्बलताएँ देखने के पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि इन दोनों विधियों का किस प्रकार समन्वय स्थापित किया जाय। क्योंकि एक विधि सर्वाङ्ग रूप से सम्पूर्ण नहीं हो सकती है। इन दोनों विधियों के समन्वय से ही सङ्गठन का प्रश्न काफी सीमा तक निम्नलिखित प्रकार से सुलझाया जा सकता है :—

(१) **प्रारम्भिक स्तर**—प्राइमरी स्तर पर हम जीवन-गाथा सिद्धांत को ग्रहण कर सकते हैं। इस स्तर पर हमारा ध्येय स्थूल तथा सरल सामग्री देने का है। वे कहानियाँ चुनी जायँ जो समस्त पाठ्य-क्रम को पूरा करती हों, परन्तु ये कहानियाँ काल-क्रम के अनुसार हों।

(२) **माध्यमिक स्तर**—जूनियर हाई स्कूल स्तर पर हम काल-क्रम विधि को ग्रहण कर सकते हैं और इसके द्वारा समस्त इतिहास के पाठ्य-क्रम की आवृत्ति कर सकते हैं। छटी कक्षा में प्राचीन भारत का इतिहास, सातवीं तथा आठवीं कक्षाओं में मध्यकालीन तथा आधुनिक भारत का इतिहास दे सकते हैं।

(३) उच्चतर माध्यमिक स्तर पर हमारे पास दो वर्ष का समय है उसमें हम एक-समान-केन्द्र-विधि को ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु यहाँ हमारा दृष्टिकोण तथ्यात्मक न होकर आलोचनात्मक होगा। मुख्य सिद्धान्तों तथा समस्याओं पर अधिक बल दिया जायगा और कम मुख्य घटनाओं तथा व्यक्तियों को हटाया जायगा। यदि हमारे पास केवल एक वर्ष का समय है, तो एक काल में विशेषता प्राप्त करना हमारा मुख्य ध्येय होगा। इस प्रकार इस योजना में इतिहास की तीन

बार पुनरावृत्ति हो जायगी, और दोनों विधियों के लाभ प्राप्त किये जा सकेंगे।

प्रकरण-विधि—हम ऊपर एक-समान-केन्द्र-विधि तथा काल-क्रम-विधि का विवाद देख चुके हैं। प्रकरण-विधि काल-क्रम विधि को प्रयोगात्मक रूप में लाने के लिये एक मार्ग है। इस विधि के अनुसार समस्त इतिहास को विभिन्न कालों में विभाजित कर दिया जाता है। तथा इन कालों को छोटे-छोटे विभिन्न भागों में बाँट दिया जाता है और इन विभागों को प्रकरण के नाम से पुकारा जाता है। प्रकरण एक काल का छोटा समुदाय नहीं है, जैसा कि काल है, वरन् प्रकरण इतिहास में एक विचार या आन्दोलन है। इसके द्वारा ऐतिहासिक शृंखला को गति-विधि प्राप्त होती है। इसका सम्बन्ध मुख्य धारा से पृथक् नहीं होता है। इस विधि को संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में प्रधानता प्रदान की गई है। प्रकरण से तात्पर्य एक पृथक घटना से नहीं है वरन् उससे है जो किसी कारण का प्रतिनिधित्व करे और इतिहास की मुख्य घटना को प्रभावित करे। उदाहरणार्थ इगलैण्ड की औद्योगिक क्रांति, फ्रांस की क्रान्ति, आयरिश-होम-रूल-बिल आदि। भारतीय इतिहास को हम विभिन्न प्रकरणों में विभाजित कर सकते हैं, जैसे भारत में आर्यों का आगमन, आर्यों द्वारा अपनी संस्कृति का प्रचार, मौर्यों का प्रभावशाली साम्राज्य, गुप्तवंश का शासन काल, राजपूतों का उत्थान, तुर्क साम्राज्य की स्थापना, भारत में मुगलों का उत्कर्ष, मराठों का उत्कर्ष, अंग्रेजों का व्यापारियों के रूप में आगमन, सन् १८५७ का प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध, सन् १९४२ का "भारत छोड़ो" आन्दोलन आदि ये ऐसे प्रकरण नहीं हैं जिनमें एक ही व्यक्ति से सम्बन्ध रहा हो। ये एक प्रकार के आन्दोलन हैं इनमें अनेक व्यक्तियों ने भाग लिया था। जब एक व्यक्ति किसी भावना-विशेष का प्रवर्तक होता है तब वह भी एक प्रकरण हो सकता है, क्योंकि उसकी भावना का अनेक व्यक्ति समर्थन करते हैं। उदाहरणार्थ गौतम बुद्ध, अशोक, नेपोलियन, मेजनी, रूसो, विस्मार्क, क्रॉमवेल, जॉर्ज वाशिंगटन, महात्मा गांधी, लेनिन, कार्ल

मार्क्स आदि व्यक्ति एक-एक प्रकरण हो सकते हैं ।

प्रकरण-विधि के लाभ (Advantages of Topical Method) :—

(१) इस विधि के द्वारा इतिहास का विस्तृत रूप से विवेचन सम्भव है ।

(२) इसके द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों को सरलता से ग्रहण किया जा सकता है, अर्थात् इसके द्वारा तथ्यों को सरल बनाया जा सकता है जिससे वे सरलतापूर्वक ग्रहण किये जा सकें ।

(३) काल-क्रम विधि के अनुसार तथ्यों का संगठन तभी सम्भव है जब इस विधि को अपनाया जाय ।

(४) इसके द्वारा बालकों में सुगमता से समय-ज्ञान विकसित किया जा सकता है ।

(५) यह विधि अध्यापक के लिये अति हितकारी है । इसके द्वारा वह अपनी पाठ्य-सामग्री का प्रस्तुतिकरण सरलता से कर सकता है तथा अपने छात्रों को प्रकरण छाँटने के लिये प्रोत्साहित कर सकता है ।

परावर्त्तन विधि :—यदि इतिहास का उद्देश्य वतमान का स्पष्टी-करण करना है तो हमको वर्तमान के साथ प्रारम्भ करके पीछे को ओर अर्थात् भूत की ओर जाना पड़ेगा । वर्तमानकाल भूतकाल की देन है अर्थात् इसका आधार भूत है परन्तु इस विधि के समर्थकों का कहना है कि कुछ समय के पूव के भूतकाल से हमको प्रारम्भ करना चाहिये क्योंकि आज जो हम परिवर्त्तित दशाएँ देख रहे हैं उनमे से बहुत कुछ का कारण कुछ समय के पूर्व का भूतकाल ही है । इस सिद्धान्त के समर्थकों के अनुसार कुछ समय के पूर्व के भूत से प्रारम्भ करके धीरे-धीरे अतीत को देखना चाहिये, तभी हम वर्तमान के विकास का आधार प्राप्त कर सकते हैं । यद्यपि यह विधि तार्किक नहीं है, तथापि मनोवैज्ञानिकता पर आधारित है, क्योंकि इसके अनुसार हम वर्तमान से प्रारम्भ करते हैं जो कि स्थूल तथा सरल है । उसके द्वारा हम पीछे की ओर देखते हैं और वर्तमानकाल की जड़ों की खोज

अतीत में करते हैं। इस प्रकार हम अत्यन्त महत्वपूर्ण सूत्र "ज्ञात से अज्ञात की ओर" का अनुसरण करते हैं। इसके द्वारा किसी समस्या का पहले परिचयात्मक रूप दिया जाता है, पुनः अध्यापक प्राचीनकाल के इतिहास से छात्रों के सम्मुख यह समझाने का प्रयत्न करता है कि किन कारणों तथा किन बातों के परिणामस्वरूप आज की दशाएँ हमारे सम्मुख उपस्थित हुई हैं। तत्पश्चात् वह वर्तमान समय की समस्या पर विस्तृत रूप से विचार करता है। वर्तमान का उपयोग भूत का परिचय प्राप्त करने के लिये किया जाता है, परन्तु इसका पुनः परावर्त्तन नहीं होता । प्रो० घाटे ने इस विधि को लोलक-विधि (Pendulum Method) नाम दिया है। यदि अध्यापक मध्यकाल का इतिहास पढ़ा रहा है तो उसे कभी प्राचीन की ओर जाना पड़ता है तो कभी आधुनिक की ओर। परन्तु इस पद्धति का प्रयोग इतिहास के पाठ की प्रस्तावना में ही नहीं करना चाहिये, जैसा कि प्रशिक्षण विद्यालयों के विद्यार्थी करते हैं, वरन् उनको आवश्यकतानुसार इसके क्रमिक रूप का प्रयोग करना चाहिये।

लोकसमाज-विधि :—इस विधि के प्रयोग का विचार साल्जमेन (Salzmann) ने दिया था। परन्तु सर्वप्रथम इसका प्रयोग जर्मनी में बड़े उत्साह के साथ किया गया। तत्पश्चात् विभिन्न देशों में इसका प्रयोग किया गया । संयुक्त-राष्ट्र-अमेरिका में इसका प्रयोग विशेष विस्तार के साथ किया गया है।

इस विधि के अनुसार बालक को उसके तत्कालिक वातावरण से सर्वप्रथम परिचित कराया जाय। उसके पूर्ण ज्ञान के पश्चात् जब बालक शिक्षालय में जाता है तो उसको शिक्षालय रूपी समाज तथा उसकी बहुमुखी क्रियाओं का ज्ञान दिया जावे जिसमें उसकी परम्पराओं, आर्थिक स्थिति, सस्थाओं तथा उसके भूगोल का ज्ञान दिया जाय। इस कार्य को पूर्णता प्रदान करने में स्थानीय इतिहास की कहानियाँ विशेष महत्ता का कार्य करेंगीं, इस कारण उनका भी ज्ञान आवश्यक है। इसके पश्चात् उसको पड़ौसी देशों के समाजों का ज्ञान दिया जा

सकता है, पुनः सम्पूर्ण विश्व के समाज से परिचित कराया जा सकता है। प्रो० जॉनसन ने कहा है कि यह विधि मनोवैज्ञानिक है, परन्तु यह तथ्यों के सङ्गठन का सिद्धान्त नहीं है। इसको इतिहास-शिक्षण का आधार कह सकते हैं अर्थात् हम इसके द्वारा इतिहास का स्तरान्तीकरण नहीं कर सकते हैं।

इतिहास के पाठ्य-क्रम के विषय (Contents of History Syllabus)

तथ्यों के निर्णय के सिद्धान्तों तथा सङ्गठन की विधियों का निरीक्षण करने के पश्चात् यह प्रश्न स्वतः ही उठता है कि पाठ्य-क्रम में किन-किन तथ्यों को स्थान मिलना चाहिये। इस प्रश्न का उत्तर विभिन्न परिस्थितियों तथा वातावरण और राष्ट्रों के अनुसार पृथक-पृथक हो सकता है, परन्तु हमारे राष्ट्र में जो नमूना अपनाया जाता है उसके अनुसार विभिन्न विषयों को स्थान दिया गया है जो कि निम्नलिखित हैं—

(१) **प्राचीनकाल की संस्कृतियों की रूपरेखा** (Outline of Ancient Cultures) :—साधारण रूप से हम भारतीय इतिहास का अध्ययन आर्यों के आगमन से या उनसे पूर्व के इतिहास से प्रारम्भ करते हैं। परन्तु अब वैज्ञानिक रूप से यह स्वीकार कर लिया गया है कि भारतीय इतिहास का अध्ययन मानव-जाति के विकास के इतिहास से प्रारम्भ किया जाना चाहिये। इसके लिये जैसा कि के० डी० घोष ने कहा है, हमें अपने पाठ्य-क्रम में सुमेरिया, ग्रीस, रोम, बेबीलोनियन, मिस्र आदि देशों की प्राचीन संस्कृतियों की कहानी रखनी चाहिये। इसके द्वारा बालक क्रम को समझने में समर्थ होंगे। परन्तु ये कहानियाँ सरल तथा रूपरेखा के रूप में होंगी।

(२) **राष्ट्रीय इतिहास** (National History) :—राष्ट्रीय इतिहास, इतिहास के पाठ्य-क्रम का केन्द्र रहेगा। इसके द्वारा बालकों को स्वतन्त्रता के विकास का ज्ञान दिया जाना चाहिये। उनको इस देश में आने वाली जातियों तथा उनके उत्थान तथा पतन का भी ज्ञान

दिया जाय। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि बालकों को राष्ट्रीय इतिहास के सभी अङ्गों का पूर्ण ज्ञान दिया जाय।

(३) **स्थानीय इतिहास** (Local History):—इसके विषय में विस्तृत रूप से पिछले अध्याय में कह चुके हैं। पाठ्य-क्रम के लिये स्थानीय इतिहास से भी तथ्य लिये जायँ।

(४) **विश्व इतिहास** (World History) :—जारविश (Jarvis) ने कहा है कि इतिहास एक सम्पूर्ण एकता है। यह विश्व-इतिहास के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। हम इसके ज्ञान के बिना अपने राष्ट्र का इतिहास प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं, क्योंकि कोई भी राष्ट्र अकेला नहीं रह सकता है, अर्थात् उसका स्थायित्व अकेलेपन में सम्भव नहीं है। इसलिये हमें विश्व-इतिहास से तथ्यों का चयन करके पाठ्य-क्रम में रखना चाहिये। विश्व-इतिहास का पाठ्य-क्रम हम प्रारम्भिक कक्षाओं में कहानियों के रूप में तथा उच्च कक्षाओं में इसका उन्नत पाठ्य-क्रम निर्धारित कर सकते हैं।

विश्व-इतिहास के प्रारम्भिक पाठ्य-क्रम में निम्नलिखित तथ्य होने चाहिये—

१—शिकारी मानव (Hunter Man)

२—भेड़ों को पालने वाला मानव (Shepherd Man)

३—किसान के रूप में मानव (Man the Farmer)

४—मिस्र के मनुष्य, जिन्होंने अनाज पैदा किया।

५—बेबोलोनिया के मनुष्य-(नहरों के द्वारा सिंचाई, लेखन-कला की उत्पत्ति)।

६—मोहनजोदिड़ो की सभ्यता।

७—भारतीय आर्य।

८—फोनेसियन जाति।

९—ग्रीस की सभ्यता-(स्वतन्त्र मनुष्य, किसान, घोड़ों का प्रयोग, व्यायाम तथा खेल आदि)।

१०—रोमन सभ्यता।

इनके अतिरिक्त उच्च कक्षाओं के लिये विश्व-इतिहास का उन्नत पाठ्य-क्रम होगा, जिसमें प्राचीन देशों को ही स्थान नहीं दिया जायगा वरन् प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक सस्कृतियों को भी स्थान मिलेगा। इसके अतिरिक्त उन आन्दोलनों का समावेश किया जाना चाहिये, जिन्होंने समस्त विश्व को प्रभावित किया है।

(५) **प्रान्तीय-इतिहास** से भी कहानियाँ ली जानी चाहिये। भारतवर्ष के प्रान्त स्वयं अपना एक पृथक इतिहास रखते हैं। जो छात्र जिस प्रान्त का निवासी है उसको उसके इतिहास की कहानियों का ज्ञान कराया जाय। इसके अतिरिक्त समस्त प्रान्तों का इतिहास राष्ट्र के इतिहास के साथ-साथ चलता रहे। इनका अलग कोई महत्त्व नहीं है वरन् राष्ट्रीय इतिहास को सफल बनाने में इन्होंने जो कार्य किये हैं, उनका वर्णन किया जाना चाहिये।

(६) के० डी० घोष का विचार है कि भारतीय छात्रों के लिये इतिहास के पाठ्य-क्रम में इङ्गलिश-इतिहास तथा ब्रिटिश-साम्राज्य के इतिहास को भी स्थान दिया जाय। इसका प्रयोग भारतीयों के सम्बन्धों को प्रकट करने के लिये किया जाय।

(७) **वैधानिक इतिहास तथा नागरिक-शास्त्र** (Constitutional History & Civics):—इनके द्वारा बालकों में आदर्श नागरिक तथा विश्व-बन्धुत्व की भावना को जागृत किया जा सकता है। जारविश का विचार है कि इतिहास के साथ नागरिक-शास्त्र का एक प्रारम्भिक पाठ्य-क्रम रखा जाय।

(८) सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक इतिहास से भी विषय लिए जायँ।

(६) **प्रचलित या वर्तमान परिस्थितियों का ज्ञान** (Knowledge of Current Affairs):—वे विषय भी रखे जायँ, जिनके द्वारा छात्र वर्तमान परिस्थितियों से परिचित रहें।

विभिन्न कक्षाओं के लिये इतिहास के पाठ्य-क्रम की रूपरेखा

(An Outline of History Syllabus for Various Classes)

कक्षा ५ के लिये—

इस स्तर पर छात्रों को भारतीय जीवन के विषय में ज्ञान दिया जाय।

(१) भारतवर्ष के प्राकृतिक, राजनीतिक तथा जलवायु के अनुसार विभक्त भागों का ज्ञान।

(२) ऋतुएं

(३) पैदावारों के विषय में ज्ञान।

(४) भारतीय व्यक्तित्व—राम, कृष्ण, अगस्त्य मुनि, अर्जुन, गौतम बुद्ध, महावीर, अशोक, हर्ष आदि।

(५) नागरिकता के विषय में परिचित कराना—जिला, नगर आदि के प्रबन्ध का ज्ञान।

(६) वर्तमान परिस्थितियों का ज्ञान कराना जिनका ऐतिहासिक महत्त्व हो।

कक्षा ६ के लिये—

(१) प्राचीन काल के मानव का जीवन, उसका प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष।

(२) उसके भोजन, रहन-सहन, कपड़े, मकान आदि का ज्ञान।

(३) मानव-जाति के विकास का इतिहास कहानियों के द्वारा।

(४) भारतीय इतिहास।

सिन्धु घाटी की सभ्यता, आर्य-सभ्यता, महाकाव्य-काल, जाति-प्रथा, सिकन्दर का आक्रमण, ३२६ ई० पूर्व की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशा, मौर्यवंश, गुप्तवंश, जैन-धर्म तथा बौद्ध-धर्म, कनिष्क तथा हर्ष।

(५) नागरिक शास्त्र।

कक्षा ७ के लिए—

(१) राजपूतों का उत्थान तथा पतन।

(२) अरबों का सिन्ध पर आक्रमण ।

(३) महमूद गजनवी तथा मौहम्मद गौरी ।

(४) गुलामवंश, तुगलकवंश, खिलजी, लोदी तथा सैयदवंश ।

(५) दक्षिण के साम्राज्यों का संक्षिप्त इतिहास (विजयनगर तथा बहमनी साम्राज्य)

(६) मुगलवंश, सन् १५२६ से १७०७ तक ।

(७) नागरिक शास्त्र (राज्यों के शासन-प्रबन्ध का ज्ञान) ।

कक्षा ८ के लिए—

(१) मराठों तथा सिक्खों का उत्कर्ष ।

(२) यूरोपवासियों का आगमन ।

(३) फ्रांसीसियों तथा अँग्रेजों का संघर्ष ।

(४) ईस्ट इंडिया कम्पनी, बंगाल-विजय, रेग्यूलेटिंग एक्ट ।

(५) गवर्नर जनरलों का शासन ।

(६) प्रथम स्वतन्त्रता युद्ध से स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक का इतिहास ।

(७) नागरिक शास्त्र

(अ) संघ का शासन

(ब) अन्तर्राष्ट्रीय संघ तथा उसकी शाखाएँ

(स) भारत तथा विश्व ।

कक्षा ९ तथा १० के लिए—

(१) (अ) प्राचीन भारत—

(आदिम निवासी के इतिहास के अतिरिक्त सिन्धुघाटी की सभ्यता से लेकर हर्ष तक)

(ब) मध्यकाल तथा मुगलकाल—

(राजपूत तथा सल्तनतकाल, मुगलवंश १५२६ से लेकर १७६१ ई० तक)

(स) ब्रिटिश काल—

मराठों तथा सिक्खों के उत्कर्ष से वर्तमान काल तक ।

(२) विश्व-इतिहास में सरल तथा साधारण पाठ्य-क्रम तथा वर्तमान काल की परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला जाये।

इस स्तर पर इतिहास आलोचनात्मक ढङ्ग से प्रस्तुत किया जाना चाहिये, तथा सूत्र-पद्धति का भी प्रयोग किया जाय।

प्रश्न

१—ऐतिहासिक तथ्यों के संगठन की एक समान केन्द्र विधि का विवेचन करो। उसके गुणों तथा सीमाओं पर प्रकाश डालिये।

(Discuss the Concentric Method of organizing the historical facts. Mention its advantages and limitations.)

२—काल-क्रम तथा एक-समान-केन्द्र विधियों की विवेचना कीजिये तथा प्रत्येक के गुणों तथा अवगुणों पर प्रकाश डालिये।

(What are Periodic and Concentric Methods ? Discuss the merits and demerits of each.)

३—प्रकरण तथा परावर्त्तन विधियों के विषय में संक्षिप्त नोट लिखिये।

(Write short notes on Topical and Regressive Methods.)

४—तथ्यों के संकलन की मनोवैज्ञानिक विधियाँ क्या हैं ? उनके गुणों तथा सीमाओं पर प्रकाश डालिये।

(What are the Psychological Methods of selection of facts ? Discuss the merits and limitations of each.)

अध्याय—५

इतिहास-शिक्षण की पद्धतियाँ (Methods of Teaching History)

शिक्षा-सम्बन्धी थोड़ी भी जानकारी रखने वाला व्यक्ति यह जानता है कि शिक्षा-संस्थाओं में बालक-बालिकाएँ विभिन्न प्रकार के वातावरण से आते हैं। उनकी आयु, योग्यता, क्षमता तथा रुचियों में भिन्नता होती है। वे प्रत्येक वस्तु को अपने ही दृष्टिकोण से देखते हैं। इसलिए इतिहास-शिक्षण की पद्धति भी इस प्रकार की होनी चाहिए कि उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं का उपयोग हो जाय। विधियों का निर्धारण भी विषय-सामग्री के समान छात्रों की आयु, रुचि तथा मानसिक स्तर तथा उनकी क्षमता के आधार पर होने लगा है। यद्यपि इतिहास-शिक्षण की कोई विधि नहीं है, वरन् शिक्षण पद्धतियाँ हैं। उनमें प्रमुख पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं—

(अ) कथा-पद्धति (Story-telling Method)

(ब) जीवन-गाथा-पद्धति (Biographical Method)

(स) सूत्र-पद्धति (Source Method)

(द) पुस्तक-पठन-पद्धति (Text Book Method)

(य) एसाइनमेन्ट-पद्धति (Assignment Method or Dalton Method)

(र) योजना-पद्धति (Project Method)

(अ) कथा-पद्धति

कथा-पद्धति में कहानी कहना, बातचीत करना, भाषण देना आदि का समावेश है, क्योंकि इन सबमें वाणी का उपयोग करना पड़ता है। छोटी कक्षाओं में कहानी कहना ही इतिहास सिखाने की पद्धति है। प्लेटो (Plato) ने भी इस विधि को छोटे-बच्चों की शिक्षा के लिये उपयुक्त बतलाया था। मनुष्य बाल्यावस्था तथा वृद्धावस्था दोनों हीं में कहानी सुनने तथा कहने में रुचि प्रदर्शित करता है। कुछ व्यक्तियों में कहानी कहने की कला स्वाभाविक होती है और कुछ व्यक्ति प्रयत्न करके सीखते हैं। इतिहास के शिक्षक को यह कला अवश्य आनी चाहिये। उत्तम कथा-वाचक में निम्नलिखित गुण होने चाहिये—

(१) जो कहानी कहनी है वह ठीक प्रकार से याद होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त कहानी से सम्बन्धित सभी ऐतिहासिक बातों में उसकी दक्षता होनी चाहिये। उसको उस काल की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक दशाओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये, जिनसे उसकी कहानियाँ सम्बन्धित हैं।

(२) कथा-वाचक निजत्व की भावना से ग्रसित नहीं होना चाहिये। वह निजत्व को भूलकर बालकों के साथ मिल जाये, तभी कहानी सफल हो सकेगी।

(३) अध्यापक को कहानी की विषय-सामग्री में रुचि लेनी चाहिये। यदि वह ऐसा करने में असफल रहता है तो वह बालकों में रुचि उत्पन्न करने में असफल रहेगा।

(४) अध्यापक को ऐतिहासिक महापुरुषों के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिये।

(५) कहानी को पूर्ण हाव-भाव के साथ कहकर रोचक बनाने का प्रयास करना चाहिये। शिक्षक को कहानी के भावों के अनुसार अपनी वाणी में उतार-चढ़ाव लाना चाहिये। कहानी के पात्रों के सम्बन्ध में वही भाव प्रदर्शित करना चाहिए जो श्रोताओं में उत्पन्न करने हों।

(६) कहानी की भाषा छात्रों के स्तर के अनुसार होनी चाहिए जिससे उनका ध्यान कहानी में लगा रहे।

(७) यथा-स्थान कहानी को स्पष्ट करने के लिए उचित सहायक सामग्री का संकलन करना चाहिए तथा श्यामपट का प्रयोग करके बालकों के मस्तिष्क में कहानी को अधिक स्थायी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

कथा पद्धति के लाभ (Advantages of Story-Telling Method):—

(१) इस पद्धति का सबसे प्रमुख लाभ यह है कि इसके द्वारा बालकों में इतिहास के लिये रुचि उत्पन्न की जा सकती है।

(२) इससे बालकों की कल्पना-शक्ति का विकास होता है। इसके लिये अध्यापक बालकों को पहले रूपरेखा दे सकता है और इस रूप-रेखा को बालकों से पूर्ण करवा सकता है। बालक इसको पूर्ण करने में अपनी कल्पना-शक्ति का प्रयोग करेंगे।

(३) इस पद्धति से बालक अपने गुप्त भावों को व्यक्त करने का अवसर प्राप्त करते हैं। बालकों से विभिन्न पात्रों के कथन व्यक्त करने के लिये कहा जा सकता है, जिससे उनकी झिझक तथा लज्जाशील प्रवृत्ति समाप्त हो सकती है।

(४) कहानी के द्वारा उनकी जिज्ञासा को तृप्त करके अनुशासित किया जा सकता है।

(५) जारविस (Jarvis) का विचार है कि इससे बालकों में नैतिक गुणों का विकास होता है। क्योंकि वे अनेक नैतिक पुरुषों की कहानियाँ पढ़ते हैं, अतः उनके कार्यों का स्वतः ही बालकों पर प्रभाव पड़ता है। इस अवस्था में उनमें अनुकरण करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति भी होती है। अतः वे अपना चरित्र उनके अनुसार बनाने का प्रयत्न करते हैं।

कहानी के प्रकार (Types of Stories) :—कहानी दो प्रकार की होती हैं, प्रथम सत्य तथा द्वितीय असत्य या काल्पनिक। इतिहास-अध्यापक को उन्हीं कहानियों का चयन करना चाहिये, जिनमें वास्तविक ऐतिहासिक तथ्य हैं। दूसरे प्रकार की कहानियों में परियों की कहानियाँ आती हैं। इतिहास-शिक्षण में द्वितीय प्रकार की कहानियों का कोई महत्त्व नहीं है।

(ब) जीवन-गाथा-पद्धति

इतिहास-शिक्षण में जीवन-गाथा पद्धति का भी व्यवहार होता है। इस विधि के अनुसार ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं के इतिहास का वर्णन किया जाता है और एक शासक के बाद जो दूसरा शासक आता है उसके जीवन और कार्यों के आधार पर इतिहास की शिक्षा प्रदान की जाती है। इस विधि के समर्थकों का कहना है कि महापुरुष अपने समय का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे ही आन्दोलनों के प्रवर्तक होते हैं। इस प्रकार जीवन-गाथा पद्धति भी इतिहास-शिक्षण में उपयोगी है। परन्तु इसकी उपयोगिता अधिकतर प्राइमरी तथा कुछ सीमा तक माध्यमिक कक्षाओं में है। प्रारम्भिक कक्षाओं में इतिहास को कहानी का रूप प्रदान करना पड़ता है। अतः अध्यापक ऐतिहासिक पुरुषों के जीवन की कहानियाँ सुना सकता है। परन्तु उच्च कक्षाओं में इतिहास शिक्षण सामाजिक दृष्टिकोण से होना चाहिये। उस समय छात्र को समाज के विकास से सम्बन्धित इतिहास का ज्ञान दिया जाना चाहिये। उच्च कक्षाओं के छात्रों की दृष्टि में व्यक्ति से अधिक समाज का महत्व होता है। इसलिये प्रारम्भिक कक्षाओं में जीवन-गाथा-पद्धति का व्यवहार करना चाहिये और उच्च कक्षाओं में सामाजिक विकास की पद्धति से शिक्षण होना चाहिये। माध्यमिक कक्षाओं में इन दोनों पद्धतियों का प्रयोग हो सकता है।

जीवन-गाथा-पद्धति के लाभ (Advantages of Biographical Method) :—

(१) अध्ययन के लिये समाज की अपेक्षा व्यक्ति अधिक सुगम है।

जीवनी व्यक्ति का ही विवेचन करती है जो सुगमता से ग्रहण की जा सकती है।

(२) इस पद्धति के द्वारा तथ्यों को रोचक तथा सजीव बनाया जा सकता है।

(३) यह पद्धति कुछ सीमा तक प्रोत्साहित करने (Motivation) की समस्या का हल प्रदान करती है।

(४) इस विधि के द्वारा बालकों में देश-प्रेम तथा देश-भक्ति की भावना उत्पन्न की जा सकती है। यह बालकों को सत्य तथा असत्य का ज्ञान कराती है।

जीवन-गाथा पद्धति के दोष (Defects of Biographical Method) :—

(१) यह अप्रजातांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इसके द्वारा उच्च तथा निम्न का भेद स्थापित किया जाता है। अर्थात् यह समानता के सिद्धान्त के विरुद्ध है। यह महापुरुषों का ही वर्णन देती है।

(२) इसके द्वारा इतिहास की सामग्री में शृंखला स्थापित नहीं हो पाती।

(३) अपने समय का पूर्णरूप से एक व्यक्ति प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता है।

(४) इसके द्वारा बालकों में समय-ज्ञान ठीक प्रकार से स्थापित नहीं किया जा सकता है।

अच्छी जीवनी के आवश्यक तत्व (Essentials of a Good Biography) :—

(१) एक बहुत ही क्रियाशील-व्यक्तित्व चुना जाना चाहिये जो कि बालकों के मस्तिष्कों पर सदैव के लिये प्रभाव डाल सके। उसका चरित्र भी श्रेष्ठ होना चाहिये।

(२) लेखक की विचारधारा भी सहानुभूतिपूर्ण तथा निष्पक्ष होनी

चाहिये। उसको व्यक्तित्व के सभी अंगों का पूर्ण तथा निष्पक्ष विवेचन करना चाहिये।

(३) एक अच्छी जीवनी में सम्बन्धित व्यक्तियों के सामाजिक उत्थान का वर्णन भी नितान्त आवश्यक है।

(४) जीवनी अतीत की घटनाओं का भी वर्णन करे।

(ख) सूत्र या आधार पद्धति

इतिहास पढ़ाने की विधियों में सूत्र-पद्धति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका महत्त्व जानने से पूर्व यह प्रश्न उठता है कि सूत्र का क्या अर्थ है और इस पद्धति का प्रयोग किस स्तर पर किया जाना चाहिये। इन प्रश्नों के उत्तर अधोलिखित हैं—

भूतकाल के इतिहास का पता लगाना एक जटिल प्रश्न है। वर्तमान समय में निवास करने वाला मनुष्य व्यक्तिगत रूप से इस बात का ज्ञान किस प्रकार प्राप्त कर सकता है कि शताब्दियों पूर्व किसी देश में क्या हुआ। इतिहास वैज्ञानिक विषय है अतः इतिहासकार निरर्थक तथा काल्पनिक कहानियों के आधार पर अपनी ऐतिहासिक बातों का निर्माण नहीं कर सकता है। वह चाहे किसी काल का इतिहास लिखे, उसके लिये यह नितान्त आवश्यक है कि वह उस समय की वास्तविकता का वर्णन करे। अतः इतिहासकार का आधार तथ्य हैं। इतिहास स्पष्ट प्रमाणों तथा वास्तविक आधारों पर आश्रित होता है। अतः इतिहासकार वास्तविक बातों के आधार पर ही इतिहास लिखते हैं। कोई भी लेखक किसी भी प्रकार से स्वयं भूतकाल में नहीं जा सकता। अतः उस समय जो व्यक्ति उपस्थित थे, उन्होंने जो घटनाएँ देखीं और उन्हें लिखकर रखा, अथवा उनके पत्र-व्यवहार पर इतिहासकार को रहना पड़ता है। इन प्रमाणों और आधारों को चाहे वे लिखित हैं अथवा अलिखित हम तथ्य कहते हैं। ये तथ्य हमारे इतिहास के लिये सूत्र हैं। इन तथ्यों के द्वारा हमें एक ऐसा सूत्र मिलता है जिससे हम इतिहास का शरीर निर्मित कर लेते हैं।

सूत्रों के प्रयोग के विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि इन सूत्रों का प्रयोग उच्च कक्षाओं में होना चाहिये, क्योंकि जूनियर-हाई-स्कूल-स्तर के छात्रों की बुद्धि इतनी विकसित नहीं हो पाती कि वे इनको समझ सकें तथा इनका प्रयोग कर सकें। परन्तु डा० कीटिंग का मत है कि इनका प्रयोग जूनियर स्तर पर किया जाना चाहिये। परन्तु यह प्रयोग वातावरण स्थापित करने के लिये किया जाय। सूत्रों के द्वारा ऐसा वातारण उत्पन्न किया जाय, जिसमें बालक शिक्षित किया जा सके। इस स्तर पर सूत्रों का विश्लेषण नहीं किया जायगा।

सूत्रों का वर्गीकरण (Classification of the Sources) :—

इतिहासकार के सूत्र भूतकाल के मनुष्यों द्वारा छोड़े हुए चिन्ह हैं। ये चिन्ह विभिन्न रूपों में हमें प्राप्त होते हैं। इन अवशेषों को अध्ययन की सुविधानुसार हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। वे निम्न-लिखित हैं—

(१) परम्पराएँ (Traditions)
(२) अवशेष (Remains)

परम्पराओं को हम इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं—

(अ) मौखिक परम्पराएँ।
(ब) हस्तलिखित तथा छपी हुई परम्पराएँ।
(स) चित्रात्मक परम्पराएँ।

अवशेष अचेतनशील स्मारक चिन्ह हैं। इनके अन्तर्गत कलात्मक प्रदर्शन-सामग्री, कानून तथा सांस्कृतिक स्पर्श-लक्षण आते हैं, जब कि परम्पराएँ चेतनशील स्मारक चिन्ह हैं। सूत्रों का विभाजन हम एक दूसरे ढंग से भी कर सकते हैं। वे निम्नलिखित हैं—

(१) **मौलिक सूत्र** (Primary Sources)—

इनके अन्तर्गत प्रत्यक्ष अवशेष-सामग्री आती है। उदाहरणार्थ स्मारक, सिक्के, यन्त्र आदि। इसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष अंक या छाप भी

आती है, उदाहरणार्थ--आज्ञापत्र, आदेश, फरमान, संविधान, सन्धियाँ न्यायालयों के निर्णय तथा व्यक्तिगत इतिहास आदि।

(२) **सहायक सूत्र** (Secondary Sources)—

इसके अन्तर्गत पुस्तकें, जीवन-चरित्र, आत्मकथाएँ इत्यादि आते हैं। सूत्रों को एक अन्य प्रकार से भी विभाजित किया गया है, जो इस प्रकार है—

(१) इतिहास काल या वर्तमान काल (History Period) के सूत्र।

(२) आदि-इतिहास काल (Proto-Historical Period) के सूत्र।

(३) पूर्व-इतिहास काल (Pre-Historical Period) के सूत्र।

मानव-विज्ञान के शास्त्रियों ने इतिहास को उपर्युक्त कालों में विभाजित किया है। वर्तमान काल का समय ये लगभग दो सहस्र वर्ष मानते हैं। इस काल से सम्बन्ध रखने वाले सूत्रों में प्राचीनकाल के लेख आदि हैं। भारतीय इतिहास में यह काल सिकन्दर के आक्रमण से प्रारम्भ होता है। इस काल के सूत्र जो हमें प्राप्त होते हैं, वे इस प्रकार हैं—बाखार (Bakhars), आत्मकथाएँ, डायरी, फरमान, आदेश, संविधान, व्यापारिक-पत्र आदि। इस काल के सूत्र शिलालेख, अथवा ताम्र-पत्र आदि पर के लेख हैं। प्राचीन समय के सम्राटों तथा शासकों ने अपने समय में जो घोषणाएँ आदि की थीं, वे इन ताम्रपत्रों पर लिखी हुई मिलती हैं। अनेक इतिहासकारों ने इन ताम्रपत्रों तथा शिलालेखों की सहायता से काल विशेष का इतिहास ही तैयार कर डाला है। दक्षिण-भारत के इतिहास की रूपरेखा डा० भाण्डारकर ने इन्ही ताम्रपत्रों की सहायता से की है।

वर्तमान काल के पूर्वकाल के इतिहास को मानव-विज्ञान-शास्त्री, आदि इतिहास-काल कहते हैं। भारतीय इतिहास में यह काल महाकाव्य-काल के नाम से विख्यात है। इस काल का इतिहास हमें पौराणिक गाथाओं तथा साहित्यिक लेखों से प्राप्त होता है।

पूर्व-इतिहास-काल के विषय में, जिन सूत्रों से हमें कुछ पता लगता है, उनमें यन्त्र ही सर्व प्रधान हैं। इनके अध्ययन से हमें अनेक नवीन

बातों का ज्ञान प्राप्त होता है। इन यन्त्रों के अतिरिक्त उस काल के जो बर्तन, मुहरें, सिक्के, मुद्राएँ अवशेष आदि हमें प्राप्त हैं उनका बहुत ही महत्त्व है। इनके अध्ययन से हमें उस काल के इतिहास के विषय में पता चलता है और इन्होंने एक विज्ञान को भी जन्म दिया।

इतिहासकारों के द्वारा सूत्रों का उपयोग (Use of Sources by Historians) :—

हमें सूत्र विभिन्न रूपों में प्राप्त होते हैं। इन सूत्रों को पढ़ने तथा समझने के लिये हमें विशेषज्ञों की आवश्यकता है। इन यन्त्रों, सिक्कों, मुहरों, ताम्रपत्र आदि लेखों का पढ़ना कोई सुगम कार्य नहीं है। सूत्रों का उपयोग कर इतिहास लिखने का कार्य अत्यन्त दुष्कर होने के कारण इनका प्रयोग बुद्धिमान विशेषज्ञों के द्वारा ही किया जा सकता है। इन विशेषज्ञों को भी सिक्के, शिलालेख, यन्त्रों तथा अन्य बातों के विषय में उनके विशेषज्ञों के द्वारा दिये गये निर्णयों को मानकर ही अनुसन्धान करना पड़ता है, क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता है कि इतिहासकार सर्वज्ञ हैं। वे भी मानव ही हैं। जिस प्रकार छात्र विज्ञान तथा भौतिकशास्त्र का अध्ययन करते समय प्रयोगशाला में प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार इतिहास के अध्ययन के समय उन्हें सूत्र पढ़ने पड़ते हैं। जिस प्रकार प्रयोगशाला में पहले किये गये प्रयोगों के आधार पर उपलब्ध अनुभवों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये छात्रों को वे प्रयोग पुनः कराये जाते हैं, उसी प्रकार इतिहासकारों को भी सूत्रों का उपयोग करना चाहिये।

लिखित सूत्रों का अध्ययन भी कोई सुगम कार्य नहीं है। लिखित सूत्र अधिकतर प्रमाणपत्रों (Sanads) के रूप में हमें प्राप्त होते हैं। इनका अध्ययन भी विशेषज्ञों द्वारा होना चाहिये। उसके पश्चात् अनुसन्धान विधि का प्रयोग इतिहासकार द्वारा किया जाय। इसके अतिरिक्त हमें बाखर मिलते हैं, जिनका उद्देश्य तथ्य देना नहीं था। ये तत्कालीन लेखकों के द्वारा नहीं लिखे गये थे बल्कि उन मनुष्यों के द्वारा लिखे गये थे जिनका मुख्य उद्देश्य आनन्द प्राप्ति था। राजवाड़े

(Rajwade) का कहना है कि मौलिक सूत्र का एक अंश सैकड़ों बाखरों से अधिक मूल्यवान है। इनका प्रयोग इतिहासकारों के द्वारा बड़ी सतर्कता के साथ किया जाना चाहिये। वे एक मत का ही विवेचन न करें वरन् सत्यता को लिखें। प्रो० घाटे का विचार है एक इतिहासकार में मनीषी कवि के समान विषद् कल्पना होनी चाहिये। साथ ही उसमें एक वैज्ञानिक के समान धैय तथा यथार्थ को समझने की सूक्ष्म तथा पैनी दृष्टि भी होनी चाहिये। बड़े-बड़े इतिहासकार इन्हीं विभिन्न तत्वों का गंभीर अध्ययन तथा अनुशीलन करते हैं। उनके अध्ययन के परिणामस्वरूप जो फल प्राप्त होता है उसके आधार पर ही साधारण लोग इतिहास लिखते हैं। इन इतिहासों का उपयोग ही साधारण जनता करती है। ये साधारण इतिहासकार सूत्रों का अध्ययन नहीं करते।

सूत्रों का छात्रों तथा अध्यापकों के द्वारा प्रयोग (Use of Sources by Pupils and Teachers) :—

शिक्षक सूत्रों का प्रयोग निम्नलिखित के लिये कर सकता है—

(१) इनका प्रयोग कक्षा में ऐतिहासिक वातावरण उत्पन्न करने के लिये कर सकता है।

(२) इनके द्वारा अपने मौखिक पाठ को पूर्ण बना सकता है।

(३) ऐतिहासिक आलोचनाओं की परीक्षा करने के लिये इनके द्वारा बालकों को शिक्षित किया जा सकता है।

(१) **वातावरण**—इनके उपयोग से शिक्षक अतीत को वास्तविक बना सकता है। यदि अध्यापक प्राचीन काल की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति का ज्ञान दे रहा है तो शिक्षक इन सूत्रों का प्रयोग करके बालकों के सम्मुख उसी काल का वातावरण उत्पन्न कर सकता है, जिससे छात्र उसी काल का अनुभव प्राप्त करने लगते हैं।

(२) **मौखिक पाठ की पूर्ति**—इन सूत्रों का प्रयोग प्रत्येक स्तर पर किया जा सकता है। शिक्षक इनका प्रयोग मौखिक पाठ की कठिन बातों का स्पष्टीकरण करने के लिये कर सकता है। अध्यापक को उन

सभी सूत्रों का प्रयोग करना चाहिये जिनके द्वारा वह अपने पाठ को पूर्णतया समझाने योग्य बना सकता है।

(३) सूत्र ऐतिहासिक आलोचनाओं के लिये प्रयोग में लाये जा सकते हैं। अनेक पाठ्य-पुस्तकें एकमत के अनुसार लिखी हुई होती हैं। उनमें सत्यता को स्पष्ट नहीं किया जाता है। अध्यापक इन सत्यों को स्पष्ट करने के लिये विभिन्न लिखित सूत्रों का उपयोग कर सकता है। उदाहरणार्थ यदि शिक्षक पानीपत के तृतीय युद्ध के विषय में पढ़ा रहा है, तो उसे पाठ्य-पुस्तकों पर ही आधारित नहीं रहना चाहिये, वरन् उनमें दिये हुए तथ्यों की सत्यता को ज्ञात करने के लिये उसको भाऊसाहवची बाखर, काशीराज द्वारा लिखित लेख तथा भाऊ के पत्रों का अध्ययन स्वयं करना चाहिये और छात्रों को इन सूत्रों के आधार पर ऐतिहासिकता को प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये।

अध्यापक को इस विधि का प्रयोग करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

(१) उसे उन पुस्तकों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये जिनमें इतिहास के सूत्रों का संकलन हो।

(२) छात्रों को उनके अध्ययन के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए। वे शिक्षक के मौखिक पाठ के पश्चात् पुस्तकालय में जाकर उनका अध्ययन करें।

(३) छात्रों के स्वाध्ययन के पश्चात् अध्यापक छात्रों की सहायता से उन पर वाद-विवाद करे।

(४) वाद-विवाद के पश्चात् अध्यापक उन पर गृह कार्य दे और उनके विषय में छात्रों के विचार प्रकट करवाये।

(५) अध्यापक को इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिये कि उसे छात्रों को अनुसन्धानकर्त्ता नहीं बनाना है।

(६) सूत्रों के अध्ययन को समय के अनुसार क्रम में रखे अर्थात् जितना समय प्राप्त है उसी के अनुसार इनके अध्ययन के लिये समय दे।

छात्रों के द्वारा सूत्रों का प्रयोग निम्नलिखित रूप से कराया जाय–

शिक्षक विद्यार्थियों को एक कथन दे फिर उस पर प्रश्न पूछे जिससे उसका वे विश्लेषण कर सकें और विश्लेषण के आधार पर अपना निर्णय बना सकें। छात्रों को मौन-पद्धति से उद्धरण पढ़ने दिया जाय और उस पर विचारोत्तेजक प्रश्न पूछे जायँ। एक ही घण्टे में इस प्रकार उद्धरण देने में कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु उस पर चर्चा अवश्य होनी चाहिये। उदाहरणार्थ—

"अपने राज्य में लोगों के मान सम्मान की रक्षा का शिवाजी ने सदैव प्रयास किया। उसने विद्रोह किया, कारवाँ को लूटा और लोगों को परेशान किया परन्तु घृणित कार्यों से उसने अपने को सदैव पृथक रखा और जब कभी मुस्लिम स्त्रियाँ अथवा बच्चे उसके हाथ में पड़ जाते थे तब वह उनका आदरपूर्वक ध्यान रखता था। इस सम्बन्ध में उसकी आज्ञाएँ बड़ी कठोर थीं और जो उनका उल्लंघन करते थे उन्हें दण्ड दिया जाता था।" —खाफीखाँ

इस पर निम्नलिखित प्रश्न शिक्षक के द्वारा कक्षा के सामने रखे जायेंगे—

(१) यह कथन किस काल से सम्बन्धित है?

(२) शिवाजी ने किन लोगों को लूटा तथा परेशान किया?

(३) शिवाजी का मुस्लिम स्त्रियों तथा बच्चों के प्रति कैसा व्यवहार था?

(४) प्रजा के द्वारा दूसरे धर्मावलम्बियों के प्रति सद्व्यवहार का पालन करने के लिये उसने क्या किया?

अध्यापक इनकी विवेचना के पश्चात् निर्णयों को लिखने के लिये छात्रों को प्रोत्साहित करेगा।

सूत्र-पद्धति के लाभ (Advantages of Source Method) :—

(१) इससे भाषण-विधि में परिवर्तन होता है और अध्यापक को भी कम बोलना पड़ता है।

(२) इन सूत्रों से विद्यार्थियों को इतिहास की घटनाओं का सत्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

(३) इस पद्धति के द्वारा अतीत का वातावरण स्थापित किया जा सकता है और इससे भूतकाल को वास्तविक बनाया जाता है।

(४) सूत्र-पद्धति से छात्रों की मानसिक शक्ति का विकास होता है। उनमें परीक्षा, शब्द-ज्ञान, तुलना, कल्पना आदि शक्तियों का उत्थान होता है।

(५) इतिहास पढ़ाने के लिये पाठ्य-पुस्तक का साधन अपूर्ण है। उसको पूर्णता प्रदान करने के लिये इस पद्धति का उपयोग किया जाना आवश्यक है।

सूत्र-पद्धति की सीमाएँ (Limitations of Source Method) :—

(१) यह विधि बहुत ही विस्तृत है इसके प्रयोग के लिये समय अधिक चाहिये, जब कि इतिहास के लिये कम समय मिलता है।

(२) इस विधि का छोटी कक्षाओं में प्रयोग नहीं हो सकता है। ठीक प्रकार से तो इसका उपयोग माध्यमिक स्तर पर भी होना सम्भव नहीं है।

(३) कोई ऐसी पुस्तक प्राप्त नहीं है जिसमें भारतीय सूत्रों का संकलन हो।

(४) यह पद्धति जटिल तथा यंत्रवत् है।

(द) पुस्तक-पठन-पद्धति

इस पद्धति के अनुसार छात्र भाषा की पुस्तक के समान इतिहास की पुस्तक पढ़ता है और इस प्रकार क्रमानुसार कक्षा के सभी छात्र इतिहास की पुस्तक पढ़ते जाते हैं और पाठ पूरा हो जाता है। जब छात्र इतिहास की पुस्तक पढ़ता है तब बीच-बीच में शिक्षक कुछ प्रश्न इसलिये पूछ लेता है कि जो कुछ पुस्तक में लिखा है उसे विद्यार्थी समझ रहा है या नहीं। इसमें शिक्षक न तो इतिहास की घटनाओं की व्याख्या करता है और न उन पर वाद-विवाद ही किया जाता है। यह विधि लाभप्रद नहीं है।

(य) ऐसाइनमेंट पद्धति

इस पद्धति के अनुसार अध्यापक पाठ की तैयारी के सम्बन्ध में सभी बातें छात्रों को लिखकर देता है। शिक्षक छात्रों को सहायक पुस्तकों की सूची बता देता है तथा साथ में उन महत्वपूर्ण घटनाओं को भी बता देता है जिन पर छात्रों को अधिक ध्यान देना पड़ेगा। इस प्रकार छात्र स्वयं पाठ की तैयारी करते हैं। यह पद्धति डाल्टन-योजना की है। इस पद्धति से यह लाभ होता है कि छात्रों में स्वाध्ययन की प्रवृत्ति विकसित हो जाती है और इससे उनमें आत्मविश्वास का भी उत्थान होता है। इस विधि में लिखित कार्य का अधिक महत्त्व हैं, क्योंकि जो पाठ छात्रों को दिया जाता है उसकी तैयारी लिखित रूप में स्वीकार की जाती है। परन्तु अनुभव यह है कि यदि शिक्षक प्रभावशाली न हुआ तो छात्र लिखित कार्य नहीं करेंगे और यदि करेंगे भी तो वह उतना अच्छा नहीं करेंगे जितना कि होना चाहिये। इस-लिये इस पद्धति की सफलता के लिये योग्य, उत्साही तथा परिश्रमी शिक्षक का होना अनिवार्य है।

(र) योजना पद्धति

इस पद्धति के अनुसार इतिहास की शिक्षा देने के लिये छात्रों को कोई ऐतिहासिक समस्या दी जाती है। ये समस्याएँ व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से दी जा सकती हैं। उदाहरण के लिये शिवाजी को ले सकते हैं। इस पद्धति के अनुसार छात्रों को शिवाजी के विषय में सभी बातों को एकत्रित करना पड़ेगा और जिनके वे नमूने भी बना सकते हैं। इस पद्धति की सफलता के लिये सफल तथा परिश्रमी शिक्षक तथा अच्छे संग्रहालय की आवश्यकता होती है, जिससे छात्रों को प्रोजेक्ट (योजना) में सहायता मिलती है। इसके अभाव में यह पद्धति असफल रहेगी। दूसरे यह विधि मनोवैज्ञानिक आधार पर आधारित है इसमें बालक क्रियाशील रहता है और वह जो कार्य करता है अपनी रुचि तथा प्रकृति के अनुसार करता है। इसमें अध्यापक पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है।

प्रश्न

(१) इतिहास-शिक्षण में सूत्र-पद्धति क्या है ? इतिहास के पाठ के शिक्षण में आप इसका उपयोग किस प्रकार करेंगे ? उदाहरण सहित समझाइये ।
(What is the Source Method in the teaching of History ? How would you utilize it in teaching a lesson in history ? Give examples.) (L. T. 1952)

(२) इतिहास-शिक्षण की कौन-कौन सी विधियाँ है ? उनके गुणों की विवेचना कीजिये तथा उनमें से एक को उदाहरण सहित समझाइये ।
(What are the different Methods of teaching History ? Discuss their merits and illustrate fully any one of them.) (B. T. 1957)

(३) इतिहास-शिक्षण की सूत्र-पद्धति के गुणों तथा सीमाओं की विवेचना कीजिये ।
(Discuss the merits and limitations of the Source Method of teaching History.) (B. T. 1958)

(४) इतिहास-शिक्षण की विधियाँ बताओ । यह भी बताइये कि उनका किस स्तर पर ठीक प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है और क्यों ?
(Name the different Methods of teaching History. State at what stage each can be used, and why) (B. T. 1958)

(५) इतिहास-शिक्षण की पद्धतियों के गुणों की विवेचना कीजिये । संक्षेप में अपने उत्तर को उदाहरण सहित समझाइये ।
(Discuss the relative merits of the different Methods of teaching History. Illustrate your answer in brief.)
(B.T.1959)

अध्याय—६

शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर इतिहास की विषय-वस्तु का प्रस्तुतिकरण

(Presentation of History at Different Stages)

"हृदय से जानना ज्ञान नहीं है"

"Savoir par coeur n'est pas Savoir" (To know by heart is no knowledge.) Montaigne.

इतिहास के तथ्यों के संकलन तथा सङ्गठन के पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि इस पाठ्य-वस्तु को किस प्रकार विद्यार्थियों को पढ़ाया जाय। निःसन्देह इतिहास के शिक्षण के लिये एक विशेष विधि की आवश्यकता होगी और शिक्षण-सिद्धान्तों के अनुसार उसका शिक्षण देना पड़ेगा। अवस्था तथा कक्षा के भेद के अनुसार शिक्षण-विधि तथा पाठ्य-सामग्री में अन्तर होगा, परन्तु इतिहास-शिक्षण के सम्बन्ध में कुछ ऐसी सामान्य बातें हैं जिनके सम्बन्ध में हम साधारण रूप से विचार कर सकते हैं। इतिहास की शिक्षा किस प्रकार दी जाय इसके

सम्बन्ध में कुछ ऐसी बातें हैं जो देखने में साधारण प्रतीत होती हैं परन्तु यदि अध्यापक उनका उपयोग करें तो उसे शिक्षण में सहायता मिलेगी और वह अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है। ये साधारण बातें निम्नलिखित हैं—

(१) प्रारम्भिक कक्षाओं में निश्चित तथा बोधगम्य तथ्यों को प्रस्तुत करना चाहिये।

(२) सामान्य विचारधाराओं का प्रस्तुतिकरण उच्च कक्षाओं में होना चाहिये परन्तु इन विचारधाराओं को समझाने के लिये मुख्य तथ्यों का भी प्रयोग करना चाहिये। यह क्रम सामान्यीकरण को असीमित बनाने से रोकता है।

(३) तथ्यों का स्थानीयकरण होना चाहिये। तथ्यों को वायु में नहीं रखना चाहिये। इसके लिये शिक्षकों को मानचित्र का प्रयोग करना चाहिये। इसमें अतिरिक्त बालकों को ऐतिहासिक एटलस का उपयोग करने के लिये भी कहा जाय।

(४) बालकों में समय-ज्ञान धीरे-धीरे विकसित करना चाहिये। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये शिक्षकों को कहानियों तथा व्यक्तित्वों को काल-क्रम से प्रस्तुत करना चाहिये।

(५) प्रत्येक स्तर पर वर्त्तमान काल का सम्बन्ध भूतकाल से स्थापित करना चाहिये। इसके लिये अध्यापकों को लोलक-विधि या परावर्त्तन विधि का प्रयोग करना चाहिये। सर्वप्रथम बालकों को वर्त्तमान काल की घटनाओं का परिचय देना चाहिये और अतीत काल की सहायता से वर्त्तमान काल की समस्याओं के हल की खोज करनी चाहिये।

(६) जो तथ्य जिस स्तर के प्रस्तुतिकरण के लिये चुने गये हैं, उनका उस स्तर पर पूर्ण विवेचन होना चाहिये।

(७) तथ्यों को पृथक रूप से प्रस्तुत न किया जाय, वरन् कार्य-कारण सम्बन्ध के साथ उनको छात्रों के सम्मुख रखा जाना चाहिये।

ऐतिहासिक तथ्य समन्वयात्मक रूप में रखे जाने चाहिये जिससे ऐतिहासिक एकता को स्थापित किया जा सके।

(८) छात्र भूत की घटनाओं से अपरिचित होते हैं, और जो कि वर्त्तमान काल की दशाओं से भी असमान होती हैं। अतः इन दशाओं को वास्तविक बनाने में शिक्षक का महत्त्वपूर्ण भाग है। उसे उस समय की दशाओं को स्पष्ट करने के लिये चित्रों तथा प्रतिरूपों का प्रयोग करना चाहिये। परन्तु इनका चयन उसी समय नहीं होना चाहिये जब कि वह उनको प्रस्तुत करने को जा रहा है, वरन् उनका चयन पहले ही होना चाहिये। परन्तु इनका चयन बड़ी सतर्कता के साथ किया जावे।

(९) इतिहास के सभी अङ्गों पर प्रकाश डालना चाहिए। यह नहीं होना चाहिये कि एक अङ्ग पर अधिक बल दिया जाय और दूसरों को स्पर्श तक न किया जाय। इसके अतिरिक्त निरर्थक तथ्यों तथा जटिल विस्तार को समाप्त करने का प्रयत्न किया जाना चाहिये। इससे बालकों की समझ में इतिहास बड़ी सरलता से आ सकता है।

साधारण रूप से भारत की वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली में शिक्षा के निम्नलिखित स्तर हैं—

(अ) पूर्व-प्राइमरी स्तर : किण्डरगार्टन, नर्सरी तथा शिशु-कक्षा इत्यादि हैं।

(ब) प्राइमरी स्तर (६-११)—प्राइमरी तथा जूनियर बेसिक कक्षाएँ हैं।

(स) जूनियर-हाई-स्कूल-स्तर (११-१४)—जूनियर-हाई-स्कूल तथा बेसिक सीनियर कक्षाएँ हैं।

(द) माध्यमिक-स्तर (११-१६)—इसके दो विभाग हैं। पहले विभाग में जूनियर-हाई-स्कूल तथा उच्च-विभाग में हाई स्कूल कक्षायें आती हैं जिनका पाठ्य-क्रम दो वर्ष (कक्षा ९ व १०) का होता है।

(य) उच्चतर-माध्यमिक-स्तर—इसमें कुछ तो वे विद्यालय आते

हैं जिनमें कक्षा ९ से ११ तक की पढ़ाई का प्रबन्ध है और कुछ विद्यालयों में कक्षा ६ से १२ तक की पढ़ाई का प्रबन्ध है।

(र) उच्च शिक्षा : कालेज तथा विश्व-विद्यालय।

हमारा यहाँ अभिप्राय प्राइमरी, जूनियर तथा हाई स्कूल स्तर से है और प्रत्येक स्तर पर किस प्रकार पाठ्य-वस्तु प्रस्तुत की जाय, इसका पृथक रूप से विवेचन निम्नलिखित है—

(अ) प्राइमरी स्तर पर इतिहास-प्रतिपादन

(Presentation of History at Primary Stage.)

इस अवस्था के छात्र कहानी सुनना तथा उनको कहना भी पसन्द करते हैं। इस अवस्था को कहानी कहने की अवस्था भी कहा गया है। कहानियाँ चाहे विश्व-इतिहास, राष्ट्रीय इतिहास या प्रान्तीय इतिहास से ली जायँ, परन्तु उनका चयन बड़ी सतर्कता के साथ करना चाहिये। ये कहानियाँ राम, कृष्ण, बुद्ध, अशोक, राणाप्रताप आदि की हों या मानव ने किस प्रकार भोजन या अग्नि की खोज की, इस प्रकार की हों, परन्तु प्रत्येक दशा में ये कहानी के रूप में ही होनी चाहिये और इनमें कहानी की समस्त विशेषताओं का समावेश होना भी अनिवार्य है। कहानी क्रियाशीलता से पूर्ण होनी चाहिये अर्थात् वे निष्क्रियता उत्पन्न न करें, वरन् क्रियाशील, संक्षिप्त तथा सजीव हों। कहानी छात्रों के मानसिक तथा शारीरिक विकास, रुचि, ज्ञान तथा अनुभव के आधार पर हों। कहानी की भाषा छात्रों की बुद्धि के स्तर के अनुसार होनी चाहिये। वाक्य-विन्यास छोटा हो। शब्द सुगम तथा बालकों की ग्राह्यशक्ति के अनुसार हों, जिससे कहानी के प्रत्येक अङ्ग का चित्र छात्र के सम्मुख उपस्थित हो जाय और कहानी सुनते समय छात्र ऐसा अनुभव करने लगें मानो प्रत्येक घटना उनके सामने ही घटित हुई हो।

इन कक्षाओं को पढ़ाने के लिये अध्यापक को अपने विषय में दक्ष होना चाहिये। इससे वह अपने शिक्षण में चार-चाँद लगा सकता है।

इसके अतिरिक्त इस स्तर के अध्यापक को कहानी कहने की कला में निपुण होना चाहिये। कहानी कहना एक कला है। कहानी को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति कवि के समान प्रखर बुद्धि से युक्त होता है, परन्तु इस स्तर के अध्यापक को अपने परिश्रम से इस कला को सीखना चाहिये और एक अच्छा कहानी कहने वाला बनने का प्रयत्न करना चाहिये।

श्यामपट का प्रयोग (Use of Black-board) :—

अध्यापक को कहानियों को उपयुक्त विभागों में विभाजित कर लेना चाहिये। यदि वह गौतम बुद्ध के जीवन-चरित्र के विषय में पढ़ा रहा है तो उसको तीन भागों में सुविधानुसार बाँटा जा सकता है—(१) जन्म से लेकर महाभिनिष्क्रमण तक (२) गृहत्याग से लेकर ज्ञान-प्राप्ति तक (३) उनके द्वारा अपने सिद्धान्तों का प्रचार और उनकी मृत्यु। परन्तु इस विभाजन के विषय में एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि विभाजन करते समय कहानी का क्रम न टूट जाय। अध्यापक को चाहिये कि एक भाग या अन्विति कह लेने के पश्चात् कतिपय शब्दों की सहायता से उस भाग का सारांश श्यामपट पर लिख दे। यह सारांश प्रश्नों द्वारा छात्रों की सहायता से लिखना चाहिये। सारांश अल्प शब्दों तक ही सीमित होना चाहिये। परन्तु यह ध्यान रहे कि इस कार्य द्वारा कथा-प्रवाह में बाधा न पड़े। इस सारांश के पश्चात् अध्यापक कहानी का दूसरा भाग प्रारम्भ कर देगा। सारांश देने की एक अन्य पद्धति भी है। इसके अनुसार अध्यापक कहानी कहने के साथ-साथ उसकी मुख्य बातों को श्यामपट पर लिखता रहता है। इस प्रकार कहानी कहने के साथ-साथ श्यामपट पर सारांश भी होता जाता है और उसको लिखने के लिये अध्यापक को छात्रों को निर्देश दे देना चाहिये। इसके अतिरिक्त कुछ अध्यापकों का विचार है कि पूरी कहानी कहने के पश्चात् अध्यापक को प्रश्नों द्वारा छात्रों को सहायता से श्यामपट पर सारांश लिखना चाहिये। इससे

लाभ यह है कि कहानी का क्रम नहीं टूटता है और बालकों के ग्रहण किये हुए ज्ञान की भी परीक्षा हो जाती है। इसके अतिरिक्त अध्यापक को भी अपनी सफलता का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार तैयार किये हुए सारांश को छात्रों को लिखा देना चाहिये। तत्पश्चात् अध्यापक उन रूपरेखाओं को बालकों से विकसित करवा सकता है।

सारांश के अतिरिक्त श्यामपट का प्रयोग मानचित्र या ढाँचा (Sketch) बनाने तथा स्थूल वर्णन करने के लिये किया जा सकता है। अध्यापक को किसी कठिन बात को समझाने के लिये इसका प्रयोग करना चाहिये। परन्तु श्यामपट को प्रयोग करने में अध्यापक को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये—

(१) श्यामपट प्रयोग करते समय उसको ढक न लेना चाहिये अन्यथा अनुशासन भंग होने का भय बना रहता है। उसको कक्षा में अपनी पीठ नहीं दिखानी चाहिये वरन् उसको ४५° के कोण से खड़ा होना चाहिये।

(२) श्यामपट-लेख मोटा, सुन्दर तथा एकसा होना चाहिये जिससे वह पूरी कक्षा को दिखाई दे सके। दूसरे, इस स्तर के छात्रों में अनुकरण प्रवृत्ति प्रबल होती है। यदि अध्यापक का लेख सुन्दर नहीं होगा तो वे भी अच्छा लिखने का प्रयत्न नहीं करेंगे। इसलिये उसे सुन्दरता तथा स्वच्छता के साथ लिखना चाहिये।

(३) श्यामपट पर चित्र, रेखाचित्र, समय-तालिका इत्यादि इस प्रकार बनाये जावें कि वे पूरी कक्षा को दिखाई पड़ें।

(४) श्यामपट पर लिखने के पश्चात् कक्षा का निरीक्षण भी करना चाहिये, जिससे बालकों की अशुद्धियों का पता चल जावे।

पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग (Use of Text-Book):—

इस स्तर पर पाठ्य-पुस्तक के प्रयोग के विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। प्रो० घाटे का विचार है कि इस स्तर की जिस कक्षा में इतिहास पढ़ाया जाता है, उस कक्षा के विद्यार्थी अवस्था के

अनुसार पर्याप्त रूप से समझदार हो जाते हैं, जो कि पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग लाभ के साथ कर सकते हैं। परन्तु एक अन्य विद्वान का विचार है कि इस स्तर की अन्तिम कक्षा के छात्रों को प्रारम्भिक रूप से पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग करना चाहिये अर्थात् उनके अनुसार कक्षा ५ पर पुस्तक का प्रयोग कराया जाय। परन्तु प्रो० घाटे का विचार ही उपयुक्त प्रतीत होता है। कक्षा ३ से ही उनको पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग कराया जाय, परन्तु उनकी पुस्तक सरल भाषा में हो और चित्रों से परिपूर्ण होनी चाहिये। उनकी पुस्तकें बच्चे की मातृभाषा में होनी चाहिये। पाठ्य-पुस्तक का सबसे मुख्य लाभ यह है कि बालक मौखिक पाठ शिक्षालय में पढ़ने के पश्चात् अपने घर पर जाकर उसका प्रयोग कर सकता है, जो कि उनको पाठ के ग्रहण करने में सहायता प्रदान करती है। इसके द्वारा ऐतिहासिक तथ्यों में क्रम उत्पन्न किया जा सकता है। पाठ की पुनरावृत्ति के लिये भी पाठ्य-पुस्तक लाभदायक है। यद्यपि इस स्तर पर मौखिक कार्य अधिक होगा परन्तु उनके द्वारा छात्रों को अपनी पाठ्य-पुस्तकों को पढ़ने के लिये शिक्षित किया जा सकता है। पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त बालकों को विषय से सम्बन्धित अन्य पुस्तकों को पढ़ने के लिये भी प्रोत्साहित करना चाहिये। ये सहायक पुस्तकें सरल भाषा में लिखी होनी चाहिये। इन पुस्तकों की सहायता से बालक अपने ज्ञान को विस्तृत करने में समर्थ होंगे और वे पढ़ने में रुचि प्रदर्शित करेंगे।

चित्र, प्रतिरूप तथा मानचित्र का प्रयोग (Use of Pictures, Models and Maps) :—

ये वस्तुएँ प्रदर्शनात्मक उदाहरण (Visual Illustrations) के अन्तर्गत आती हैं। मौखिक उदाहरणों की भाँति प्रदर्शनात्मक उदाहरणों का अभिप्राय भी क्लिष्ट भाव को स्पष्ट तथा सरल बना देना है। इनके प्रयोग से छात्रों का ज्ञान व्यवस्थित तथा निश्चित हो जाता है, क्योंकि कानों से सुनी हुई बात को वे आँख से देख लेते हैं। प्राचीन काल की समस्त व्यवस्थाएँ वर्तमान समय की व्यवस्थाओं से सर्वथा

भिन्न थी। वर्तमान युग के बालकों के लिये प्राचीन समय के मनुष्यों के वस्त्र, अस्त्र-शस्त्र, सिक्के, आवागमन के साधनों के विषय में बिना देखे समझना कठिन प्रतीत होता है। इसलिये अध्यापकों को प्रदर्शनात्मक उदाहरणों का प्रयोग करना चाहिये। अध्यापक अतीत की इन वस्तुओं का ज्ञान प्रतिरूप, चित्र तथा प्रत्यक्ष वस्तुओं के द्वारा करा सकता है। बच्चों को प्राचीन काल के हथियारों, यन्त्रों (औजारों) तथा सिक्कों को प्रत्यक्ष रूप से दिखाना चाहिये। यदि उसके पड़ौस में कोई ऐतिहासिक सामग्री हो तो वह छात्रों को वहाँ लेजाकर सब वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान करावे तथा उनके विषय में पूर्णतया समझावे। उदाहरणार्थ, आगरा-किला तथा ताजमहल के विषय में शब्दों के द्वारा ही ज्ञान न देकर अध्यापक बालकों को वहाँ लेजाकर उनके विषय में समझावे। परन्तु अध्यापक के पास प्रत्यक्ष-सामग्री का अभाव रहता है। उनके स्थान पर वह प्रतिरूप प्रयोग में ला सकता है। प्रतिरूप किसी वास्तविक वस्तु की किसी निश्चित अनुपात में बनी हुई प्रतिमूर्ति होती है। परन्तु प्रतिरूपों का भी भारत में अभाव है। प्रत्येक वस्तु का प्रतिरूप या मॉडल नहीं बनाया जा सकता है और प्रतिरूप का बनाना अत्यन्त सरल कार्य नहीं है। प्रतिरूप बनाने में अधिक समय लगता है। इसलिये प्रतिरूप की अनुपस्थिति में चित्रों का भी प्रयोग किया जा सकता है। ये मॉडल की अपेक्षा कम मूल्यवान हैं तथा सरलता से प्राप्त हो सकते हैं। इस स्तर के छात्रों के लिये चित्र की सहायता से पाठ को सरल तथा रोचक बनाने के लिये इतिहास के अध्यापक को चित्र से सम्बन्धित निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये जो कि विशेष हितकारी सिद्ध होंगे—

(१) चित्रों का चयन बड़ी सतर्कता के साथ करना चाहिये। जिस प्रकार से इस स्तर के छात्र क्रियाशील कहानियों को सुनने में अधिक आनन्द लेते हैं उसी प्रकार उनको जो चित्र दिखाये जायँ वह क्रियाशील होने चाहिये। भगवान बुद्ध का ध्यान-मुद्रा का चित्र दिखाने से इस स्तर पर अधिक लाभ नहीं होगा, वरन् उनको भगवान बुद्ध का

अपने बच्चे राहुल तथा पत्नी यशोधरा को छोड़ते समय का चित्र दिखाना चाहिये। वे इसको देखने में अधिक रुचि लेंगे। गान्धीजी का वह चित्र लेना चाहिये जब कि वे दण्डी-यात्रा या शराब के विरुद्ध अनशन कर रहे हैं। चेतक की समाधि के समीप खड़े हुए राणा का चित्र आदि लेने चाहिये। भूतकाल के आवागमन के साधनों को चित्रों द्वारा प्रदर्शित कराया जा सकता है।

(२) पाठ के शिक्षण में अधिक चित्रों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। कभी-कभी प्रशिक्षण-विद्यालयों के विद्यार्थी ४० मिनट के पाठ में सात या इससे अधिक चित्र दिखा देते हैं; इससे एक तो अध्यापक स्वयं भ्रमित हो जाता है कि कब कौनसा चित्र दिखाया जायगा, दूसरे छात्र उनको ठीक प्रकार से नहीं देख पाते। एक पाठ में दो चित्र या अधिक से अधिक तीन चित्रों का प्रयोग करना चाहिये। चित्र को टाँगकर अध्यापक को उस पर प्रश्न पूछने चाहिये जिससे छात्र उसकी महत्ता को समझ सकें। छात्रों को चित्र देखने के लिये कुछ समय दिया जाय और फिर उसको उतारा जाय। छात्रों को भी चित्रों का प्रयोग करने का अवसर दिया जाना चाहिये। निःसन्देह चित्रों के विकृत होने का भय रहेगा, तथापि उनको यह अवसर मिलना ही चाहिये।

(३) इतिहास-कक्ष में सुन्दर तथा ऐतिहासिक चित्रों का संकलन होना चाहिये।

(४) चित्र का आकार कक्षा के आकार के अनुसार हो। चित्र अनावश्यक रूप से न तो छोटा हो और न बड़ा। ठीक आकार वाले चित्र का छात्रों पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

(५) चित्र का सौन्दर्य एवं स्वाभाविकता ही छात्रों के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करती है।

मानचित्र का भी इस स्तर पर प्रयोग होना चाहिये। मानचित्र का उपयोग बड़ा ही लाभप्रद है, परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि केवल स्थान-निर्देशन के लिये ही इनका उपयोग न किया

जाय, वरन् मानचित्र पर घटनाओं से सम्बन्धित स्थलों द्वारा राज्य-सीमा का ज्ञान कराकर उन्हें भौगोलिक स्थिति से भी परिचित कराना चाहिये। इसके अतिरिक्त विभिन्न राजाओं की राज्य-सीमाओं का भी ज्ञान इसके द्वारा दिया जाय तथा किन मार्गों से आक्रमणकारी व्यक्ति भारत में आये यह भी मानचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जाय।

समय ज्ञान का विकास (Development of Time-Sense) :—

इस स्तर के छात्रों में भी समय-ज्ञान को विकसित करना चाहिये। इसके लिये अध्यापक को कहानियों को उनके सम्मुख काल-क्रम के अनुसार प्रस्तुत करना चाहिये। इन कहानियों के सम्बन्ध को भी अध्यापक को स्पष्ट करना चाहिये। रेखाओं तथा चित्रों द्वारा उन्हें कालानुभव तथा समय-ज्ञान भी कराना चाहिये। इस स्तर पर समय तालिकाओं को कक्षा में बालकों के सम्मुख श्यामपट पर अध्यापक को बनाना चाहिये और उनसे घर से बनवाने के लिये कहा जाय। काल-क्रम तथा रेखाचित्रों द्वारा भी समय का ज्ञान कराया जा सकता है।

इतिहास-शिक्षण में क्रियाशीलता की आवश्यकता (Need of Activity in History Teaching)—

किसी भी स्तर पर इतिहास-शिक्षण ऐसा नहीं होना चाहिये कि उसमें अध्यापक ही कार्यरत रहे और छात्र निष्क्रिय बने रहें। वे केवल श्रोता ही न बने रहें, वरन् इतिहास-शिक्षण में क्रियाशीलता को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिये। जब तक बालक पठन-पाठन में सक्रिय सहयोग न देंगे तब तक वह शिक्षा उपयोगी न होगी। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इतिहास की शिक्षा को किस प्रकार सक्रिय बनाया जाय। उसको सक्रिय बनाने के लिये निम्नलिखित बातों का प्रयोग अध्यापक को इतिहास के शिक्षण में करना चाहिये—

(१) कभी-कभी कथाओं तथा कहानियों को पहेली तथा समस्याओं के रूप में कहना चाहिये और उनके सम्बन्ध में बालकों से प्रश्न पूछे जाने चाहिये। उन्हें अपनी कल्पना द्वारा कहानी का रूप निर्मित करने का अवसर भी प्रदान किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त उनसे जो

प्रश्न पूँछे जायँ वे ऐसे होने चाहिये जिससे बालकों को सोचने तथा चिन्तन करने का अवसर प्राप्त हो। दूसरे छात्रों को भी प्रश्न पूछने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। इसके लिये बालकों को विचार-विनिमय की स्वतंत्रता दी जानी चाहिये।

(२) अभिनय-कला का प्रयोग भी इस स्तर पर किया जाना चाहिये। जिस प्रकार छोटे बच्चे कहानी कहने या सुनने में रुचि लेते हैं उसी प्रकार वे स्वयं क्रिया करने में भी आनन्द लेते हैं। इसी तथ्य के फलस्वरूप इस स्तर पर अभिनय अधिक सफल होता है। यहाँ अभिनय से तात्पर्य यह है कि छात्र किसी ऐतिहासिक व्यक्ति जैसे राम, अकबर, शिवाजी, राणाप्रताप इत्यादि से सम्बन्धित किसी प्रसंग का एक छोटा नाटक खेलें। इस साधन के उचित उपयोग से इतिहास का अध्ययन विशेष रुचिकर होकर छात्रों के सम्मुख अतीत का चित्र उपस्थित कर देता है।

इस स्तर पर अभिनय के प्रयोग के पक्ष में यह कहा जाता है कि अध्यापकों के समान हमारे छात्र भी अपने को नहीं भूल पाते। उनके लिये अपने भावों को व्यक्त कर सकना भी कठिन होता है। जब उनसे बोलने के लिये कहा जाता है तब बड़ी कठिनाई से कतिपय शब्द बोल पाते हैं। उनमें एक प्रकार की झिझक तथा लज्जा होती है। इस लज्जा को अभिनय के प्रयोग से मिटाया जा सकता है। इसी अवस्था से अभिनय-कला का उपयोग करना चाहिये, क्योंकि आगे चलकर इसका उपयोग करने में बाधाएँ उपस्थित हो सकती हैं। इस अभिनय-कला से बालक अपनेपन को भूल जाता है और यह अनुभव करने लगता है कि वह वही पात्र है जिसका वह अभिनय कर रहा है। इसके लिए अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह उन प्रसंगों का सतर्कता के साथ चयन करे जिनका अभिनय सफलता के साथ किया जा सके। इसके लिये अध्यापक में भी कुछ विशेषताएँ होनी चाहियें तभी अभिनय सफलता के साथ हो सकता है। वे निम्नलिखित हैं—

(अ) अभिनय के प्रति अध्यापक की रुचि हो।

(ब) स्वयं अध्यापक इस कला में प्रवीण हो।

(स) अपना अतिरिक्त समय देकर छात्रों के साथ परिश्रम कर सके।

(द) अध्यापक अपनेपन को भूल जाय और छात्रों के साथ मिल-जुल कर रहने की क्षमता रखे।

(य) अध्यापक नाटक तथा संवाद लिखने की कला भी जानता हो।

(३) इस स्तर पर हस्तकला का भी प्रयोग किया जाना चाहिये। हस्तकला के द्वारा बच्चा अपने भावों को व्यक्त कर सकता है। इसके द्वारा इतिहास-शिक्षण रोचक बनाया जाता है और वह बालकों में कल्पना-शक्ति को विकसित करने में अत्यन्त सहायक है। इसके द्वारा अध्यापक बालकों की रुचि का ज्ञान प्राप्त कर सकता है कि किस बालक की चित्तवृत्ति का रुझान किस दिशा में है। इस ध्येय से वह छात्रों को अपनी कापियों में प्राचीन काल के चित्र बनाने के लिये कह सकता है।

उपर्युक्त सुझावों के द्वारा बालक को इतिहास-शिक्षण में क्रिया-शीलता प्रदान की जा सकती है।

(ब) जूनियर-हाई-स्कूल-स्तर पर इतिहास-प्रतिपादन

(Presentation of History at Junior High School Stage)

इस स्तर के विद्यार्थी किशोरावस्था के निकट पहुँचने लगते हैं। इसलिये प्राइमरी स्तर के छात्रों की अपेक्षा इस स्तर के छात्र कहानी सुनने या कहने में आनन्द नहीं लेते हैं वरन् वे वास्तविकता में आस्था रखने लगते हैं। इस स्तर का छात्र यथार्थवादी होता है और उसकी स्मरण-शक्ति भी अपने शिखर पर होती है। उसका समय ज्ञान भी गणित की सहायता से पर्याप्त विस्तृत हो जाता है। फिर भी वह सूक्ष्म-विचार-प्रक्रिया के लिये अयोग्य होता है। इस स्तर का विद्यार्थी

सामान्यीकरणों को भी समझने लगता है तथा वह स्वयं तथ्यों के विश्लेषण के पश्चात् नियमीकरण करने में समर्थ होता है। परन्तु कुछ विद्वान इस शक्ति के विकास को मानने के लिये तैयार नहीं हैं। वे यह भूल जाते हैं कि बालक अपने गणित के प्रश्नों के हल करने में इस शक्ति का प्रयोग करता है और वह स्वयं वहाँ नियमीकरण करता है। इस स्तर के छात्रों को तर्क करने में, सत्य की खोज करने तथा विचारों को व्यक्त करने में आनन्द आता है। इन कक्षाओं के छात्रों का व्यवहारिक ज्ञान बढ़ जाता है। वे अपने काल की समस्याओं में रुचि रखने लगते हैं। इन कारणों के फलस्वरूप विषय का प्रतिपादन भिन्न प्रकार से करना होता है। इस स्तर पर विषय-प्रतिपादन के निम्न-लिखित उद्देश्य होंगे—

(१) भारतीय इतिहास की मुख्य घटनाओं तथा चरित्र-चित्रण की विस्तृत रूप रेखा प्रदान करना।

(२) तथ्यों का विश्लेषण करना, उनकी महत्ता का ज्ञान कराना तथा उनका वर्त्तमान से सम्बन्ध स्थापित करना।

(३) समय-ज्ञान विकसित करना। (परन्तु इस स्तर पर कालानुभव और समय-ज्ञान रेखाचित्रों द्वारा नहीं होगा वरन् समय-तालिकाओं के द्वारा किया जावेगा, जिनमें तिथियों तथा घटनाओं और महान् व्यक्तियों के चरित्रों का समावेश होगा।)

विषय-वस्तु का प्रतिपादन (Presentation of Subject-matter):—

इस स्तर पर विषय-वस्तु का प्रतिपादन जीवन-गाथाओं तथा कहानियों के द्वारा नहीं होगा। अब अध्यापक को ऐतिहासिक जीवनियों तथा घटनाओं का शृंखलाबद्ध तथा क्रमिक वर्णन करना होगा। इन वर्णनों में विषय-प्रतिपादन तथा ऐतिहासिक तथ्यों के कथन पर अधिक ध्यान दिया जायगा। विषय का प्रतिपादन भले ही स्थूल तथा सांयोगिक रीति का हो परन्तु इस स्तर पर शिक्षा अधिक विस्तृत

तथा गम्भीर होगी और ऐतिहासिक महान् व्यक्तियों का वर्णन सजीव तथा रचनात्मक होगा। देश के समाज के लिये उन व्यक्तियों की क्या महत्त्वपूर्ण देन है और उन्होंने समाज के विकास में किस रूप से योग दिया है, इन सब बातों की इस अवस्था पर प्रधानता होगी। प्राइमरी स्तर पर हमने महान् व्यक्तियों को केन्द्र मानकर घटनाओं को उनकी परिधि के रूप में वर्णित किया था, परन्तु इस स्तर पर घटनाओं को केन्द्र-बिन्दु मानकर तथा ऐतिहासिक महान् व्यक्तियों को परिधि मान-कर उनका वर्णन करना होगा।

इस स्तर पर अध्यापक इतिहास के सभी अङ्गों का विवेचन करेगा। वह ऐसा नहीं करेगा कि राजनीतिक इतिहास को अधिक महत्त्व दे और अन्य अङ्गों पर दृष्टि भी न डाले। इन सभी अङ्गों को उनकी महत्ता के अनुसार वर्णित किया जायगा। दूसरे इस स्तर पर अध्यापक इतिहास के पाठ का अन्य विषयों से समन्वय करेगा; विशे-षतः साहित्य से उसका सम्बन्ध स्थापित करेगा। यदि वह शिवाजी के विषय में पढ़ा रहा है तो उसे छात्रों को भूषण के विचारों से भी परि-चित कराना चाहिये।

अन्य शिक्षण सामग्री (Other Teaching Aids):—

(१) **पाठ्य-पुस्तक**:–इस स्तर पर पाठ्य-पुस्तकों का अधिक उपयोग होना चाहिये। प्राइमरी स्तर पर इसके प्रयोग के लिये छात्रों को तैयार करना ही था परन्तु इस स्तर पर इसका प्रयोग अधिकाधिक होना चाहिये। हमारे शिक्षालयों में यह प्रथा चल रही है कि अध्यापक पाठ्य-पुस्तकों को घर पर पढ़ने के लिये प्रोत्साहित करते हैं, परन्तु ऐसा नहीं होना चाहिये। अध्यापक अपने छात्रों को ऐतिहासिक उपन्यास, नाटक आदि पढ़ने को भी प्रोत्साहित करे तथा इसके अतिरिक्त भार-तीय इतिहास के सूत्रों को भी पढ़ने के लिये प्रोत्साहित करे। इस स्तर पर भी पाठ्य-पुस्तकें या तो मातृभाषा में लिखी हों या प्रादेशिक

भाषा में हों। पाठ्य-पुस्तकें छात्रों की रुचि के अनुसार हों। इस स्तर की पाठ्य-पुस्तक में निम्नलिखित गुण होने चाहिये—

(अ) पाठ्य-पुस्तक कहानी या जीवन-गाथा के रूप में नहीं लिखी होनी चाहिये।

(ब) इसमें अधिकाधिक तिथियों का प्रयोग न हो, केवल मुख्य तिथियों का समावेश किया जाना चाहिये।

(स) इसमें चित्रों का भी प्रयोग किया जाय, परन्तु प्राइमरी स्तर की पाठ्य-पुस्तकों के समान अधिक चित्रों का प्रयोग नहीं किया जाय।

(द) मानव-विकास के सभी अङ्गों पर प्रकाश डाला जाय और जटिल तथा विस्तृत वर्णनों को स्थान न दिया जाय।

(य) पाठ्य-पुस्तक के लेखक के द्वारा निष्पक्ष तथा वैज्ञानिक दृष्टि-कोण स्थापित किया जाय। साथ ही साथ वह काल-क्रम भी स्थापित करे।

(र) तथ्यों का संङ्गठन इस प्रकार किया जाय जिससे क्रम बना रहे। वह छात्रों में द्वेष-भावना भी पैदा न करे।

(२) **श्यामपट का प्रयोग**:—इस स्तर पर भी श्यामपट का उपयोग सारांश-लेखन के लिये करना चाहिये। ये सारांश छात्रों द्वारा पुस्तिका के एक ओर लिखे जाने चाहिये और दूसरी ओर उनके द्वारा उनको घर पर विकसित करवाया जाय। इसके अतिरिक्त श्यामपट का प्रयोग युद्ध-योजनाएँ, घेरे को समझाने, मार्गों तथा सेनाओं की स्थिति समझाने के लिये होना चाहिये।

(३) **मानचित्र तथा चित्रों का उपयोग** :—मानचित्रों का उपयोग इस स्तर पर स्थानों को दिखाने के लिये किया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त राज्य-सीमाओं, क्षेत्रफल, आवागमन के मार्गों, दूरी आदि के लिये भी उनका उपयोग होना चाहिये। दुर्भाग्यवश हमारे शिक्षालयों में मानचित्र का उपयोग केवल स्थानों को प्रदर्शित करने के लिये ही किया जाता है। इस स्तर पर छात्रों को ऐसे ही चित्र दिख-

लाने चाहिये जो सामाजिक जीवन को व्यक्त करते हों। ऐसे चित्रों का भी प्रदर्शन होना चाहिये जिनमें महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन हो। परन्तु दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ के कलाकारों ने इस ओर कम ध्यान दिया है।

(४) **अभिनय तथा हस्तकला** (Dramatization and Hand work) :—इस स्तर पर भी अभिनय का उपयोग होना चाहिये परन्तु इसका उपयोग नाटकों के रूप में किया जाय। इस स्तर पर वेष-भूषा तथा अन्य सामग्री पर अधिक ध्यान देना चाहिये जो कि एक नाटक के लिये आवश्यक हों। पात्रों के कथनों को पूर्णतया तैयार करवाया जाय, परन्तु इसका उपयोग कभी-कभी होना चाहिये। इन कक्षाओं में हस्तकला का भी उपयोग होना चाहिये परन्तु इसका समन्वय शिक्षालय के हस्तकार्य से किया जाय। इस स्तर पर मानचित्रों के बनाने पर अधिक ध्यान दिया जाय।

(५) **लिखने का अभ्यास तथा गृहकार्य** (Written Work and Home Task) :—इस अवस्था में लिखित कार्य प्राइमरी स्तर की अपेक्षा अधिक महत्त्व रखता है। इतिहास के अध्यापक को लिखित कार्य निम्नलिखित सुझावों के अनुसार देना चाहिये—

(अ) पाठ का सारांश श्यामपट पर अध्यापक द्वारा दिया जाना चाहिये और उसको घर से विकसित करवाया जाय। अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह देखे कि छात्रों ने श्यामपट-सारांश को अपने ही शब्दों में व्यक्त किया है या दूसरे के शब्दों में।

(ब) अध्यापक छात्रों से पाठ्य-पुस्तक पढ़वाने के पश्चात् संक्षिप्त नोट तथा सारांश लिखने के लिये कहे और स्वयं उनको देखे।

(स) अध्यापक अपने छात्रों को निबन्ध लिखने के लिये आदेश दे। वह इन निबन्धों को गृहकार्य के रूप में दे सकता है। उनसे नियमपूर्वक विशेष प्रकरणों पर संक्षिप्त निबन्ध लिखवाये। ये निबन्ध सरल होने चाहिये।

गृहकार्य देते समय अध्यापक को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

(अ) गृहकार्य सरल तथा संक्षिप्त होना चाहिये।

(ब) जो निबन्ध छात्रों को गृहकार्य के लिये दिये जायँ वे विस्तृत क्षेत्र को ढकते हों, जिससे छात्र को अपनी पाठ्य-पुस्तक का पर्याप्त भाग पढ़ना पड़े और कभी-कभी उनको अन्य पुस्तकों के उपयोग करने के लिये भी प्रोत्साहन दिया जाय। यह तभी हो सकता है जब उनको इसी प्रकार का गृहकार्य निरन्तर दिया जाय।

(स) गृहकार्य ऐसा हो जिससे स्वाध्ययन की नींव पड़े।

(द) गृहकार्य कक्षा के कार्य से भिन्न होना चाहिये। अध्यापक को गृहकार्य देते समय नवीनता का भी ध्यान रखना चाहिये। कभी-कभी वह मानचित्र बनवाने के लिये कह सकता है। यह बहुत ही लाभप्रद होगा, यदि गृहकार्य हस्तकार्य के रूप में दिया जाय।

(य) गृहकार्य कभी-कभी ऐसा दिया जाय जिससे बालकों में तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति विकसित हो।

(स) माध्यमिक स्तर पर इतिहास प्रतिपादन

(Presentation of History at Senior Stage)

इस स्तर पर विद्यार्थी किशोरावस्था में पदार्पण करता है अतः विद्यार्थी में प्रत्येक दृष्टिकोण से परिवर्तन पाया जाता है। इसलिये इस स्तर पर इतिहास का प्रतिपादन एक भिन्न प्रकार से होगा। इस अवस्था में बालक स्वक्रिया को अधिक महत्त्व देता है और स्वयं किसी न किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहता है। इसलिये इस अवस्था में समस्या पद्धति (Problem Method) को अपनाना चाहिये। इसमे "स्वक्रिया द्वारा सीखने" (Learning by doing) के सिद्धान्त का भी विचार मिलता है। समस्याओं के प्रतिपादन करने में छात्रों को क्रिया करने के पर्याप्त अवसर प्राप्त होते हैं। इसके लिये अध्यापक कक्षा को समुदायों में विभाजित कर देगा और उनको एक प्रकार का कार्य निर्धारित करेगा।

यद्यपि इससे छात्रों में प्रतियोगिता की भावना उत्पन्न हो जायगी तथापि वह सबको सामग्री एकत्रित करने के लिये विभिन्न ढंग तथा सुझाव देगा और वे समुदाय अपनी इच्छानुसार उनमें से ग्रहण कर सकते हैं। सामग्री एकत्रित करने के पश्चात् अध्यापक उस समस्या पर विस्तृत रूप से विचार प्रकट करेगा। इसके पश्चात् छात्र अपने निर्णय बनायेंगे। यह क्रम मनोवैज्ञानिकता पर आधारित है। परन्तु यहाँ पर अध्यापक को कुछ बातों का ध्यान रखना पड़ेगा, जो निम्न-लिखित हैं :—

(१) सर्व प्रथम अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जब वह इस पद्धति का प्रयोग करवा रहा हो, उस समय बालकों के कार्य में निरर्थक हस्तक्षेप न करे। वह उनका सहायक तथा पथ-प्रदर्शक बना रहे।

(२) अध्यापक विद्यार्थियों के सम्मुख समस्या उत्पन्न कर सकता है। यदि कभी वह ऐसा नहीं करता है तो बालकों को समस्याओं के चयन में सुझाव प्रदान करना चाहिये।

(३) जिस समय अध्यापक समस्या पर विचार प्रकट करता है, उस समय उसको यह ध्यान रखना चाहिये कि समस्या के दोनों पक्षों पर पूर्ण प्रकाश डाले। यह न हो कि वह पक्षपात के साथ किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करे, वरन् वह निष्पक्ष होकर दोनों पक्षों पर प्रकाश डाले और सत्यता को प्रकट करे।

पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग—

इस स्तर पर पाठ्य-पुस्तक का उपयोग अधिकाधिक होगा। इसके उपयोग के विषय में कहा जा सकता है कि जब छात्रों को एक समस्या हल करने के लिए दे दी गई तो अध्यापक इनके उपयोग के लिये भी सुझाव देगा। समस्या के विषय में छात्र विभिन्न पुस्तकों से उपयुक्त सामग्री प्राप्त करेंगे। जब तक वे इनके विषय में न पढ़ेंगे तब तक समस्या को हल करने में सफल नहीं हो पावेंगे। इस स्तर पर जो पुस्तक छात्रों के लिये निर्धारित की

जावेगी वह एक विद्वान लेखक के द्वारा लिखी होनी चाहिये । पुस्तक में सबसे मुख्य बात यह होनी चाहिये कि पाठ्य-पुस्तक का जो ढंग है वह निष्पक्षता तथा सत्यता प्रकट करता हो । इस अवस्था की पाठ्य-पुस्तक में उदाहरणों का इतना मुख्य स्थान नहीं है जितना कि पहले दो स्तरों में था ।

श्यामपट का प्रयोग :—

श्यामपट का उपयोग इस स्तर पर सारांश-लेखन तथा विभिन्न ढाँचे प्रदर्शित करने के लिये होगा । सारांश में विशेष बातों को लिखा जाना चाहिये । इसके अतिरिक्त श्यामपट पर विशेष बातों को प्रस्तुतिकरण के स्तर पर साथ-साथ लिखते रहना चाहिये । जो बातें श्यामपट पर लिखी जायेंगी वे रूपरेखाओं के रूप में होंगी । उनको विस्तृत रूप में नहीं दिया जायगा । इन बातों को काल-क्रम के अनुसार श्यामपट पर लिखना चाहिये । इसके अतिरिक्त विभिन्न जटिल बिन्दुओं तथा बातों को समझाने के लिये भी इसका उपयोग किया जावेगा। वास्तव में श्यामपट अध्यापक की जीवन-शक्ति है । वह इसके बिना इतिहास-शिक्षण नहीं कर सकता है ।

कक्षा-वादविवाद का उपयोग (Use of Class Discussions)

इस स्तर पर वादविवाद का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है । इस प्रणाली से छात्रों में विचारों को प्रकट करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया जा सकता है तथा इससे वे निर्णय करने में भी समर्थ होंगे । इतिहास अध्यापक यदि इस प्रणाली से लाभ उठाना चाहता है तो उसे निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये :—

(१) कक्षा-वादविवादों में लोचपन होना चाहिये ।

(२) छात्रों को अपने विचार तथा मत प्रकट करने की स्वतन्त्रता प्रदान की जावे ।

(३) अध्यापक को सदैव निरथंकता को रोकने के लिये तत्पर रहना चाहिये ।

(४) वादविवाद विषय की पूर्ण तैयारी के पश्चात् होने चाहिये ।

(५) वादविवादों का मुख्य अभिप्राय ज्ञान प्रदान करना होना चाहिए।

सूत्र-पद्धति का उपयोग (Use of Source Method) :—

इस अवस्था के विद्यार्थी कार्य-कारण सम्बन्ध को समझने में समर्थ होते हैं। इसलिये इस स्तर पर सूत्रों का उपयोग किया जाना चाहिये। छात्रों को मौलिक सूत्रों को पढ़ने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये तथा उनसे उनके सार निकलवाने चाहिये। इसके पश्चात् छात्रों को तत्कालीन डायरी, प्रतिवेदन तथा उपन्यासों को पढ़ने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। इनका उपयोग इस प्रकार किया जा सकता है—अध्यापक एक कथन उनको दे और उस पर प्रश्न पूछे जिससे उसके विषय में वे अपने विचार प्रकट कर सकें। इसके पश्चात् उनको भारतीय सूत्रों की पुस्तक को पढ़ने को प्रोत्साहित किया जाय और तत्पश्चात् उन पर वाद-विवाद करके निर्णय बनाये जायँ।

लिखित कार्य (Written Work) :—

इस स्तर पर लिखित कार्य पर्याप्त मात्रा में करवाना चाहिये। छात्रों को कभी-कभी प्रश्न देने चाहिये और उनके उत्तर लिखवाकर गृह से मंगवाये जायँ और अध्यापक उनको ठीक प्रकार से जाँचे तथा उन्हें सुधार के लिये सुझाव दे। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकरणों के सारांश लिखवाये। इनमें मानचित्रों तथा ढाँचों का भी समावेश करवाये।

ऐतिहासिक समुदाय (Historical Associations) :—

इस स्तर के विद्यार्थियों को समुदायों में विभक्त कर दिया जाय और उनसे विभिन्न वस्तुओं का एकत्रीकरण करवाया जाय। कोई समुदाय सिक्कों को एकत्रित करे, कोई मुहरें आदि एकत्र करे। इस प्रकार उनमें इतिहास के प्रति रुचि उत्पन्न होगी और अतीतकाल को वास्तविक बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त ये समुदाय विभिन्न भाषणों का आयोजन करें, जिससे उनके मानसिक स्तर को विकसित

किया जा सके। इन समुदायों को भ्रमण (पर्यटन) का भी आयोजन करना चाहिये जिससे वे अपने स्थानीय इतिहास का अध्ययन कर सकें।

प्रतिपादन की विषय-सामग्री (Subject Material of Presentation):—

इस स्तर पर विश्व-इतिहास की रूपरेखा दी जानी चाहियें। इसके अतिरिक्त भारतीय इतिहास तथा उसके काल-विशेष का ज्ञान दिया जाय तथा भारतीय-शासन-पद्धति की रूपरेखा का ज्ञान इस अवस्था के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ ही वर्तमान काल की घटनाओं का ज्ञान भी दिया जाय। परन्तु शिक्षक इनके प्रतिपादन में बड़ी सतर्कता से कार्य करे। वह निष्पक्षता तथा तटस्थता से विषय का प्रस्तुतिकरण करे और सत्यता को छात्रों के समक्ष स्पष्ट करे। इस अवस्था का शिक्षक उपर्युक्त विषयों में दक्ष होना चाहिये तभी वह अपने छात्रों के साथ न्याय कर सकता है।

प्रश्न

(१) आप प्राइमरी स्तर पर इतिहास में किस प्रकार का अभिव्यक्ति कार्य निर्धारित करोगे ? इसके कारणों को उदाहरण सहित समझाइये।

(What type of expression work would you suggest in History at Primary Stage ? Give reasons with illustrations.)

(B.T. 1958)

(२) आप श्यामपट का प्रयोग विभिन्न स्तरों पर किस प्रकार करोगे ? विवेचना कीजिये।

(How will you make use of blackboard at different stages ? Discuss fully)

(३) कक्षा-वादविवाद तथा सूत्र-पद्धति का माध्यमिक स्तर पर क्या महत्त्व है ? इनका आप किस प्रकार प्रयोग करेंगे ?

(What is the value of class-discussions and Source Method at the Senior Stage ? How will you make use of them ?)

अध्याय—७

इतिहास-शिक्षण में सहायक-सामग्री (Aids to the Teaching of History)

"इतिहास स्वयं विकास का रूप है और इसलिये यह पूर्णतया नवीन कभी नहीं रहा। इतिहास का अन्वेषण के रूप में प्रारम्भ हुआ और अब भी अन्वेषण है। इतिहास ने लेखा-जोखा का रूप धारण कर लिया था और अब भी वह एक लेखा है। इतिहास वह था जो वास्तविक रूप में घटित हुआ और अब भी उसका वही रूप है। इतिहास वही रहा है जो मानव ने भूत के प्रति सोचा और अब भी वही है जो मानव उसके लिये सोचता है। इस प्रकार इतिहास सदैव से वर्तमान की कृति रहा है।"

(History is itself a phase of development and therefore never entirely new. History began as enquiry and is still enquiry. History become a record and is still a record. History become what actually happened and is still what actually happened. History has always been what human beings have thought about the past, and in this sense has always been a creation of the present.)—Johnson

एक समय था जब कि शिक्षालय एक ऐसी संस्था थी जिसमें अध्यापन-कार्य स्वयं शिक्षक के द्वारा हुआ करता था। उसको किसी भी साधन से इस कार्य में सहायता नहीं मिलती थी और बालक निष्क्रिय श्रोता बना रहता था। परन्तु आधुनिक काल में बालकों के कार्य पर ध्यान दिया गया। अब शिक्षा का वास्तविक अर्थ यह है कि बालक के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास किया जाय। ज्ञान की प्राप्ति में बालक क्रियाशील रहे और उनका पूरा सहयोग प्राप्त किया जाय। वर्तमान-शिक्षा प्रणाली में शिक्षक यही प्रयत्न करता है कि नवीन ज्ञान पूर्वानुवर्ती ज्ञान के आधार पर दिया जाय जिससे दिया हुआ ज्ञान छात्रों की ग्राह्य शक्ति के अनुसार हो। इसीलिये शिक्षक को इस प्रकार के साधन जुटाने पड़ते हैं कि पाठ्य-वस्तु के समझने में छात्रों को कोई उलझन न पड़े। इन्हीं साधनों का एक रूप सहायक-सामग्री है।

छात्रों में इतिहास के प्रति प्रेम हो, घटनाओं का काल-क्रम उनके ध्यान में आ जाय, किसी चित्र या प्रतिरूप के सहारे कोई घटना उनके मस्तिष्क में अंकित हो जाय, उन्हें काल और स्थान का ज्ञान ठीक-ठीक हो जाय, विद्यार्थी जीवन के उपरान्त भी उनका इतिहास के प्रति आकर्षण बना रहे आदि उद्देश्यों की पूर्ति के लिये जिन अनेक साधनों का उपयोग किया जाता है उनको सहायक सामग्री कहते हैं। अध्यापक इस सामग्री का उपयोग पाठ को सजीव तथा सरस बनाने के लिये करता है। इनके द्वारा छात्रों के अवधान को विषय-वस्तु की ओर आकर्षित किया जाता है। इसके साथ ही बालक केवल श्रोतामात्र न रहकर शिक्षक के साथ सहयोग देता है। यही इन साधनों का सबसे बड़ा महत्व है।

इस प्रकार सहायक-सामग्री का अर्थ तथा महत्त्व देखने के पश्चात् हमारे सम्मुख यह प्रश्न उठता है कि इतिहास-शिक्षण में उपयोग की जाने वाली सहायक-सामग्री कौन-कौन सी हैं। इनको हम सुविधानुसार निम्नलिखित विभागों में विभाजित कर सकते हैं :—

(अ) परम्परागत सहायक-सामग्री (Traditional Aids)— उदाहरणार्थ,

पाठ्य-पुस्तक, श्यामपट आदि ।

(ब) प्रदर्शनात्मक उदाहरण (Visual Illustrations)— उदाहरणार्थ,

चार्ट, प्रतिरूप, चित्र आदि ।

(स) श्रव्यात्मक तथा दृश्यात्मक सामग्री (Audio-visual Aids) उदाहरणार्थ,

रेडियो, फिल्म, ग्रामोफोन आदि ।

(अ) परंपरागत सामग्री

इतिहास की पाठ्य-पुस्तक (History Text-Book)

लेखन-कला के उद्गम से पूर्व शिक्षा व्याख्या-प्रणाली से प्रदान की जाती थी । अध्यापक अपने मुख से बालकों के कानों तक ज्ञान पहुँचाता था । जब से लेखन-कला का उद्गम हुआ तब से पुस्तकों का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ, परन्तु पुस्तकों का महत्वपूर्ण प्रयोग मुद्रण-यंत्र के आविष्कार के पश्चात् हुआ । कोमिनियस ने सर्वप्रथम पाठ्य-पुस्तक लिखी जो भाषा-शिक्षण के लिये थी । इन्हीं महानुभाव ने प्रत्येक स्तर पर पाठ्य-पुस्तकों के प्रयोग के लिये बल दिया । फ्रेन्च-क्रान्ति ने इतिहास तथा साहित्य को पाठ्य-क्रम में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया । तत्पश्चात् इतिहास में पाठ्य-पुस्तकों का राष्ट्रीयकरण हुआ । पाठ्य-पुस्तकों के द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं को भली-भाँति प्रदर्शित किया गया । इस प्रकार के उद्देश्य से अमेरिका में पाठ्य-पुस्तकें लिखी गईं । पाठ्य-पुस्तक के उद्गम को जानने के पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि इतिहास-शिक्षण में पाठ्य-पुस्तक का क्या स्थान है ?

इतिहास-शिक्षण में पाठ्य-पुस्तक का स्थान (Place of Text Book in the Teaching of History) :—

इतिहास-शिक्षण में पाठ्य-पुस्तक का स्थान एक विवादपूर्ण प्रश्न

है। कुछ विद्वानों का मत है कि पाठ्य-पुस्तकों को इतिहास के शिक्षरण से बिलकुल पृथक कर दिया जाय अर्थात् उनको कोई स्थान प्रदान नहीं किया जाय। परन्तु कतिपय विद्वानों का विचार है कि इतिहास का शिक्षरण पूर्णतया पाठ्य-पुस्तकों के द्वारा किया जाय, क्योंकि पाठ्य पुस्तक ज्ञान को मितव्ययी ढंग से प्रदान करने के लिये आवश्यक है। यह मनुष्यों तथा अध्यापकों का समय बचाती है तथा एक ही समय में लाखों मनुष्यों के हृदयों को प्रभावित करती है। इसके द्वारा स्वाध्ययन तथा आत्म-विश्वास की वृद्धि की जा सकती है। इन विद्वानों का कथन है कि डाल्टन-प्रणाली तथा योजना-पद्धति के लिये पाठ्य-पुस्तकें अति आवश्यक हैं। यदि किसी विद्यार्थी को कोई निबन्ध या इतिहास में कोई अनुसन्धानकार्य करना है तो उसके लिये पाठ्य-पुस्तकें भूमिका प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त पाठ्य-पुस्तकें किसी नवीन पाठ की तैयारी तथा पाठ की पुनरावृत्ति के लिये भी विशेष लाभप्रद हैं। दूसरे विद्यार्थी पाठ्य-पुस्तकों का उपयोग मानचित्र, सूची (Chart) तथा सारिणी (Table) बनाने के लिये कर सकते हैं।

जो विद्वान पाठ्य-पुस्तकों को इतिहास-शिक्षरण में कोई स्थान प्रदान नहीं करते हैं वे अपने पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं—

(१) पाठ्य-पुस्तक शिक्षरण-क्रम में बहुत उलझन पैदा करती है।

(२) पाठ्य-पुस्तकें सूत्र-पद्धति की आत्मा का हनन करती है। सूत्र-पद्धति छात्रों को ऐतिहासिक अन्वेषरण के लिये प्रोत्साहित करती है, परन्तु जब उनको पाठ्य-पुस्तकें प्रदान की जायेंगी तब वे सूत्रों का उपयोग नहीं करेंगे। वे इन्हीं पाठ्य-पुस्तकों की विषय-वस्तु से ही अपने को सन्तुष्ट करेंगे।

(३) इन विद्वानों का यह मत है कि पाठ्य-पुस्तक बालकों में अभ्यास तथा रटने की प्रवृत्ति पैदा करती है और आत्मविश्वास की भावना का हनन करती है। इनसे बालक अपना निर्णय बनाने में असमर्थ रहते हैं।

उपर्युक्त दोनों मतों पर दृष्टिपात करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि इतिहास-शिक्षण में पाठ्य-पुस्तक को स्थान दिया जाय, परन्तु उसका उपयोग साधन के रूप में किया जाय। उसको साध्य नहीं माना जाय। उपर्युक्त पाठ्य-पुस्तकों के दोषों को हम पाठ्य-पुस्तक के ठीक प्रकार के चयन से दूर कर सकते है। इस स्थान पर हमको सी० पी० हिल (C. P. Hill) महोदय का परामर्श ध्यान में रखना चाहिये। उन्होंने कहा है कि पाठ्य-पुस्तक तथ्यों के संकलन के रूप में उपयोग नहीं की जानी चाहिये, जिसको छात्र हृदय से याद कर सकें वरन् वह मौलिक सूचनाओं के भण्डार के रूप में प्रयोग की जाय, जिसको विद्यार्थी विभिन्न क्रियाओं के लिये उपयोग में ला सकें।

इतिहास की पाठ्य-पुस्तक के प्रकार तथा आवश्यक गुण (Types of History Text-Book and its Essential Qualities) :—

जानसन (Johnson) ने पाठ्य-पुस्तकों को तीन विभागों में विभाजित किया है। वे अधोलिखित हैं—

(१) संक्षिप्त पाठ्य-पुस्तक (Precis Text-Book)—इसके अन्तर्गत वे पुस्तकें आती हैं जो तथ्यों का ढाँचा मात्र ही प्रस्तुत करती हैं। इन पाठ्य-पुस्तकों को फ्रेन्च भाषा में Precis (संक्षिप्त) कहा गया है।

(२) दूसरी श्रेणी में उन पाठ्य-पुस्तकों को रखा गया है, जिनमें रूपरेखाओं की विस्तृत व्याख्या की जाती है, तथापि उनके और अधिक विकास के लिये स्थान छोड़ दिया जाता है। इन पुस्तकों को उसने फ्रेन्च भाषा में Manuels का नाम दिया है।

(३) तीसरी श्रेणी में वे पुस्तकें हैं जिनमें प्रत्येक प्रकरण की सम्पूर्ण रूप से विवेचना की जाय तथा उनके अतिरिक्त विकास के लिये कोई स्थान नहीं रखा जाय। इन पुस्तकों को फ्रेन्च भाषा में Cours का नाम दिया है।

शिक्षक तथा विद्यार्थी के लिये लाभ की दृष्टि से एक पाठ्य-पुस्तक में अधोलिखित गुण होने चाहिये—

(१) पहला महत्त्वपूर्ण गुण यह होना चाहिये कि पाठ्य-पुस्तक

की शैली (Diction) बालकों के अनुसार हो। जिस स्तर का छात्र हो उसकी समझ के अनुसार शैली का प्रयोग करके पाठ्य-पुस्तक लिखी जाय। सूक्ष्म विचारों तथा शब्दों का प्रयोग न किया जाना चाहिये।

(२) पाठ्य-पुस्तकों में घटनाओं तथा तथ्यों के वर्णन के साथ ही उनमें साहित्यिक गुण भी होने चाहिये। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से लेखक की शैली स्पष्ट, सरल तथा सुगम होनी चाहिये। उसमें अस्पष्ट बातों का समावेश ही न किया जाना चाहिये। भाषा सरल तथा अधिकतर समासविहीन ही होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त उन तथ्यों तथा घटनाओं को ऐसे क्रम में रखा जाय जिससे बालक को समझने में कोई उलझन न पड़े। परन्तु यह क्रम काल-क्रम का उल्लंघन न करे। पाठ्य-पुस्तक का क्रम स्वतः ही स्पष्ट करने में सफल होना चाहिये।

(३) इतिहास की पाठ्य-पुस्तक रोचक होनी चाहिये और पाठ्य-पुस्तक के लेखक को रोचक बनाने के लिये प्रदर्शनात्मक साधनों को उपयोग में लाना चाहिये। पाठ्य-पुस्तक छात्रों की रुचि को आकर्षित करने में सफल हो तथा वह उनमें नैतिक गुण उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त कर सके।

(४) एक उत्तम पाठ्य-पुस्तक में मानचित्र, समय-चार्ट तथा क्रियाशील चित्र होने चाहिये। क्रियाशील चित्र बच्चों के अवधान को शीघ्रता से आकर्षित करने में सहायक होते हैं। पुस्तक में जो भी उदाहरण दिये जायँ वे सरल तथा ग्राह्य होने चाहिये। अच्छी पाठ्य-पुस्तक प्रकृति में स्थूलात्मक होनी चाहिये।

(५) अच्छी पाठ्य-पुस्तक का एक यह आवश्यक गुण होना चाहिये कि वह विद्यार्थियों में विश्व-बन्धुत्व की भावना विकसित करे और विश्व-राष्ट्रों के सांस्कृतिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने में सहायक हो। पाठ्य-पुस्तक के लेखक को इस बात से सतर्क रहना चाहिये कि वह किसी वाद (Ism) तथा राष्ट्रीय भाव का पक्षपातपूर्ण ढङ्ग से प्रतिपादन न करे, बल्कि वह निष्पक्ष तथा तटस्थता की नीति को अपना-

कर सत्यता को प्रकट करे। लेखक अपने पाठकों को ऐसा प्रतीत न होने दे कि वे विश्व के शेष भाग से पृथक हैं वरन् उनमें यह भावना विकसित करे कि वे सांस्कृतिक रूप से एक हैं। लेखक का मुख्य ध्येय, पाठकों में सम्पूर्णता तथा ऐक्यता की भावना का विकास करना होना चाहिये।

(६) एक अच्छी पाठ्य-पुस्तक में अधिकतम तथ्यों का सार नहीं होना चाहिये। दुर्भाग्य से हमारी पाठ्य-पुस्तकें Manuels की श्रेणी में आती हैं। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि हमारे प्रकाशक लेखकों से भारतीय इतिहास को २०० पृष्ठों में लिखने के लिये कहते हैं। वे इन सीमित पृष्ठों में सम्पूर्ण इतिहास को उगलवाना चाहते हैं। परन्तु वह लेखक, जिसकी कुछ प्रकरणों में विशेष रुचि होती है, ऐसा करने में अपने को असफल पाता है। यदि वह पूर्ण करता भी है तो वह उन प्रकरणों के साथ पूर्ण न्याय नहीं कर पाता। इसलिये यह आवश्यक है कि पाठ्य पुस्तक में सभी मुख्य ऐतिहासिक सत्यों का पूर्ण वर्णन किया जाय। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पाठ्य-पुस्तक का गुण उसकी निर्दिष्ट मात्रा के लिये समर्पित नहीं किया जाना चाहिये।

(७) पाठ्य-पुस्तक चयनात्मक होनी चाहिये। सभी घटनाओं तथा तथ्यों का वर्णन करना आवश्यक नहीं है, उन सभी तथ्यों तथा घटनाओं का पूर्ण वर्णन होना चाहिये, जिन्होंने किसी न किसी रूप में समाज के जीवन को प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त पाठ्य-पुस्तक छात्रों के मानसिक स्तर के अनुसार होनी चाहिये। जिस मानसिक स्तर के छात्र हों उसी को ध्यान में रखकर उनके लिये पाठ्य-पुस्तक लिखी जाय। कुछ ही मुख्य तथ्य चुने जायँ और उनको पूर्णता के सिद्धान्त के अनुसार वर्णित किया जाय। पाठ्य-पुस्तक के लेखक को तथ्यों के बाहुल्य तथा उनको कुछ शब्दों में प्रकट करने के स्थान पर मुख्य तथ्यों को विस्तृत, पूर्ण तथा रोचक ढंग से लिखना चाहिये। अर्थात् रूपरेखाओं को साहित्यिक तत्व प्रदान करके सजीव बनाया

जाय। परन्तु यह विस्तार तथ्यों को समाप्त न कर दे। छात्र तथ्यों को न भूलें, चाहे उनके विस्तृत वर्णन में कुछ त्रुटि हो जाय।

(८) इतिहास की पाठय-पुस्तक स्थूलात्मक तथा नियमानुसार होनी चाहिये। प्राइमरी स्तर की पाठ्य-पुस्तकों में सामान्यीकरणों को स्थान नहीं दिया जाय।

(९) इतिहास की पाठ्य-पुस्तक काल-क्रम तथा पाठ्य-वस्तु के संगठन के सिद्धान्तों के अनुसार लिखी जानी चाहिये।

(१०) इतिहास की पाठ्य-पुस्तक का निर्वाचन-कार्य शिक्षक के ऊपर होना चाहिये और वह उसके चयन में उसी सिद्धान्त से अनुगत किया जाय जो उसको विशेष रुचिकर तथा निश्चित प्रतीत हो।

(११) पाठ्य-पुस्तक देखने में आकर्षक प्रतीत हो तथा उसका मुद्रण, कागज आदि सुन्दर, स्वच्छ तथा बालकों के स्तर के अनुसार होना चाहिये।

(१२) पाठ्य-पुस्तक में मौखिक उदाहरणों को भी स्थान दिया जाय, परन्तु जो भी उदाहरण दिये जायँ वे उच्च स्तर के लिये होने चाहिये।

(१३) प्रत्येक इतिहास की पुस्तक में अनुक्रमणिका होनी चाहिये। इसका उपयोग क्या है तथा इसको व्यवहार में किस प्रकार लाना चाहिये, ये सब बातें विद्यार्थियों को बतलानी चाहिये।

(१४) प्रत्येक अध्याय या प्रकरण के पश्चात् पाठ्य-पुस्तक में कुछ प्रश्न दिये जाने चाहिये, जिससे छात्र उनका उपयोग कर सकें।

श्यामपट (Black board)

श्यामपट शिक्षक का परम मित्र है। इसलिये इतिहास के शिक्षक को इसका समुचित उपयोग करना चाहिये। बहुत से अध्यापक इसका उपयोग आलस्य के कारण न करके अपने पाठ को मौखिक रूप से दिये चले जाते हैं। वास्तव में उनका पाठ सफल नहीं होता है। यदि कुछ शिक्षक इसका प्रयोग करते भी हैं तो केवल सारांश लिख-

वाने के लिये करते हैं। इतिहास-शिक्षक को इसका उपयोग रेखाचित्र, मानचित्र, तथा युद्ध योजना समझाने के लिये करना चाहिये। प्रदर्शन सामग्री के स्थान पर श्यामपट पर शिक्षक का कोई रेखाचित्र बनाना बहुत उपयोगी होता है। यदि शिक्षक श्यामपट पर तीर बनाकर दिशाओं का ज्ञान देता है तो यह मौखिक उदाहरणों की अपेक्षा शीघ्रता से बालक के मस्तिष्क पर अंकित हो जाता है। श्यामपट के इस प्रकार के प्रयोग ये कई लाभ हो सकते हैं। शिक्षक को रेखाचित्र या मानचित्र खींचते हुए देखकर छात्र उसी भाँति खींचने का प्रयास कर सकते हैं। इस प्रकार विषय को समझाने में सहायता मिलती है तथा उनको विषय में रुचि बनी रहती है। दूसरे, इससे समय की भी बचत होती है, तीसरे शिक्षक के प्रति बालकों की अधिक श्रद्धा हो जाती है। वे उसे योग्य समझते हैं। इसके प्रयोग से अध्यापन शैली में परिवर्तन होता रहता है, जिससे विषय में रोचकता आती है और छात्रों की रुचि भी विषय में स्थिर रहती है।

(ब) उदाहरण (Illustrations)

मौखिक अध्यापन में उदाहरणों का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। इनके द्वारा शिक्षक अपने पाठ को रोचक तथा ग्राह्य युक्त बनाने में सफल होता है। आधुनिक शिक्षा में इन उदाहरणों पर अधिक बल दिया जा रहा है। यहाँ तक कि राज्यों की सरकारें भी इस क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। हमारा केन्द्रीय शिक्षा-विभाग शिक्षालयों तथा कॉलिजों को विभिन्न प्रकार के प्रदर्शनात्मक उदाहरण प्रदान कर रहा है, जिनके द्वारा पाठ रोचक बनाये जा सकते हैं। हम इन उदाहरणों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं:—

(१) मौखिक उदाहरण (Verbal Illustrations)
(२) लाक्षणिक उदाहरण (Symbolic Illustrations)
(३) प्रदर्शनात्मक उदाहरण (Visual Illustrations)

(१) **मौखिक उदाहरण**—इन उदाहरणों का उपयोग सूक्ष्म तथा सामान्य सिद्धान्तों की व्याख्या करने के लिये किया जाता है, चाहे ये विचार तथा सिद्धान्त किसी राजनीतिज्ञ के विषय में हों या उसकी नीति के विषय में हों। साधारणतया ये उदाहरण कक्षा या सूत्रों के उद्धरण के रूप में पाये जाते हैं। इन उदाहरणों का मुख्य प्रयोग जटिल विचारों के स्पष्टीकरण के लिये किया जाता है। शिक्षक को इनका उपयोग करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि वे सरल तथा ग्राह्य हों।

(२) **लाक्षणिक उदाहरण**—इनके अन्तर्गत वे उदाहरण आते हैं जो ऐतिहासिक घटनाओं को समझाने के लिये शिक्षक द्वारा विभिन्न ढाँचों के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। ये सांकेतिक होते हैं, क्योंकि ये तथ्यों के सम्बन्ध को प्रकट करते हैं। इस श्रेणी के अन्तर्गत हम समय-चार्ट, समय-तालिका तथा मानचित्रों को रख सकते हैं। इनका सम्बन्ध आँख से है, अतः हम इनको प्रदर्शनात्मक उदाहरणों में भी रख सकते हैं।

(३) **प्रदर्शनात्मक उदाहरण**—इनका उपयोग छात्रों की कल्पना-शक्ति को विकसित करने के लिये किया जाता है। इनका इतिहास-शिक्षण में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि ये बालकों के अवधान को प्रत्यक्ष रूप से आकर्षित करते हैं। इन उदाहरणों में विषय-वस्तु का स्थूलात्मक रूप प्रतिपादित किया जाता है। छात्र इनका उपयोग कर सकते हैं और इनके द्वारा इतिहास-कक्ष में प्रभावशाली तथा उपयुक्त वातावरण स्थापित किया जा सकता है। इस श्रेणी के अंतर्गत चित्र, प्रतिरूप, मानचित्र तथा विभिन्न रेखाओं द्वारा बनी हुई आकृति (Diagram) आदि आती हैं। इनका उपयोग तथा महत्त्व पृथक रूप से अगले पृष्ठों में दिया जाता है।

प्रतिरूप (Model)

प्रतिरूप किसी वस्तु की किसी निश्चित अनुपात में बनी हुई प्रति-

मूर्ति होती है। इनका इतिहास-शिक्षरण में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इनके द्वारा छात्रों को मौलिकता का ज्ञान देने का प्रयत्न किया जाता है। इनके द्वारा छात्रों में निरीक्षरणात्मक प्रवृत्ति को भी विकसित किया जा सकता है। इतिहास-शिक्षक को प्रतिरूपों का निर्माण करने के लिये छात्रों को प्रोत्साहित करना चाहिये। उनको दो प्रकार से बनाया जा सकता है—प्रथमतः मौलिक वस्तुओं के आधार पर तथा दूसरे ऐतिहासिक साहित्य के वर्णन के आधार पर। प्रतिरूप निम्नलिखित व्यक्तियों तथा पदार्थों के सरलतापूर्वक बनाये जा सकते हैं—

(अ) महान व्यक्ति

(ब) यन्त्र, शस्त्रादि,

(स) महान शासक,

(द) किला, गढ़, स्तम्भ, रणक्षेत्र, बर्तन, आभूषण आदि।

(य) मुहरें, सिक्के, शिलालेख आदि।

प्रतिरूप के गुण (Attributes of a good model)

(१) **सरलता** (Simplicity)—इतिहास का प्रतिरूप जटिल नहीं होना चाहिये, वरन् उसमें सरलता का गुण होना आवश्यक है जिसको बालक स्वयं मरम्मत कर सके और सरलता से उसको समझ सके।

(२) **उपयोगिता** (Utility)—प्रतिरूप में यदि उपयोगिता का गुण नहीं होगा तो वह वस्तु-संग्रहालय में रखने मात्र की रह जायगी। वह किसी न किसी ऐतिहासिक तथ्य का स्पष्टीकरण करे तभी इतिहास-शिक्षण में उसकी उपयोगिता हो सकती है।

(३) **शुद्धता** (Accuracy)—इतिहास के प्रतिरूप का मुख्य उद्देश्य बालक के विचारों की व्याख्या करना नहीं है, वरन् इतिहास की व्याख्या करना है। इसकी आकृति कक्षा के अनुसार होनी चाहिये और इसके जो विभाग हों उनकी आकृति भी दृष्टि के अनुसार शुद्ध तथा ठीक होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त प्रतिरूप में ठोसपन होना

चाहिये। हमको प्रतिरूप बनाने के लिये कागज, गत्ता, प्लास्टिक तथा मिट्टी का प्रयोग करना चाहिये।

प्रतिरूप के प्रकार (Types of Model)

(१) **वैयक्तिक** (Individual)—इसमें एक ही बालक का कार्य अधिकतर होता है। इसके द्वारा व्यक्तिगत रूप से एक ही विद्यार्थी को आनन्द प्राप्त होता है। इसके द्वारा बालक में व्यक्तिगत देन की भावना होती है।

(२) **सामूहिक प्रतिरूप** (Collective Model)—ये प्रतिरूप कक्षा के सामूहिक परिश्रम के फल होते हैं। इस प्रकार के प्रतिरूप सहयोग की भावना विकसित करते हैं तथा सामूहिक परिश्रम को प्रोत्साहन देते हैं।

चित्र (Pictures)

प्रत्येक वस्तु का प्रतिरूप नहीं बनाया जा सकता है, क्योंकि एक तो यह सरल कार्य भी नहीं है दूसरे इसके बनाने में समय बहुत लगता है, इसलिये इनके स्थान पर चित्रों का उपयोग किया जाता है। जारविस (Jarvis) के शब्दों में हम कह सकते हैं कि छोटी कक्षाओं के शिक्षण को रोचक बनाने के लिये शिक्षण-सामग्री में अभिनयात्मक दृश्यों तथा नायकों के चरित्रों को रखना चाहिये। इसको रोचक बनाने के लिये अध्यापक को ऐतिहासिक चित्रों का उपयोग करना चाहिये। जारविस का विचार है कि चित्रों के द्वारा वास्तविकता के सुन्दर स्वप्नों को प्रदर्शित किया जाय। इनमें स्थूल वस्तुओं की प्रधानता होनी चाहिये। इनके प्रदर्शन से छात्रों में यह भावना विकसित की जाय कि इतिहास वास्तविक घटनाओं तथा व्यक्तियों से ही संबंध रखता है। इसके अतिरिक्त चित्र आकर्षक तथा निर्देशात्मक दोनों ही होने चाहिये। अध्यापकों को मुख्यतया चित्रों का उपयोग छोटी कक्षाओं में ही करना चाहिये। चित्र प्रदर्शन के लिये सबसे उपयुक्त

सामग्री है । इनका उपयोग शिक्षक विभिन्न उद्देश्यों तथा अभिप्रायों से करते हैं । इनके उपयोग के उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(१) चित्रों के द्वारा विद्यार्थियों की कल्पना-शक्ति विकसित होती है ।

(२) चित्र सुगमता से प्राप्त हो जाते हैं ।

(३) इनके द्वारा निरीक्षण-शक्ति का भी विकास होता है ।

(४) इतिहास-शिक्षण को इनके द्वारा सजीव बनाया जाता है अन्यथा वह मृतप्राय हो जाता है ।

(५) चित्रों से छात्रों में विश्लेषण करने की प्रवृत्ति उत्पन्न की जा सकती है ।

(६) चित्रों के द्वारा ऐतिहासक तथा वास्तविक वातावरण उत्पन्न किया जा सकता है जो कि विषय में छात्रों की रुचि स्थिर रखने में बहुत ही सहायक है ।

(७) इनके द्वारा छात्रों में कलात्मक प्रवृत्ति उत्पन्न की जा सकती है ।

(८) प्रयोगों के द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि छात्र मौखिक व्याख्या की अपेक्षा चित्र देखकर किसी भी वस्तु को शीघ्र ग्रहण कर लेता है ।

ऐतिहासिक चित्र के आवश्यक गुण (Essentials of a good History Picture)

(१) चित्र पूर्णतया शुद्ध होना चाहिये अर्थात् उसके द्वारा स्पष्ट किये गये विभिन्न अङ्गों को उपयुक्त स्थान दिया जाना चाहिये ।

(२) चित्र अधिक खर्चीला नहीं हो अर्थात् उनके क्रय करने में अधिक व्यय न करना पड़े ।

(३) चित्र सरल तथा आकर्षक होने चाहिये ।

(४) इनके द्वारा ऐतिहासिक विचार प्रदान कियें जायँ ।

(५) चित्र प्रकरण के अनुसार होने चाहिये ।

(६) कक्षा के अनुसार चित्र का आकार हो। उनका न्यूनतम आकार १६″×६″ होना चाहिये।

(७) चित्र क्रियाशीलता से पूर्ण होने चाहिये।

(८) गहरे रङ्गों का प्रयोग कम किया जाय।

जिन विद्यालयों में इतिहास-कक्ष की पृथक व्यवस्था है, उस कक्ष में दीवार के चित्रों (Wall Pictures) की भी व्यवस्था होनी चाहिये। इतिहास-कक्ष की दीवारों पर विभिन्न चित्रों को चित्रित करवाया जाय, परन्तु ये चित्र काल-क्रम के अनुसार हों। दीवारों पर चित्रित किये हुए चित्र निम्नलिखित उद्देश्यों से अत्यन्त लाभप्रद हैं—

(१) दीवारों के चित्र भली-भाँति देखे जा सकते हैं, क्योंकि वे सदैव कक्ष में उनके सम्मुख रहते हैं।

(२) ये चित्र विद्यार्थियों में इतिहास-कक्ष की भावना उत्पन्न करते हैं। वे उस कक्ष में वैसा ही प्रतीत करते हैं जैसा कि वे विज्ञान की प्रयोगशाला में करते हैं।

(३) ये चित्र विषय के प्रतिपादन के लिये प्रभावशाली वातावरण उत्पन्न करने में सहायक हैं। इसके अतिरिक्त दीवारों पर बड़े-बड़े चित्र चित्रित किये जा सकते हैं।

मानचित्र (Maps)

इतिहास में समय-ज्ञान की भाँति स्थान-ज्ञान का प्रश्न भी महत्व-पूर्ण है। इतिहास के शिक्षण का एक उद्देश्य यह भी है कि छात्रों को घटनाओं से सम्बन्धित स्थलों द्वारा सीमा का ज्ञान कराकर भौगोलिक स्थिति से परिचित कराया जाय। इस उद्देश्य को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब मानचित्र का प्रयोग किया जाय। इसलिये इतिहास-शिक्षण में मानचित्र का उपयोग अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि मान-चित्र का संबंध मुख्यतः भूगोल से है किन्तु इतिहास में भी इसकी आवश्यकता पड़ती है, अन्यथा साम्राज्य का विस्तार, राजधानियों के स्थान, युद्ध के मैदान तथा राज्य की सीमाओं आदि का ज्ञान

विद्यार्थियों को नहीं हो सकेगा। इतिहास के लिये तत्कालीन राजनीतिक मानचित्र होने चाहिये। अध्यापक को मानचित्र में आवश्यक बातों को उचित स्थान पर प्रदर्शित करके छात्रों को दिखलाना चाहिये। उसको मुद्रित मानचित्रों का उपयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि उसमें अनेक बातें दी रहती हैं, जिसका इतिहास के पाठ से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इसलिये उसे मानचित्र का उपयोग करना चाहिये। उसमें पाठ से सम्बन्धित बातों को प्रदर्शित करके छात्रों को उसका ज्ञान दिया जाय। मानचित्र के उपयोग के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

(१) मानचित्र का उपयोग वादविवाद के उद्देश्य से भी किया जा सकता है।

(२) इसके उपयोग का मुख्य ध्येय छात्रों के मस्तिष्क में स्थानों के सम्बन्ध को अंकित करना है।

(३) इसके प्रयोग से इतिहास का पृथ्वी पर स्थानीयकरण किया जाता है। यदि इसका उपयोग न किया जाय तो इतिहास की घटनाएँ वायु में रहती हैं जो कि बालक को बोधगम्य नहीं हो सकती हैं।

(४) यदि मानचित्र का अध्ययन ठीक प्रकार से कराया जाय तो उससे कक्षा में क्रियाशीलता उत्पन्न की जा सकती है।

(५) इसके प्रयोग से इतिहास तथा भूगोल के सम्बन्ध का ज्ञान दिया जाता है। भौगोलिक परिस्थितियों ने किस प्रकार ऐतिहासिक घटनाओं को प्रभावित किया है इन सब का ज्ञान मानचित्र के उपयोग से छात्रों को कराया जा सकता है।

ऐतिहासिक मानचित्र के गुण (Attributes of a good History Map):—

(१) मानचित्र सरल होना चाहिये अर्थात् कलात्मक न हो जाय। इसके अतिरिक्त यह व्ययी भी न हो।

(२) इसमें प्राचीन काल के नगरों के नामों के साथ-साथ उनके वर्तमान काल के नाम भी दिये जायँ।

(३) मानचित्र में, जो कक्षा में उपयोग में लाये जायँ, व्यापारिक मार्गों तथा युद्ध-स्थल और अन्य मार्गों के अंकित करने में सदैव शुद्धता होनी चाहिये। वे स्पष्टतया इन मार्गों को प्रदर्शित करें। इसके अतिरिक्त स्थानों के स्थापन में पूर्णतया सतर्कता ध्यान में रखनी चाहिये।

(४) मानचित्र स्थूल न हो जाय अर्थात् उसमें निरर्थक स्थानों, मार्गों तथा राज्यों की सीमाओं का प्रदर्शन न हो, वरन् वे ही वस्तुएँ प्रदर्शित की जायँ जिनकी उस पाठ के शिक्षण में आवश्यकता है।

मानचित्र के प्रयोग में कठिनाइयाँ (Difficulties in the use of Map) :—

(१) हमारे यहाँ उन मानचित्रों का अभाव है जो पूर्णतया शुद्ध तथा पूर्ण हैं। बाजार में जो मानचित्र प्राप्त होते हैं वे किसी न किसी क्षेत्र में हीन पाये जाते हैं। उनके द्वारा ठीक प्रकार से स्थापन तथा दूरी में सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता।

(२) कभी-कभी मानचित्र उन देशों के विषय में ठीक विवरण नहीं दे पाते हैं, जो क्षेत्र में बड़े हैं।

(३) मानचित्रों में विभिन्न पैमानों के प्रयोग से भी कठिनाई उत्पन्न होती है। विश्व के विभिन्न भागों को प्रदर्शित करने के लिये विभिन्न पैमानों का प्रयोग किया गया है जिससे छात्रों को समझने में बाधाएँ पैदा होती हैं।

(४) कठिनाई का दूसरा श्रोत मानचित्रों की प्रलम्बताएँ (Pro·ections) हैं। वे विभिन्न ऊँचाई से खींचे जाते हैं।

(५) मानचित्रों के परिवर्तन से भी बहुत सी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं जो कि शिक्षक को कक्षा में सुलझानी पड़ती हैं। उदाहरणार्थ—हमारे देश का मानचित्र राज्यों की सीमाओं के बदलने से परिवर्तित हो गया है जिसको समझाने में अध्यापक को कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

शिक्षक को इन कठिनाइयों का सामना सतर्कता तथा धैर्य के साथ करना चाहिये और उनको सुलझाकर छात्रों को पूर्ण ज्ञान दे। इन

कठिनाइयों से हमको मानचित्रों का उपयोग नहीं छोड़ देना चाहिये। इनके महत्व के विषय में प्रो० जानसन (Johnson) ने कहा है कि इतिहास मानचित्रों के द्वारा बनाया गया है, और उनमें ही वह लिखित है।

सूची तथा रेखाकृति (Charts and Diagrams)

सूची तथा रेखाकृति दोनों कक्षा में इतिहास के अध्यापक के लिये महत्त्वपूर्ण सहायक-सामग्री है। इतिहासकारों में इनके वास्तविक महत्त्व के विषय में मतभेद है। परन्तु इतिहासकार एक बात में पूर्णतया सहमत हैं कि हस्त-निर्मित सूचियों (Charts) तथा रेखाकृतियों से इतिहास-शिक्षरण को छोटे बच्चों के लिये प्रभावशाली बनाया जा सकता है। दूसरे इनके द्वारा इतिहास-कक्ष में ऐतिहासिक वातावरण उत्पन्न किया जा सकता है। छात्रों द्वारा निर्मित चार्ट बहुत ही उपयोगी तथा रोचक होते हैं। समय-सूची समय-ज्ञान उत्पन्न करने के लिये बहुत ही उपयोगी है। सूची महत्त्वपूर्ण तथ्यों के सारांश के रूप में विशेष लाभदायक है। इनके द्वारा मितव्यय तथा सरलता से शिक्षा प्रदान की जा सकती है।

अच्छी सूची के गुरण (Attributes of a good Chart) :—

(१) सूची अपनी आकृति में साधारण होनी चाहिये। उनमें कलात्मकता को स्थान नहीं दिया जाय।

(२) सूची में शुद्धता पूर्णतया स्थापित की जानी चाहिये, चाहे वह समय-सूची हो या ऋतु-सूची। उसमें रेखाओं को शुद्धता के साथ खींचा जाना चाहिये और विभाजन भी ठीक प्रकार से हो।

(३) सूची ऐतिहासिक घटनाओं की संक्षिप्त कहानी प्रदर्शित करे।

(४) यदि चार्ट समय-ग्राफ हो तो उसमें राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दशाओं को ठीक प्रकार से प्रदर्शित किया जाय।

रेखाकृति का महत्व (Values of Diagrams) :—

यह शुद्धता तथा संक्षिप्तता प्रदर्शित करने के लिये एक महत्त्वपूर्ण साधन है । ये वे लिखित विवरण हैं, जिनके विषय में हम जानते हैं ।

(१) इसका महत्व केवल देखने वाले के लिये ही नहीं है वरन् बनाने वाले के लिये भी है । जो रेखाकृति बनाता है वह स्वतः ही उनके द्वारा प्रदर्शित की हुई बातों के भेदों तथा सम्बन्धों के विषय में जानने के लिये इच्छुक हो जाता है । यदि वह इनका ज्ञान न प्राप्त करेगा तो वह उनको खींचने में सफल नहीं हो पायेगा ।

(२) यह मस्तिष्क तथा हाथ के समन्वय के लिये अवसर प्रदान करता है ।

(३) यह एक खोज है जो खींचने वाला करता है, जिससे उसे आनन्द प्राप्त होता है ।

(४) इसके द्वारा अध्यापक छात्रों के कार्यों की जाँच कर सकता है ।

(५) इससे पुनरावृत्ति तथा स्मरण करने में सहायता मिलती है ।

(६) इसके द्वारा वे छात्र अपने विचारों को सरलता से प्रकट कर सकते हैं जिनका भाषा पर अधिकार नहीं है । जो छात्र भाषा में निर्बल होते हैं, इनको खींचने से आत्महीनता की भावना से बच जाते हैं ।

(७) रेखाकृति उन छात्रों के लिये भी उपयोगी है जो अपने विचारों को संकेतों के रूप में प्रकट करते हैं ।

(८) इनके द्वारा कक्षा-कार्य में परिवर्तन किया जा सकता है जो कि थकान को दूर करने के लिये अत्यन्त लाभदायक है ।

(९) यह निबन्धात्मक-कार्य का पूरक है ।

रेखाकृति बनाने के लिए संकेत (Hints for drawing Diagrams)

(१) सरलता तथा शुद्धता रेखाकृति को प्रदान की जानी चाहिये ।

(२) तथ्यों की अधिकता को दूर किया जाय।

(३) उपयुक्त स्थान प्रयोग में लाया जाय अर्थात् थोड़ा स्थान लेने से उसमें कुरूपता आ जाने का भय रहेगा, इसलिये तथ्यों को प्रकट करने के लिये ठीक दूरी ली जाय।

(४) रेखाकृति बनाने में लम्बे वाक्यों का प्रयोग नहीं होना चाहिये, वरन् मुख्य शब्दों से प्रकट किया जाय।

(५) सरल प्रकृति के संकेत प्रयोग में लाने चाहिये। उदाहरणार्थ मनुष्य, मकान, फेक्टरी आदि।

(६) रंगों का प्रयोग वर्गीकरण, तुलना आदि के लिये किया जाय।

(स) श्रव्यात्मक तथा दृश्यात्मक सामग्री (Audio-visual Aids)

यह सहायक-सामग्री बीसवीं शताब्दी की देन है। सर्वप्रथम, अमेरिका ने शिक्षण-कार्य के लिये इनका प्रयोग किया। इनके महत्त्व को समझकर सभी देशों ने इस क्षेत्र में प्रगतिशील कदम उठाया। अन्तर्राष्ट्रीय संघ ने इनकी उपयोगिता पर बहुत बल दिया और इनको उपयोगी सिद्ध करने के लिये यह संघ इनका प्रचार कर रहा है। हमारी सरकार ने भी के० जी० सैय्यद्दीन (K. G. Saidyan) की अध्यक्षता में एक बोर्ड बनाया जो कि श्रव्यात्मक तथा दृश्यात्मक शिक्षा के लिये विभिन्न सामग्री निर्मित करता है और उनको विभिन्न शिक्षालयों को प्रदान कर रहा है।

इतिहास-शिक्षण में प्रयोग लायी जाने वाली सामग्री के प्रकार (Types of Aids useful in History Teaching)—

(अ) मेजिक लेन्टर्न (Magic Lantern)

(ब) ग्रामोफोन (Cramophone)

(स) फिल्म (Film)

(द) रेडियो-ब्राडकास्ट (Radio broadcast)

(अ) **मेजिक लेन्टर्न**—इसका प्रयोग पर्याप्त समय से शिक्षा के क्षेत्र

में किया जा रहा है। यह आज भी इतिहास-शिक्षक के लिये पर्याप्त उपयोगी है। यदि अध्यापक किसी वस्तु को लपेटना जानता है तो वह इसका प्रयोग कर सकता है। इसके लिये अध्यापक स्लाइडों को एकत्रित करे जो कि ऐतिहासिक प्रकरणों से सम्बन्धित हों। जैसे— ऐतिहासिक भवनों के चित्रों की स्लाइड, सिक्कों, पोशाकों के चित्र आदि की स्लाइड। इसके द्वारा वह भूतकालीन वस्तुओं को वास्तविक बना सकता है तथा पाठ को रोचक, प्रभावशाली, तथा कक्षा में ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत कर सकता है।

(ब) **ग्रामोफोन**—इसका प्रयोग मुख्यतया स्थानीय इतिहास के शिक्षण के लिये किया जा सकता है। प्राचीन कथाओं तथा विरुदावलियों के रिकार्डों के द्वारा राष्ट्रीय इतिहास के शिक्षण को भी रोचक बनाया जा सकता है। विभिन्न विद्वानों के द्वारा दिये गये ऐतिहासिक व्याख्यानों के रिकार्डों को बनाकर छात्रों को इनसे लाभान्वित किया जा सकता है।

(स) **फिल्म**—शिक्षा-शास्त्रियों का मत है कि फिल्म नवयुवकों को शिक्षित करने के लिये बहुत ही लाभप्रद साधन है। हमारे देश में शैक्षिक फिल्मों का निर्माण करने के लिये केन्द्रीय सरकार द्वारा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है। केन्द्रीय-फिल्म-लाइब्रेरी (Central film Library) इतिहास के अध्यापकों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में संलग्न है। विभिन्न विद्वानों का मत है कि इनका उपयोग इतिहास-शिक्षण में अधोलिखित वस्तुओं के प्रतिपादन के लिये किया जा सकता है—

(१) फिल्मों का उपयोग भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों के मनुष्यों के जीवन की दशाओं का तुलनात्मक ज्ञान देने के लिये किया जा सकता है।

(२) इनका उपयोग इतिहास के कुछ प्रकरणों में छात्रों की रुचि उत्पन्न करने के लिये भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, विभिन्न

कालों की स्थापत्य-कला, चित्र कला आदि का ज्ञान देने के लिये अध्यापक इनका प्रयोग करके छात्रों में इनके प्रति रुचि उत्पन्न कर सकता है।

(३) इनके द्वारा अध्यापक विभिन्न व्यवसायों की उत्पत्ति के क्रम का ज्ञान दे सकता है।

(४) जटिल प्रकरणों को सरल तथा रोचक बनाने के लिये इनका उपयोग इतिहास का शिक्षक कर सकता है।

फिल्मों का उपयोग कब करना चाहिये (When to use Films)

(१) कक्षा में फिल्मों का उपयोग उस समय करना चाहिये जिस समय मौखिक-शिक्षण किसी बात को पूर्णतया स्पष्ट करने में असफल रहे या इनके द्वारा मौखिक-शिक्षण को अधिक प्रभावशाली बनाया जावे।

(३) अध्यापक छात्रों को शहर के चलचित्रों में ऐतिहासिक फिल्म देखने के लिये भी प्रोत्साहित कर सकता है। परन्तु वह उन फिल्मों में दी हुई कल्पना को दूर करने के लिये बाद में उन ऐतिहासिक तथ्यों की व्याख्या करके वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करेगा तभी उन फिल्मों के लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं।

(द) **रेडियो-ब्राडकास्ट** (Radio Broad-casts) अन्य महत्त्वपूर्ण सहायक-सामग्री रेडियो है जो कि कहे हुए शब्दों का आनन्द लेने के लिये प्रोत्साहन देता है। ब्रिटिश-ब्राडकास्टिंग-कारपोरेशन (British Broadcasting Corporation) पर्याप्त समय से स्कूल-ब्राडकास्ट दे रही है। आल-इंडिया-रेडियो (All-India Radio) भी अब स्कूलों का प्रोग्राम देने लगा है जिनमें विभिन्न अध्यापक तथा छात्र भाग लेते हैं और प्रतिष्ठित विद्वानों के द्वारा महत्त्वपूर्ण तथा छात्रों के विषयों से सम्बन्धित व्याख्यान प्रसारित किये जाते हैं।

रेडियो-ब्राडकास्ट के लाभ (Advantages of radio-broad-cast)

(१) इनके द्वारा छात्रों तथा अध्यापकों को विचित्रता (Varicty) प्रदान की जाती है जिसकी छात्रों को अत्यन्त आवश्यकता होती है।

दूसरे, उनको अन्य ढङ्ग से प्रस्तुत की हुई विषय-वस्तु सुनने को मिलती है।

(२) ब्राडकास्ट छात्रों को बहुत से नाटकीय दृश्य प्रदान करते हैं जो कि अध्यापक तथा कक्षा दोनों के लिये प्रस्तुत करना सुलभ नहीं है।

(३) ये ब्राडकास्ट बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा विद्वता से भरपूर होते हैं जिनका अध्यापक को भी बहुत कम ज्ञान होता है।

(४) ब्राडकास्ट अध्यापक को छात्रों में हुई इनके द्वारा प्रतिक्रिया की जाँच करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं।

उपर्युक्त लाभों के देखने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि इतिहास के शिक्षण में ये ब्राडकास्ट अत्यन्त लाभप्रद हैं। हमारे शिक्षालयों को रेडियो का प्रबन्ध करना चाहिये और इन ब्राडकास्टों को सुनने के लिये समय-तालिका में समय निश्चित कर देना चाहिये जिससे अध्यापक तथा छात्र दोनों लाभ उठा सकें।

इतिहास में पर्यटन या भ्रमण (Excursion in History)

अब तक इतिहास बालकों के लिये एक शुष्क विषय समझा जाता था, परन्तु उसकी महत्ता का अनुभव करते हुए यह आवश्यक हो गया है कि उसको हर प्रकार से रोचक बनाया जाय। यह बात दूसरे विषयों के समान कक्षा में बैठकर या शिक्षालय की प्राचीर के अन्दर पूर्ण नहीं हो सकती, वरन् इतिहास तथा भूगोल ऐसे विषय हैं जिनके लिये शिक्षा-सम्बन्धी पर्यटन करना आवश्यक बताया गया है। इसके लिये छात्रों को बाहर ले जाकर आसपास या यदि सम्भव हो सके तो दूर के खण्डहर, प्रसिद्ध भवन, मकबरे, किले इत्यादि को दिखाना चाहिये और बताना चाहिये कि यह उन लोगों की सभ्यता और उन्नति का परिणाम है कि इतना समय बीतने पर भी ये इसी या किसी अंश तक गिरी हुई दशा में खडी हैं। जब बालक इन ऐतिहासिक स्मारकों को अपनी आँखों से देखेंगे तो वे अपने पूर्वजों की महत्ता को

समझेंगे और उनमें अधिक रुचि रखेंगे तथा उन पर गर्व करेंगे । इस प्रकार ये ऐतिहासिक अवशेष छात्रों को अतीतकाल के समझने में सहायता देंगे और इतिहास बालकों के सम्मुख एक जीता जागता विषय हो जायगा। उनको अपने वातावरण से रुचि तथा प्रेम पैदा हो जायगा और आगामी जीवन में यह बात देश-प्रेम के रूप में परिवर्तित हो जायगी, जो एक सच्चे नागरिक के लिये अत्यन्त आवश्यक है। पर्यटन स्थानीय इतिहास के अध्ययन के लिये भी अत्यन्त आवश्यक है।

शिक्षा-सम्बन्धी पर्यटन के लिये यह आवश्यक है कि पहले से छात्रों को बता दिया जाय कि वे कहाँ और किस प्रयोजन से जा रहे हैं। उनके पास एक-एक नोट-बुक होनी चाहिये जिसमें वे सब बातें लिखें जो उनको देखनी हैं और पर्यटन के समय जो आवश्यक बातें बताई जायँ उनको भी लिखें। जब छात्र इतिहास में अशोक और उसकी लाटों का वर्णन पढ़ रहे हों तो उनसे पूछना चाहिये कि उन्होंने कभी पत्थर पर लिखा हुआ लेख देखा है। 'नहीं' में उत्तर आने पर उन सबको एक ऐसे स्थान पर ले जाया जाय जहाँ इस प्रकार का कोई लेख उपस्थित हो । इलाहाबाद, बनारस और इसी प्रकार के दूसरे स्थानों पर ये लेख पाये जाते हैं, इसलिये शिक्षकों को यह बात समझाने में कठिनाई नहीं होगी। जिन स्थानों में ये लेख न हों और बालकों के लिये यात्रा करना कठिन हो तो उस काल के अन्य स्मारकों द्वारा अशोक की महत्ता छात्रों के मस्तिष्क में भरनी चाहिये । यदि छात्र शाहजहाँ के विषय में पढ़ रहे हों तो उनको उसके स्मारकों को दिखाकर उनकी स्थापत्यकला तथा चित्रकला का पूर्ण ज्ञान देना चाहिये। इस प्रकार स्थानीय तथा बाह्य स्मारकों को दिखाकर इतिहास के शिक्षण को रोचक बनाना चाहिये और छात्रों में इतिहास के प्रति रुचि उत्पन्न करना चाहिये।

यदि किसी नगर में कोई ऐतिहासिक भवन, दुर्ग, मस्जिद, या मन्दिर हो तो छात्रों को वहाँ अवश्य ले जाया जाय। दुर्ग की समस्त

वस्तुएँ उन्हें दिखाई जायँ। दुर्ग की खाई की लम्बाई-चौड़ाई तथा गहराई और उसकी बनावट पर ध्यान देने के लिये कहा जाय तथा यह बताया जाय कि किसी नदो, तालाब या किसी और साधन से उसमें पानी जमा रहता है। इससे शत्रु को दुर्ग पर आक्रमण करने में कठिनाइयाँ होती हैं। दुर्ग के मुख्य में कई फाटक होते हैं। मुख्य द्वार अपेक्षाकृत दृढ़ होता है। ये द्वार एक पंक्ति में नहीं होते, वरन् चक्करदार तैयार किये जाते हैं। भीतरी मार्ग चढ़ाई का होता जाता है जिससे शत्रु को भीतर पहुँचने में कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। दुर्ग की प्राचीर की दीवारें बहुत ऊँची होती हैं। ये सब वस्तुएँ छात्रों को एक-एक करके दिखाई जायँ, जिससे किसी दुर्ग की लड़ाई का वर्णन पढ़ते समय उसका ठीक-ठीक ज्ञान उन्हें हो जाय। यदि कोई मस्जिद या मन्दिर या मकबरा है तो उसका ऐतिहासिक महत्त्व समझाया जाय। उसकी बनावट और उसके प्राचीन गौरव पर बालक विशेष रूप से ध्यान दें। उनके मानचित्र बनायें। यदि उनमें बेल-बूटे बने हुए हैं तो उनको कापियों पर बनवाया जाय। इस प्रकार कला व डिजाइन तथा हस्तकला से प्राचीन भवनों का सम्बन्ध स्थापित कराया जा सकता है।

इन प्राचीन स्मारकों के तुल्य अन्य प्रकार की वस्तुओं की खोज करने का कार्य प्रश्नों द्वारा होना चाहिये। इससे बालकों की छानबीन करने की शक्ति बढ़ती है और वैज्ञानिक दृष्टिकोण बनाने के लिये मार्ग तैयार करती है। जब बच्चे ऐसे पर्यटन से लौट आवें तो उनसे पूर्ण वर्णन लिखवाया जाय। इसके लिये बहुत सी सामग्री उनकी नोट-बुकों में होगी और वे कुछ उसकी तथा कुछ अपनी स्मरण-शक्ति की सहायता से एक रोचक वर्णन लिख सकेंगे। यदि भ्रमण में उन्होंने मानचित्र तैयार किये हैं तो उनको अच्छे आर्ट-कागज पर उतारकर और उचित रङ्गों से रंगकर उनसे इतिहास के कक्ष को विभूषित किया जाय। इस प्रकार के चित्र, मानचित्र आदि कक्षा में ऐतिहासिक

वातावरण स्थापित करने में सहायक होंगे। ये वस्तुएँ पढ़ाते समय शिक्षकों के लिये सहायता का काम भी देंगी और उनसे उनका तथा शिक्षालय दोनों का सम्मान बढ़ेगा। इसके अतिरिक्त जब पर्यटन से छात्र वापस आ जायँ, तब अध्यापक प्रश्नों की सहायता से उन पर पूर्ण प्रकाश डाले और छात्रों को उनके विषय में अतिरिक्त सामग्री प्रदान करे।

प्रश्न

१—उन साधनों का विस्तार के साथ वर्णन कीजिये जो आप इतिहास के शिक्षण में अतीत को वास्तविक बनाने के लिये प्रयोग में लावेंगे।

(Mention in detail the devices you would employ in the teaching of History in order to make the past 'real' ?)

२—निम्नलिखित में से किन्हीं तीन के महत्व को इतिहास-शिक्षण में बताइये :—

(i) मानचित्र
(ii) चित्र
(iii) रेडियो
(iv) प्रतिरूप
(v) पर्यटन
(vi) पाठ्य-पुस्तक

(Discuss the value of any three of the following in the teaching of History:—

(i) Maps
(ii) Pictures
(iii) Radio
(iv) Models

(v) Excursions
(vi) Text-Book.)

(P. U. B. T. 1949)

३—इतिहास-शिक्षण में उदाहरणों के उपयोग के गुणों की विवेचना कीजिये तथा उदाहरणों के प्रकारों को भी बताइये।

(Discuss the advantages of using illustrations in the teaching of History. Mention the main types of illustrations which can be used.)

(P. U. B. T. 1945)

४—इतिहास के शिक्षण में निम्नलिखित में से किन्हीं दो के महत्व को समझाइये :—

(अ) चित्र तथा प्रतिरूप
(ब) ऐतिहासिक स्थानों का भ्रमण
(स) पाठ्य-पुस्तक

(Discuss the value of any two of the following in the teaching of History. :—

(a) Pictures and Models.
(b) Excursions to historical places.
(c) Text-Book.)

(A. U. B. T. 1957)

अध्याय—८

इतिहास में अभिनय-कला

(Dramatization in History)

यहाँ अभिनय से मन्तव्य यह है कि छात्र किसी ऐतिहासिक व्यक्ति जैसे गौतम बुद्ध, सिकन्दर, पोरस, अकबर, राणाप्रताप, शिवाजी इत्यादि के जीवन-चरित्र से सम्बन्धित किसी प्रसङ्ग का एक छोटा नाटक (Drama) खेलें। इस साधन के उचित उपयोग से इतिहास का अध्ययन विशेष रुचिकर होकर छात्रों के सम्मुख अतीतकाल का चित्र उपस्थित कर देता है।

अभिनय-कला का महत्त्व (Importance of Dramatization)

बालकों में एक बड़ी विशेषता यह है कि वे सदैव कुछ न कुछ कार्य करते रहने के लिये अभ्यस्त होते हैं। जो बालक साफ-सुथरे और स्वस्थ होते हैं, वे कभी शान्त तथा स्थिर नहीं रह सकते, कुछ न कुछ अवश्य करते रहते हैं। जब वे अपने बड़े-बूढ़ों और पशुओं को काम करते देखते हैं तो उसी भाँति उनका वे अनुकरण करते हैं। उसमें

उनको एक प्रकार का आनन्द आता है। बालकों में अनुकरण और अभिनय की कला स्वभावतः जन्म से ही होती है। वे लकड़ी के डंडे पर सवार होकर ताँगावाला तथा रिक्शावाला बनकर उसके सवार की अनुकृति करते हैं। वे कभी राजा, सिपाही, चोर, अध्यापक, फेरीवाले इत्यादि बन जाते हैं। इस प्रकार के काम करने से, जिनमें अपने अवयवों को काम में लाना पड़ता है और जिनमें दूसरों का अनुकरण करना पड़ता है तथा दूसरों से बढ़कर चतुरता दिखाने की आवश्यकता पड़ती है, बालकों को हार्दिक प्रसन्नता प्राप्त होती है, क्योंकि उनको अपनी अनुकरण करने की शक्ति को काम में लाने का अवसर मिलता है। यह बौद्धिक-शक्ति बालकों की एक विशेष योग्यता है और शिक्षक का परम कर्त्तव्य यह है कि वह इस शक्ति को विकसित करने में पूर्ण सहायता प्रदान करे। इसके लिये इतिहास से बढ़कर कोई अन्य विषय न मिलेगा, जिसमें इस शक्ति को विकसित करने का अवसर मिल सके। इसका कारण यह है कि इतिहास घटनाओं का भण्डार है। जब इन घटनाओं के दृश्यों को बालकों के सामने नाटक के रूप में विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया जायगा तो निश्चय ही उनकी इस शक्ति का विकास हो जायगा। इस प्रकार बालकों के सम्मुख किसी घटना का दृश्य आ जायगा जैसे कि वह पूर्णतया सत्य है। वे उस काल की पोशाक, रहन-सहन, खाना-पीना इत्यादि अपनी आँखों से देखकर अपने समय की इस प्रकार की वस्तुओं से तुलना करके आनन्द उठावेंगे।

इस नाटकीय ढङ्ग की शिक्षा से केवल इसी शक्ति का विकास नहीं होता, वरन् सृजनात्मक तथा विनाशात्मक शक्तियों का भी विकास होता है, जो कि मनोविज्ञान के अनुसार मूल-प्रवृत्तियाँ कही जाती हैं। शिक्षा के दृष्टिकोण से इन शक्तियों की ओर ध्यान न देना नितान्त भूल है। फ्रोबेल (Froebel) ने जो कि बच्चों का प्रेमी था, इन शक्तियों के विकास पर बल दिया है। उसके अनुसार बालक के विकास के लिये खेल (Play) ही आधार था। खेल के द्वारा उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास किया जा सकता है। इसी प्रकार ड्यूवी (Dewey) ने भी

इन्हीं स्वाभाविक प्रवृत्तियों के विकास के लिये क्रिया पर बल दिया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अभिनय के द्वारा बच्चे की इन प्राकृतिक शक्तियों का विकास किया जा सकता है। इसलिये अभिनय शिक्षण के लिये एक महत्त्वपूर्ण साधन है, जिसके द्वारा बालक का विकास किया जा सकता है। अब तक ऐतिहासिक घटनाएँ तथा भाषा की कहानियाँ नीरस समझी जाती थीं, परन्तु इनको अभिनय-कला ने सरस तथा सजीव बना दिया। इसके द्वारा बालकों के सम्मुख अशोक, अकबर तथा राणाप्रताप का केवल चित्र ही नहीं आता, वरन् वे सजीव होकर उनके सम्मुख आ जाते हैं और फिर वे लोग उनके विचारों तथा भावनाओं का अनुकरण करके अपने समाज को लाभ पहुँचाते हैं तथा योग्य नागरिक बनने का प्रयत्न करते हैं।

अभिनय-कला के लाभ (Advantages of Dramatization)

अभिनय-कला का महत्त्व देखने के पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि हम इतिहास-शिक्षण में अभिनय का उपयोग क्यों करते हैं? इसका उत्तर यह है कि इससे हमें अनेक लाभ प्राप्त होते हैं, जिनको प्राप्त करने के लिये हम इसका प्रयोग इतिहास में करते हैं। वे लाभ निम्नलिखित हैं—

(१) मनोवैज्ञानिक रूप से अभिनय मानसिक अभ्यास के लिये बालकों को अवसर प्रदान करता है तथा इसके द्वारा स्मरण-शक्ति का भी विकास होता है, क्योंकि बालकों को बहुत से संवादों को स्मरण करना पड़ता है, जिससे उनको स्मरण करने की आदत पड़ जाती है।

(२) यदि बालक सदैव पुस्तक ही पढ़ते रहें अथवा प्रश्नों के उत्तर लिखते रहें तो इतिहास की शिक्षा में रोचकता न रहेगी। अतः परिवर्त्तन की दृष्टि से यह पद्धति लाभदायक है, क्योंकि परिवर्त्तन के द्वारा रुचि उत्पन्न की जा सकती है तथा बच्चों की थकान को दूर किया जा सकता है। इसके द्वारा अनुशासनहीनता की समस्या को भी सुलझाया जा सकता है, क्योंकि रुचि ही इसकी आधारशिला है। यदि पाठ में

रोचकता नहीं है तो बालक अनुशासित नहीं हो पावेगा। परिवर्तन से उनकी रुचि को पाठ में लगाया जा सकता है और कक्षा में अनुशासन भी स्थापित किया जा सकता है।

(३) फोबेल के अनुसार समस्त क्रियाएँ शिक्षाप्रद हैं। अभिनय-कला के द्वारा जो क्रियाएँ उत्पन्न की जाती हैं वे भी शिक्षा-प्रद हैं। इसके द्वारा तथ्यों की सूक्ष्मता को दूर करने में सहायता मिलती है। इससे तथ्यों को स्थूलता प्रदान की जाती है।

(४) अभिनय स्वक्रिया द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के लिये अनेक अवसर प्रदान करता है, जिससे इतिहास रोचक तथा सजीव बनता है।

(५) छात्रों में सहानुभूति तथा कल्पना-शक्ति का अभाव होता है। इसके द्वारा बालकों में कल्पना-शक्ति विकसित की जा सकती है। इस साधन से यह भी लाभ है कि बालकों को अन्य देशों तथा अन्य प्रान्तों की जनता के आचार-विचार ज्ञात हो जाते हैं, जिसके द्वारा उनमें उनके प्रति सहानुभूति की भावना उत्पन्न की जा सकती है। अभिनय-कला के द्वारा हमें गहन सहानुभूति का अनुभव होता है। इसके साथ-साथ उनका दृष्टिकोण भी विस्तृत किया जा सकता है।

(६) अभिनय के द्वारा दृश्यात्मक-निरीक्षण की शक्ति का विकास किया जाता है।

(७) अभिनय-कला बालकों की इन्द्रियों को शिक्षित तथा प्रफुल्लित करती है। इसके द्वारा कर्णेन्द्री, नेत्रों तथा हाथों को भी शिक्षित किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह हमारी बुद्धि तथा संवेगों को भी आकर्षित करतो है।

(८) नाटक देखना सभी को रुचिकर है। इसमें मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा भी मिलती है। अभिनय द्वारा इतिहास की शिक्षा देने से ज्ञान की प्राप्ति के साथ मनोरंजन भी होता है। छात्रों को प्रत्यक्ष अभिनय करने का अवसर मिलता है जिससे उन्हें बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं के प्रसङ्ग स्मरण हो जाते हैं।

(९) अभिनय के द्वारा बालकों में विषय-ग्राह्यता, आत्मविश्वास

तथा आत्माभिव्यंजनाशक्ति विकसित की जाती है। इसके द्वारा उनकी झिझक तथा लज्जाशील प्रवृत्ति को कम किया जाता है। इसके अतिरिक्त बालक बोलने की कला (Art of Speaking) भी सीख लेते हैं। इससे उनमें योग्य नागरिक के गुणों को उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है।

(१०) इसके द्वारा छात्रों को नैतिक शिक्षा प्रदान की जाती है। बालकों में अनुकरण की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है वह जिस व्यक्तित्व का पार्ट खेलते हैं उसके अनुसार अपने को बनाने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार अभिनय के द्वारा विभिन्न नैतिक पुरुषों के कार्यों के नाटक करवाये जा सकते हैं, जो कि उनमें नैतिक गुणों का विकास करने में विशेष सहायता प्रदान करेंगे।

(११) इसके द्वारा बालकों में कलात्मक रुचि उत्पन्न की जा सकती है। परन्तु यह रुचि सत्यता तथा वास्तविकता के मूल्य पर नहीं की जानी चाहिये, वरन् सत्यता के साथ-साथ कलात्मक रुचि उत्पन्न की जानी चाहिये।

(१२) अभिनय के द्वारा छोटी कक्षाओं में इतिहास-शिक्षण बड़ी सरलता से किया जा सकता है क्योंकि इस स्तर पर छात्र गहन विचारों को नहीं समझ पाते हैं। परन्तु इसके द्वारा उन्हें क्रिया करके सीखने का अवसर प्राप्त होता है। यह इस स्तर पर अधिक सुगमता से प्रयोग में लायी जा सकती है, क्योंकि इन कक्षाओं के बालक विशेषतः क्रियाशील होते हैं और इस समय उनको अभिनय-कला सिखाकर भविष्य के लिये स्थायी विचार उत्पन्न कर सकते हैं।

(१३) बालकों को अनुकरण करने का अभ्यास विशेष रूप से हो जाता है। वे अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे अभिनीत दृश्य को सत्य समझने लगते हैं।

अभिनय कला की सीमाएँ (Limitations of Dramatization)

(१) अभिनय-कला सुगम नहीं है। इसका प्रयोग भारतीय विद्यालयों में बहुत कम होता है; क्योंकि न तो अध्यापकगण ही पूर्णतया

परिचित होते हैं और न छात्र ही। बालकों में अभिनय करने की प्राकृतिक प्रवृत्ति होती है; किन्तु इस प्रवृत्ति में अनुकरण की मात्रा ही अधिक होती है। किसी अभिनय को देखकर वे उसकी अनुकृति कर सकते हैं, किन्तु यह सम्भव नहीं कि कक्षा में किया जाने वाला प्रत्येक नाटक उन्होंने अन्यत्र कहीं देखा हो। अतः सम्भव है कि अध्यापक को बालकों का अभिनय अपूर्ण प्रतीत हो, किन्तु स्वयं छात्रों को उसकी अपूर्णता नहीं खटकेगी और उनका ध्यान उस ओर बना रहेगा। इस आपत्ति के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि अध्यापक बालकों की निरन्तर सहायता करे और उनकी अशुद्धियों को सुधारने का प्रयत्न करे। अध्यापक स्वयं नाटकों में भाग लेता रहे, जिससे उसकी अनभिज्ञता दूर हो जायगी।

(२) इसके विरुद्ध दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि इससे कक्षा में अनुशासन नहीं रहने पाता, क्योंकि अभिनय के लिये स्वतन्त्र क्रिया की आवश्यकता है। परन्तु इसके उत्तर में हम यह कह सकते हैं कि अनुशासन का भङ्ग होना या न होना तो विशेषकर अध्यापक के व्यक्तित्व पर निर्भर है। यदि अध्यापक सजग तथा सतर्क रहेगा तो इस समस्या के उत्पन्न होने का अवसर ही नहीं आयेगा।

(३) इसके प्रयोग करने में एक विशेष कठिनाई ऐतिहासिक स्वप्नों अर्थात् नाटकों तथा उपन्यासों में प्रसङ्ग (Theme) की न्यूनता है। भारतवर्ष में ऐतिहासिक नाटकों तथा एकांकी नाटकों की बहुत न्यूनता है, इसलिये इसका उपयोग साधारण रूप से नहीं हो पाता है। यदि हमारे यहाँ कुछ ऐतिहासिक नाटक हैं भी तो उनको खेलने में भाषा की कठिनाई सबसे प्रबल है। श्री जयशंकर प्रसाद तथा श्री वृन्दावनलाल वर्मा के 'स्कन्दगुप्त' तथा 'हंस मयूर' नाटक हिन्दी साहित्य के सौन्दर्यपूर्ण कार्य हैं परन्तु उनकी भाषा इतनी क्लिष्ट है जो छोटे-छोटे बच्चों के स्तर के लिये उपयुक्त नहीं है। इसके साथ ही ये ऐतिहासिक नाटक दूसरी कठिनाई लम्बे सम्वादों की उत्पन्न करते हैं। ये सम्वाद इतने लम्बे तथा बड़े हैं जो कि बालकों के द्वारा स्मरण नहीं किये जा

सकते हैं, जिनके कारण अभिनय का प्रयोग नहीं हो पाता है।

(४) इतिहास के शिक्षण में आर्थिक अभाव इसके प्रयोग में बाधा उपस्थित करता है। इस कारण हमारे शिक्षालयों में अनिवार्य वस्तुओं की अत्यन्त कमी है। अभिनय के उपयोग के लिये अधिक धन की आवश्यकता है। शिक्षालय इसके लिये धन प्रदान नहीं कर सकते हैं, क्योंकि वे अपने अध्यापकों को हो वेतन नहीं दे पाते हैं। इसके लिये उपयुक्त पोशाकों की अत्यन्त आवश्यकता है। इनके बिना ठीक प्रकार का वातावरण स्थापित नहीं किया जा सकता है। इनके लिये धन प्रदान करना शिक्षालयों की आर्थिक दशा के बाहर है।

(५) इतिहास राजाओं तथा महापुरुषों का ही वर्णन नहीं करता, वरन् युद्धों का भी विवेचन करता है। युद्धों का अभिनय सम्भव नहीं है।

(६) इसके विरुद्ध एक आपत्ति यह की जाती है कि इस प्रकार के सम्वाद-लेखन के लिये शिक्षक के पास समय नहीं है अथवा इन्हें बालकों से लिखवाने के लिये बहुत से शिक्षकों में आवश्यक मनोवृत्ति का अभाव होता है। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यदि शिक्षक अभिनय को उचित समझता है तो वह अवश्य उसकी सामग्री तैयार कर लेगा। वस्तुतः अभी हिन्दी मे इस प्रकार की पुस्तकें प्राप्त नहीं हैं। किन्तु यदि शिक्षक-वर्ग इस कमी को दूर करने का प्रयत्न करे तो लेखक भी इस प्रकार की पुस्तकें लिखने लग जावेंगे और शनैः-शनैः यह असुविधा मिट जायेगी।

(७) अभिनय के लिये नेतृत्व, मौलिकता, कार्य-शक्ति आदि गुणों की आवश्यकता है। परन्तु ये गुण हमारे इतिहास के अध्यापकों में भी नहीं प्राप्त होते। ऐसा देखा गया है कि बहुत से अध्यापक तो इतिहास के ज्ञान में भी परिपक्व नहीं होते। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम इस कारण अभिनय का उपयोग न करें, वरन् उनका सुधार किया जाय और अभिनय जब कभी सम्भव हो तब अवश्य किया जाय।

(८) अन्त में हम कह सकते हैं कि समय का अभाव इसके प्रयोग

में बाधा डालता है। कुछ व्यक्तियों का मत है कि अभिनय-कला में इतना समय लग जाता है कि प्रस्तावित पाठ्य-वस्तु निर्धारित समय में पूर्ण नहीं हो सकती है। इसके अतिरिक्त यदि इनका प्रयोग अर्थात् नाटक की तैयारी तथा उसको ठीक प्रकार से प्रदर्शित करने का ढङ्ग सब कक्षा में किया जाय तो यह कला के चिथड़ों के समान हो जायगा। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि शिक्षण के अन्य साधनों के समान अभिनय भी एक साधन है। हमें इसका प्रयोग प्रतिदिन नहीं करना है। यदि वर्ष में चार या पांच बार भी इसका उपयोग हो जाय तो पर्याप्त है और इतना समय हम सुगमता से इसके लिये निकाल भी सकते हैं।

अभिनय के प्रकार (Types of Dramatization)

अभिनय का वर्गीकरण दो भागों में किया गया है, जो इस प्रकार है—

(१) एकाएक अभिनय (Extempore Dramatization)

(२) तैयार किया हुआ अभिनय (Prepared Dramatization)

प्रथम प्रकार का अभिनय अत्यन्त शिक्षा-प्रद और सूचनात्मक होता है तथा बालकों की मानसिक क्रिया को प्रोत्साहित करता है। इसके द्वारा विचार-शक्ति का विकास किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह शिक्षण के लिये भी बहुत लाभप्रद है।

दूसरे प्रकार के अभिनय में बालकों को पहले से ही सब बातों को तैयार करना पड़ता है। इसमें सम्वादों को पूर्णतया स्मरण करके कहा जाता है। इसके द्वारा बालकों की भाषा में तो सुधार किया जा सकता है परन्तु बालकों के मानसिक स्तर के विस्तृत होने के लिये कम अवसर प्राप्त होते हैं।

अभिनय करने से पूर्व निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये—

(१) सर्वप्रथम अध्यापक प्रसङ्ग का चयन करें जो बालकों को

कक्षा में पढ़ाया जाना है। इसके पश्चात् वह इसके सम्बन्ध में प्राप्त सभी सूत्रों की सूचना छात्रों को दे और कक्षा में उस प्रसङ्ग की पूर्ण विवेचना कर दे और छात्रों को सम्वाद लिखने के लिये कहे। इस प्रकार का अभ्यास बालकों को विशेष हितकारी है।

(२) प्रसङ्ग की पूर्ण विवेचना के पश्चात् अध्यापक पुस्तक के संवादों को बालकों से कक्षा में कहलवाये या उनके द्वारा लिखे सम्वादों को शुद्ध करके तैयार करवाये।

(३) अध्यापक इन सम्वादों में प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों को बालकों से अपनी पुस्तिका में लिखवाये। परन्तु इन ऐतिहासिक तथ्यों को वर्णनात्मक ढङ्ग से नहीं लिखवाया जाय, वरन् उनको संक्षेप में लिखवाया जाय और कभी-कभी इन पर अध्यापक द्वारा प्रश्न भी किये जायँ। इससे छात्रों को यह लाभ होगा कि वे ऐतिहासिक तथ्यों की वास्तविकता को जान जायेंगे। इन प्रक्रियाओं के पश्चात् बालकों से अभिनय कराया जाय।

भारतीय इतिहास में अभिनय के लिये उपयुक्त प्रकरण निम्नलिखित हैं—

(१) आर्यों तथा द्राविड़ों का प्रथम मिलन।

(२) बुद्ध के जीवन-चरित्र की कुछ घटनाएँ (गृहत्याग, सारथी तथा बुद्ध का वार्तालाप)

(३) सिकन्दर तथा पोरस की भेंट।

(४) सिकन्दर तथा चन्द्रगुप्त मौर्य।

(५) चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य।

(६) अशोक की युद्ध न करने की प्रतिज्ञा।

(७) पृथ्वीराज तथा संयुक्ता।

(८) सोमनाथ की लूट।

(९) बाबर।

(१०) अकबर और उसके नवरत्न।

(११) राणाप्रताप के जीवन-चरित्र की घटनाएँ।

(१२) शिवाजी के जीवन-चरित्र की घटनाएँ।

(१३) क्लाइव तथा अमीचन्द।

(१४) सदाशिवराव भाऊ।

(१५) झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के जीवन-चरित्र की कुछ घटनाएँ।

(१६) सुभाषचन्द्रबोस के जीवन-चरित्र की कुछ घटनाएँ।

(१७) गान्धी जी।

प्रश्न

१—अभिनय-कला इतिहास-शिक्षण में कहाँ तक सहायक है ? भारतीय इतिहास के किसी काल की सहायता से इसको समझाइये।

(How far is dramatization an effective aid to the teaching of History ? Illustrate with reference to any period of Indian History.)

(B. T. 1958)

२—इतिहास में अभिनय-कला के गुणों तथा सीमाओं को बताइये।

(What are the merits and limitations of the dramatization in History.)

३—इतिहास में अभिनय-कला का क्या महत्त्व है ? भारतीय इतिहास से अभिनय के उपयुक्त पाँच प्रसंगों के नाम लिखिये।

(What is the importance of dramatization in History ? Give five suitable topics for dramatization from Indian History.)

अध्याय—९

टिप्पणियाँ लिखना और लिखवाना

(Note Making and Note Dictating)

हमारे शिक्षालयों में टिप्पणी (Note) लिखाने की प्रथा विशेष रूप से प्रचलित है। प्रत्येक विषय का अध्यापक इस प्रथा से ग्रसित है परन्तु इतिहास की शिक्षा के अवसर पर अध्यापक बहुत अधिक टिप्पणियाँ लिखाते हैं। इसके लिये अध्यापक को ही दोषी ठहराया जाता है। यहाँ तक कि प्रशिक्षण-प्राप्त अध्यापक भी इस प्रथा से ग्रसित हैं। इसके अनेक कारण हैं। कुछ शिक्षक तो अपने विचारों को ठीक प्रकार से व्यक्त न करने के कारण टिप्पणी लिखाते हैं। कुछ अपने पाठ को ठीक प्रकार से तैयार नहीं कर पाते हैं इसलिये वे समय व्यतीत करने के लिये ही टिप्पणी लिखाते हैं। कुछ अध्यापक ऐसे हैं जो कक्षा के उपयुक्त पाठ्य-सामग्री न प्राप्त हो सकने के कारण मुख्य बातें या टिप्पणियाँ लिखाते हैं। परन्तु इस विषय में जो प्रश्न हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं उन पर विचार करना यहाँ हमारा मुख्य कर्त्तव्य है-

(१) मुख्य बातें या टिप्पणी किस प्रकार लिखायी जाती हैं?

(२) मुख्य बातें क्यों लिखायी जाती हैं ? और

(३) जिस अभिप्राय को लेकर ये लिखायी जाती हैं क्या उसकी प्राप्ति होती है या नहीं ? क्या ये उसकी प्राप्ति में साधन का कार्य करती हैं या साध्य बन जाती हैं ?

टिप्पणी लिखाने के प्रकार (Types of Dictating Notes)

(१) कुछ अध्यापक विस्तृत टिप्पणियाँ लिखवाना पसन्द करते हैं। वे कतिपय मुख्य प्रकरणों पर विस्तृत टिप्पणियाँ लिखाते हैं, उदाहरणार्थ—फ्रेन्च-क्रान्ति, औद्योगिक-क्रान्ति, भारतीय पुनुरुत्थान, १९१९ का दोहरा शासन, शेरशाह का प्रबन्ध, मनसबदारी प्रथा आदि। इस प्रकार टिप्पणियाँ लिखाकर अपने पाठ्य-क्रम की समाप्ति करते हैं। कुछ लोग तो इन प्रकरणों की पहले व्याख्या कर देते हैं तब टिप्पणियाँ देते हैं। लेकिन सदैव ऐसा नहीं किया जाता। कुछ अध्यापक इन मुख्य प्रकरणों का ठीक प्रकार से स्पष्टीकरण करने के लिये समय नहीं दे पाते हैं।

(२) कुछ शिक्षक सम्भावित तथा मुख्य प्रश्नों पर प्रश्नोत्तर रूप में टिप्पणी लिखाते हैं। जिसको उसी रूप में छात्र स्मरण कर लेते हैं और परीक्षा में उसी प्रकार उगल आते हैं।

(३) कुछ शिक्षक पाठ को पुस्तक से पढ़ते हैं या छात्रों से पढ़वाते हैं और तब वे उसका स्पष्टीकरण करते हैं। इसके पश्चात् श्यामपट पर पढ़े हुए पाठ का सारांश लिख देते हैं और छात्र इस सारांश को अपनी पुस्तिकाओं में लिख लेते हैं। बहुत से शिक्षक टिप्पणी लिखाने की इस विधि को अपनाते हैं।

(४) दूसरे अध्यापक पाठ्य-पुस्तक के मुख्य वाक्यों को रेखांकित करा देते हैं और छात्रों से उनको लिखने के लिये कह देते हैं। ये चयन किये हुए पुस्तक के अंश एक संक्षिप्त पाठ्य-पुस्तक का उद्देश्य पूर्ण करते हैं। चाहे ये टिप्पणियाँ प्रश्नोत्तर रूप में लिखायी जायें या पाठों के सारांश रूप में, परन्तु इनके पीछे वही विचार रहता है कि छात्र घर जाकर उनकी पुनः-पुनः आवृत्ति करके स्मरण करें।

मुख्य बातें लिखाने के कारण (Reasons of Dictating Notes)

(१) **इतिहास में अच्छी पाठ्य-पुस्तकों का अभाव** (Lack of Suitable Text-books in History) :—पाठ्य-पुस्तकें बहुत से शिक्षकों को टिप्पणियाँ लिखाने के लिये वाध्य करती हैं। इसका प्रथम कारण यह है कि इतिहास की अच्छी पुस्तकें अँग्रेजी-माध्यम से लिखी हुई हैं जो कि छात्रों की समझ में कम आती हैं। दूसरे मातृभाषा या प्रादेशिक भाषाओं में लिखी हुई पुस्तकों का अभाव है। इस कारण शिक्षक टिप्पणियाँ लिखाते हैं। इसके अतिरिक्त बाजार में अधिकतर वे पुस्तकें प्राप्त होती हैं जो कि अनुभवहीन शिक्षकों के द्वारा लिखी जाती हैं जिनको इतिहास-शिक्षण का ज्ञान नहीं होता है। अधिकतर पुस्तकों के लेखक कॉलिजों के अध्यापक पाये जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वे विद्वान हैं, परन्तु उनका उन छात्रों से कोई सम्बन्ध नहीं होता जिनके लिये वे पुस्तक लिख रहे हैं। उनको उनके मानसिक स्तर, अवस्था, योग्यता आदि का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है। इस कारण उनके द्वारा लिखी पुस्तकें बच्चों के लिये उपयुक्त सिद्ध नहीं हो पातीं। इसका एक कारण यह भी है कि जिस बोर्ड के द्वारा पुस्तकों का निर्धारण किया जाता है वह कभी-कभी उच्चस्तर की पुस्तकों को निम्नस्तर के छात्रों के लिये निर्धारित कर देता है। इस कारण बालक उन पुस्तकों को समझने में असमर्थ रहते हैं और अध्यापक उनको उस पाठ्य-वस्तु को स्मरण कराने के लिये टिप्पणी लिखाने की विधि का सहारा लेता है।

(२) छात्रों की शक्ति के यह बाहर है कि वे अनेक पुस्तकों का अध्ययन कर सकें। दूसरे वे उपयुक्त रीति से प्रश्नों का उत्तर भी नहीं दे पाते हैं जब तक कि उनको लिखने का ढङ्ग नहीं बताया जाय। इस कारण भी उनको मुख्य बातें या टिप्पणियाँ लिखाना आवश्यक है। मुख्यतः शिक्षक प्रश्नोत्तर रूप में टिप्पणियाँ लिखाते हैं। इसके

पक्ष में उनका कहना है कि विद्यार्थी पाठ्य-पुस्तकों को समझ तो लेते हैं, परन्तु वे अपने विचारों को ठीक प्रकार से प्रदर्शित नहीं कर पाते हैं; अतः उनको प्रश्नोत्तर रूप में मुख्य बातें लिखाई जाती हैं।

(३) **बाह्य परीक्षा** (External Examination)– टिप्पणियाँ लिखाने का मुख्य कारण बाह्य-परीक्षा है। हमारी शिक्षा-प्रणाली का मुख्य दोष परीक्षा-प्रणाली है। इस प्रणाली में शिक्षा के समस्त दोषों की नींव पाई जाती है। बाह्य-परीक्षा केवल पाठ्य-क्रम को ही अधिकृत नहीं करती, परन्तु यह कक्षा के कार्य को भी अधिकृत करती है अर्थात् कक्षा का सम्पूर्ण कार्य इसके अनुसार ही होता है। शिक्षालयों का अस्तित्व परीक्षाफल पर ही निर्भर रहता है। यहाँ तक कि शिक्षक की कार्य कुशलता तथा विद्वत्ता उसके विषय के परीक्षाफल पर ही निर्भर होती है। उनका मुख्य उद्देश्य छात्रों को परीक्षा के लिये प्रस्तुत करना मात्र रहता है। शिक्षक प्रश्न-पत्रों की परम्परा से यह कल्पना करने में समर्थ होते हैं कि क्या प्रश्न पूछे जा सकते हैं। उन सम्भावित प्रश्नों का उत्तर लिखवाकर छात्रों को परीक्षा के लिये तैयार कर दिया जाता है। इससे बहुत से प्रकाशकों ने भी 'सहायक-पुस्तकें' प्रश्नोत्तर रूप में छापने का साहस किया है। वे ऐसी पुस्तकें छापने लगे हैं जिनको छात्र परीक्षा की रात को पढ़ते हैं और उनके द्वारा परीक्षा पास करते हैं। इस प्रकार देखने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इतिहास के शिक्षक को इसी परीक्षा-प्रणाली ने टिप्पणियाँ लिखवाने के लिये बाध्य किया है।

(४) हमारे बहुत से इतिहास के शिक्षकों में अभिव्यंजनाशक्ति का अभाव पाया जाता है। वे इस दोष को छिपाने के लिये टिप्पणियाँ लिखवाने के साधन को ग्रहण करते हैं और इस प्रकार पाठ्य-वस्तु की तैयारी करने की उलझन से बच जाते हैं।

(५) **समय की न्यूनता** (Shortage of Time) :—टिप्पणियाँ लिखवाने का एक कारण यह भी है कि शिक्षक के पास समय का

अभाव रहता है। जब कि उसको प्रस्तावित पाठ्य-क्रम इसी निश्चित समय में पूर्ण करना होता है। हमारे शिक्षालयों का पाठ्य-क्रम बहुत विस्तृत है। अध्यापक इसी साधन का सहारा लेकर अर्थात् टिप्पणी लिखाकर पाठ्य-क्रम को थोड़े समय में पूर्ण करता है।

(६) **कार्य की अधिकता** (Excess of Work) :—इतिहास-शिक्षक साधारण रूप से कार्य की अधिकता के कारण परेशान रहता है। उसको एक सप्ताह में कम से कम ३३ समयचक्र (Periods) लेने पड़ते हैं। उसको विज्ञान के अध्यापक की तरह कोई खाली समय-चक्र नहीं मिलता जिससे वह अपने विषय की तैयारी कर सके। इसके अतिरिक्त उसे किसी कक्षा की अँग्रेजी या हिन्दी भले ही पढ़ाने को मिल जाय। इसके साथ ही उसे वे समय-चक्र पढ़ाने के लिये दिये जायँगे जिनमें छात्र थके मिलते हैं अर्थात् गणित, अँग्रेजी के समय-चक्रों के बाद उसको इतिहास का समय-चक्र मिलता है जिसके कारण कभी-कभी उसको बाध्य होकर इस साधन का सहारा लेना पड़ता है।

यद्यपि उपर्युक्त तर्कों में पर्याप्त सार है परन्तु इस प्रथा के अनेक अवांछनीय परिणाम हैं जिनसे अवगत होना आवश्यक है। जो बातें अध्यापक छात्रों को लिखाता है उनको वे रट लेते हैं। विषयों के रट लेने का परिणाम यह होता है कि छात्र बुद्धि का प्रयोग किये बिना आँख मूँदकर प्रश्नों का उत्तर लिखते हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि प्रश्नों का उत्तर देने के लिये किन-किन बातों का जानना आवश्यक है। जब परीक्षा में सामान्य उत्तर पूछे जाते हैं तब उनके ये उत्तर ठीक हो जाते हैं, परन्तु उस समय छात्र कुछ नहीं कर पाते जब प्रश्नों के उत्तर देने में बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है, अर्थात् वे स्वयं को उन प्रश्नों के उत्तर देने में असमर्थ पाते हैं जिनमें उन्हें अपनी सामान्य बुद्धि (Intelligence) का उपयोग करना पड़ता है। इन प्रश्नों के उत्तरों में उनके विचार प्रदर्शित नहीं होते हैं वरन् शिक्षक उनके स्थान पर इतिहास-परीक्षा में उत्तर देता है, क्योंकि जो कुछ वे लिखते हैं वे शिक्षक के विचार तथा शब्द होते हैं। इसके अतिरिक्त छात्रों में

कल्पना-शक्ति, स्वावलम्वन, अभिव्यंजनाशक्ति, मौलिकता आदि का विकास नहीं हो पाता।

टिप्पणी लिखाने के दोषों का निराकरण
(Removal of the Defects of Dictating Notes)

(१) अंग्रेजी माध्यम से लिखी हुई पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग न किया जाय यदि प्रादेशिक या मातृभाषा में लिखी अच्छी पाठ्य-पुस्तकें प्राप्त हों। हमारे विचार के अनुसार हिन्दी, मराठी, गुजराती तथा उर्दू में पुस्तकें प्राप्त हैं। दूसरे उन पाठ्य-पुस्तकों को चुना जाय जो अच्छी तथा विस्तृत हों। उनका संगठन काल-क्रम तथा प्रकरणानुसार हो।

(२) यदि अंग्रेजी के माध्यम से लिखी पुस्तकों का प्रयोग करना चाहते हो तो उन पुस्तकों का चयन किया जाय जो कि सरल तथा रोचक ढंग से लिखी हुई हों।

उदाहरणार्थ—'हिस्ट्री ऑफ इंडिया' (History of India) by श्री निवास आयंगर, 'ए जूनियर हिस्ट्री ऑफ इंडिया' ('A Junior History of India') by आर० डी० बनर्जी।

(३) यदि शिक्षण के लिये अंग्रेजी माध्यम हो तो शिक्षक को हिन्दी भाषा का प्रयोग करने में हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिये, क्योंकि शिक्षक का उद्देश्य इतिहास पढ़ाना है न कि अंग्रेजी का पाठ।

(४) टिप्पणियाँ लिखाने की आवश्यकता को दूर करने के लिये यह अत्यन्त हितकारी होगा कि कक्षा में श्यामपट पर संक्षिप्त सारांश दिये जायँ। ये सारांश आवृत्ति तथा परीक्षा की तैयारी के लिये अत्यन्त हितकारी सिद्ध होंगे। अध्यापक सारांश देते समय निम्न-लिखित बातों का ध्यान रखें—

(अ) सारांश कतिपय शब्दों में दिया जाय और इनको छात्रों से पुस्तिका के बाँये पृष्ठ पर लिखाये। इनको बायें पृष्ठ पर लिखना

इसलिये हितकारी है कि इनको दाँये पृष्ठ पर विकसित कराया जा सकता है।

(ब) इन कतिपय शब्दों या बिन्दुओं को घर से विकसित कराया जाय। इस प्रकार गृहकार्य की समस्या सुलझ जायेगी।

(स) इनके द्वारा पाठ्य-पुस्तक को न हटाया जाय अर्थात् पाठ्य-पुस्तक के अध्ययन की उपेक्षा न की जाय, वरन् उनका अध्ययन इनके साथ-साथ किया जाना चाहिये।

(५) छात्रों को स्वतः मुख्य बातें लिखने के लिये प्रोत्साहन देना चाहिये। उनको पुस्तकों पर, जिनको वे पढ़ते हैं और जिनको वे सुनते हैं, छोटी-छोटी टिप्पणियाँ लिखनी चाहिये। इसके अतिरिक्त शिक्षक को चाहिये कि वह छात्रों को प्रकरणों, अध्यायों या पाठ का सारांश लिखने के लिये कहे। इसके लिये वह उनके सम्मुख ऐसा करके दिखावे। जब वे ऐसा करने में समर्थ हो जावेंगे तो फिर उनको अपने अध्यापक के व्याख्यान का सारांश लेखबद्ध करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। इससे वे मनन तथा तर्क करना सीख जायेंगे।

(६) अध्यापक को कक्षा में विशद् टिप्पणियाँ नहीं देनी चाहिये, वरन् वह गृहकार्य के रूप में आलोचनात्मक निबन्ध लिखने के लिये दे। इससे छात्रों में अपने विचार प्रकट करने की क्षमता आ जायेगी और वह स्वतः प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ होगा। इनको अध्यापक यदाकदा देखता रहे और छात्रों को सुधार के लिये सुझाव देता रहे।

(७) कुछ विद्वानों का विचार है कि जब तक परीक्षा-प्रणाली में सुधार नहीं किया जायगा तब तक शिक्षक इस प्रथा को छोड़ने में असमर्थ रहेंगे, क्योंकि उनकी जीविका इस परीक्षा के फल पर निर्भर रहती है। परीक्षा-प्रणाली के सुधारों के विषय में अन्य स्थान पर वर्णन किया गया है। परन्तु परीक्षा-प्रणाली और प्रश्नपत्रों की परम्परा दोषपूर्ण होने पर भी शिक्षक छात्रों को सद्भावना के साथ परीक्षा के लिये उद्यत कर सकता है। हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि अध्यापक

सच्चाई के साथ कार्य नही करते, वरन् हमारा मन्तव्य यह है कि बहुत से अध्यापक प्रशिक्षण-विद्यालयों में सीखते हैं तो उनको उनका प्रयोग करने के लिये साधन तथा सुविधाएँ प्राप्त नहीं हो पातीं और उनको भी उसी परम्परा को अपनाने के लिये बाध्य होना पड़ता है। अतः निरीक्षकों, प्रबन्धकों तथा सरकार के ऊपर इस बात का उत्तरदायित्व है कि वे शिक्षकों को वे समस्त सुविधाएँ प्रदान करें जिनके द्वारा इन दोषों को दूर किया जा सके।

अन्त में, हम कह सकते हैं कि इतिहास-शिक्षण के अन्य साधनों की भाँति यह भी एक साधन है। इसके द्वारा छात्रों में तर्कशक्ति, मनन तथा विचार प्रकट करने की शक्तियों को विकसित किया जा सकता है। यदि इस साधन को साध्य मान लिया जाय जैसा कि इस समय हमारे शिक्षालयों में हो रहा है तो इसके बहुत दुष्परिणाम निकलेंगे, जिनके विषय में हम ऊपर देख चुके हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि टिप्पणियाँ लिखने तथा लिखवाने को साधन के रूप में इतिहास-शिक्षण के लिये ग्रहण किया जाय न कि साध्य के रूप में।

प्रश्न

१—हमारे शिक्षालयों मे प्रचलित टिप्पणियाँ लिखाने के प्रकारों को बताइये तथा इनके दोषों पर दृष्टिपात कीजिये।

(What are the types of dictating Notes which are prevailing in our Schools and give their defects.)

२—टिप्पणियाँ लिखवाने के कारणों पर प्रकाश डालिये तथा यह भी बताइये कि इनके दोषों को किस प्रकार दूर किया जा सकता है।

(What are the causes of dictating Notes ? Give the Suggestions for the removal of defects of dictating Notes.)

अध्याय—१०

इतिहास कक्ष तथा उसकी आवश्यकता
(History-Room and Its Necessity)

इतिहास-कक्ष की क्यों आवश्यकता है ऐसा प्रश्न बहुत से प्रधानाध्यापकों के द्वारा कभी-कभी पूछा जाता है। वे लोग बड़े आश्चर्य में पड़ जाते हैं जब उनसे ऐसा ही प्रश्न किया जाता है कि "विज्ञान के लिये प्रयोगशाला की क्यों आवश्यकता है।" यह मान लिया गया है कि इतिहास का अध्यापक एक वैज्ञानिक विषय का शिक्षण करता है, क्योंकि इतिहास एक विज्ञान है, इसलिये इतिहास के लिये विशेष-कक्ष की आवश्यकता है। दूसरे, विशेष-कक्ष अपना महत्व रखता है, वह एक विशेष प्रकार का वातावरण उत्पन्न करता है जो कि प्रभावशाली तथा कुशल शिक्षण के लिये अति आवश्यक है। इतिहास का शिक्षण इतिहास-कक्ष की अनुपस्थिति में प्रभावशाली नहीं हो सकता है। आज का इतिहास-शिक्षण प्रयोगों के द्वारा तथा सूत्र-पद्धति के द्वारा किया जाता है जिसके लिये इतिहास-कक्ष की नितान्त आवश्यकता है।

इतिहास का विशेष-कक्ष आमोद-प्रमोद की वस्तु नहीं, वरन् इति-

हास-विज्ञान के समुचित और प्रभावोत्पादक अध्यापन के लिये नितान्त आवश्यक है। जिस प्रकार साधारण कक्ष में व्यावहारिक रसायनशास्त्र के अध्यापन की कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार इतिहास भी साधारण कक्ष में पढ़ाया नहीं जा सकता। पूर्णतया सुसज्जित कमरे के अभाव में आवश्यक ऐतिहासिक सामग्री को एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जाना पड़ता है और बार-बार सामग्री को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने तथा वापस ले जाने में टूटने की सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी अध्यापक को घंटा प्रारम्भ होने के पूर्व आवश्यक सामग्री को ढूँढ़कर पृथक रख लेने का या तो अवकाश नहीं मिलता अथवा ऐसा करने की उसकी इच्छा ही नहीं होती। ऐसी दशा में इतिहास का पाठ पूरे समय तक अथवा घंटे के पूर्व भाग में बिना उपयुक्त सामग्री के चला करता है। यदि इतिहास के शिक्षक में अपने कार्य के लिये पूरा जोश है और अपने कर्तव्य का पूर्ण ध्यान रखकर वह अपने साथ आवश्यक सामग्री ले जाने का कष्ट भी उठाता है तो भी अधिक सम्भावना इस बात की है कि साधारण कमरों में न तो छात्र ही ठीक रीति से मानचित्र या प्रतिरूप बना सकेंगे और न शिक्षक ही अपने साथ में लाई हुई पाठ से सम्बन्धित सामग्री को समुचित ढंग से प्रस्तुत कर सकेगा।

इतिहास-कक्ष इतिहास-शिक्षण के लिये अनुकूल वातावरण पैदा करता है और छात्रों की कल्पना-शक्ति को प्रखर बनाता है। मान-चित्रों, चित्रों, प्रतिरूपों तथा अन्य सामग्री को एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जाने में जो समय का अपव्यय और टूट-फूट होती है, उसकी बचत होती है। साथ ही छात्र अनायास ही बहुत सी वस्तुओं से परि-चित हो जाते हैं। वस्तुतः इतिहास के छात्रों के लिये इतिहास का कक्ष एक प्रकार की प्रयोगशाला है। इतिहास-कक्ष होने से छात्रों में विषय के प्रति आदर की भावना उत्पन्न की जा सकती है और शिक्षक विषय को सतर्कता के साथ समझेगा तथा इसके द्वारा छात्रों में ऐति-हासिक रुचि उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त कर सकेगा।

अब हमें इतिहास के कक्ष के विषय में कतिपय सामान्य प्रश्नों पर विचार करना है। जैसे, इतिहास का कक्ष कितना बड़ा होना चाहिये ? कमरे में प्रकाश का क्या प्रबन्ध होना चाहिये ? छात्रों के लिये मेजें होनी चाहिये ! इन मेजों को कक्ष में किस ढंग से लगाना चाहिये ? इतिहास के कमरे की क्या आवश्यकताएँ हैं और उसको किस प्रकार व्यवस्थित तथा अलंकृत रखना चाहिये ? किन्तु हमारे मन्तव्य की सिद्धि केवल प्रश्नों से ही नहीं हो सकती। इसके लिये हमें इन प्रश्नों के उत्तर भी ढूँढ़ने पड़ेंगे। प्रथमतः इतिहास का कक्ष ऐसा होना चाहिये कि वह हमारी दो प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके अर्थात् वह कक्ष और प्रयोगशाला दोनों के लिये अनुकूल हो।

इतिहास कक्ष (History-Room)—कमरे के आकार का निर्धारण अंशतः छात्रों की संख्या से, जो उसमें एक साथ बैठकर पढ़ते हैं और अंशतः स्थान द्वारा, जो विभिन्न प्रकार की इतिहास सम्बन्धी सामग्री को यथास्थान पर रखने के लिये आवश्यक होता है, किया जाता है। कक्ष के स्वरूप का निर्धारण प्रमुखतः उस ढंग से किया जाता है जिसमें छात्रों की निश्चित संख्या सर्वोत्तम रीति से कक्षा-सम्बन्धी तथा व्यावहारिक कार्य के लिये बिठलाई जाती है। वस्तुतः यह कक्ष बड़े आकार का होना चाहिये। इसके न केवल फर्श का क्षेत्रफल ही अधिक होना चाहिये वरन् इसकी ऊँचाई भी पर्याप्त होनी चाहिये। साधारण कक्ष की सामग्री के साथ-साथ इस कक्ष में निम्नलिखित वस्तुओं की भी व्यवस्था होनी चाहिये—

(१) **प्रायोगिक कार्य के लिए मेजें** (Tables for Practical Work):– कक्ष के एक सिरे पर इन मेजों को रखा जाय जहाँ पर छात्र अपना प्रायोगिक कार्य कर सकें, उदाहरणार्थ चित्रों के बनाने का कार्य तथा मॉडल निर्माण करने का कार्य।

(२) **श्याम पट** (Blackboard)—१०′ × ४′ के आकार का एक श्यामपट होना चाहिए। यह दो या तीन भागों में विभाजित होना चाहिए। एक विभाग में भारत के मानचित्र का ढाँचा होना चाहिये।

श्यामपट के ऊपर राष्ट्रीय इतिहास की सूची (Chart) रहेगी जिसमें समय की मोटी रेखा के नीचे विभिन्न वंशों की रेखाएं तथा नाम होंगे, उनके प्रसिद्ध व्यक्तियों के नाम भी होंगे। समय की रेखा के ऊपर मुख्य घटनाओं का काल क्रमानुसार उल्लेख होगा।

(३) **अलमारियाँ** (Almirahs)—यह अत्युत्तम होगा यदि दीवार की अलमारियाँ हों, इससे स्थान की बचत होगी। इनकी लम्बाई तथा चौड़ाई पर्याप्त होनी चाहिये जिनमें इतिहास की वे पुस्तकें रखी जा सकें जो प्रत्यक्ष रूप से छात्रों के प्रयोजन की हों।

(४) **शो-केस** (Show-case)—यदि इतिहास-कक्ष ऐतिहासिक वातावरण उत्पन्न करना चाहता है तो उसके लिये शोकेस की अति आवश्यकता है। दीवार के किनारे-किनारे एक शीशे का शो-केस होना चाहिये जिसमें प्रतिरूप, सिक्के, मूर्तियाँ और ऐतिहासिक अवशेष रखे जायेंगे।

(५) इतिहास-कक्ष में रेडियो (Radio) के लिये भी स्थान होना चाहिये।

(६) पिछली दीवार के पास मैजिक लालटेन अथवा चित्र प्रसारक यंत्र (Projector) लगा रहेगा और उसके ठीक सामने चित्र दिखाने के लिये पर्दा (Screen) होना चाहिए। कमरे के सभी दरवाजों पर काले पर्दों का प्रबन्ध भी आवश्यक है।

(७) पिछली दीवार पर अथवा बाहर एक श्यामपट पर ऐतिहासिक लेख और चित्र चिपकाये जावेंगे, जिन्हें विद्यार्थी पत्र-पत्रिकाओं से काटकर लावेंगे, अथवा स्वयं तैयार करेंगे।

(८) इनके अतिरिक्त इतिहास-कक्ष में सूचियों (Charts) तथा चित्रों का संकलन होना चाहिये। सुन्दर-चित्रों को मढ़ाकर कक्षा में टांगा जाना चाहिये। बगल की एक दीवार पर ऐतिहासिक व्यक्तियों के चित्र होंगे और दूसरी दीवार पर इमारतों और मूर्तियों के चित्र होंगे। परन्तु ये सब काल-क्रमानुसार टाँगे जायेंगे। इनके नीचे नक्शे, युद्ध-मार्ग, युद्ध-योजना आदि के चार्ट होंगे। परन्तु समय-समय पर

चित्र बदले जाने चाहिये। वर्षों तक दीवार पर एक ही चित्र लगे रहने से जिज्ञासा नष्ट हो जायगी। इतिहास-कक्ष में चित्रों के अतिरिक्त समय-सूची (Time-chart) भी होने चाहिये, जिनके द्वारा समय का अनुभव किया जा सके और राज्यों तथा वंशों के उत्थान और पतन का ज्ञान कराया जा सके। प्रो० हस्लक (Husluck) ने दीवारों के मानचित्रों पर अत्यधिक बल दिया है।

(६) **काल-रेखाओं का संकलन** (Selection of Time-lines) :— वर्त्तमान तथा प्राचीन काल की प्रगति तथा अवनति को भी रेखाओं द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। विभिन्न काल के महापुरुषों के काल का अन्तर, विभिन्न देशों की सभ्यता, आर्थिक उन्नति-अवनति का स्पष्टीकरण इन काल-रेखाओं द्वारा किया जाय और इतिहास-कक्ष में इनका होना आवश्यक है।

इनके अतिरिक्त कतिपय अन्य वस्तुओं का भी संकलन कक्ष के लिये अनिवार्य है। पुराने समय की नकल के नमूने, ऐतिहासिक पत्र-पत्रिकाएँ आदि भी कक्ष में होनी चाहिये। इतिहास-कक्ष में ग्लोब का होना अत्यावश्यक है। यह सब कार्य एक या दो वर्ष में पूर्ण नहीं किये जा सकते हैं। इतिहास-अध्यापक को अपने कक्ष को उपयोगी बनाने के लिये निरन्तर कार्य करना पड़ेगा। अध्यापक को सतर्क रहना चाहिये कि संग्रहों में वह इतना उत्साह न दिखलावे कि कहीं उसका इतिहास-कक्ष एक वस्तु-संग्रहालय बन जाय। इतिहास-कक्ष वैज्ञानिक विषयों की प्रयोगशाला के समान ही एक प्रयोगशाला है। इस प्रयोगशाला में वे ही वस्तुएँ होनी चाहिये जिनका छात्र उपयोग कर सकें और उनकी क्रियाशीलता में सहायक हो सकें। इतिहास-कक्ष छात्रों की जिज्ञासा-पूर्ति तथा ज्ञान-वृद्धि के लिये प्रयोगशाला है। वहाँ उनको सब वस्तुओं के प्रयोग करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये।

इतिहास पुस्तकालय (History Library)

विद्यालय में पुस्तकालय का विशेष महत्त्व है। पुस्तकालय एक

ऐसा स्थान है जहाँ पर बैठकर पुस्तकों व पत्रिकाओं का अध्ययन कर बालक उन प्रवृत्तियों को ग्रहण करते हैं, जिनके द्वारा कक्षा के बाहर के शिक्षालय के जीवन में उन्हें प्रेरणा मिलती है। पुस्तकालय केवल शिक्षण के कार्य की पूर्ति ही नहीं करता है, वरन् बालकों को पुस्तकों का उचित उपयोग करना, स्वाध्ययन करना, अपने मस्तिष्क को अधिक विकसित करना तथा अपने सामान्य ज्ञान के भण्डार में वृद्धि करना सिखाता है। पुस्तकालय सामूहिक शिक्षण के दोषों का निवारण करता है।

भारतोय शिक्षालयों के पुस्तकालयों की दशा शोचनीय है। मुदालियर-आयोग का विचार है कि ऐसे अनेक शिक्षालय हैं जहाँ पुस्तकालयों की कोई व्यवस्था ही नहीं है और जहाँ-कहीं पर उनकी व्यवस्था है वहाँ अधिकतर पुस्तकें ऐसी हैं जिन्हें पुस्तकालय से निकाल देना अधिक अच्छा होगा बजाय इसके कि वे पुस्तकालयों की अलमारियों में स्थान घेरे रहें और धूल इकट्ठी करती रहें। एक विद्वान् ने तो यहाँ तक कहा है कि भारतीय माध्यमिक पुस्तकालयों का एक बहुत बड़ा भाग होलिका के योग्य है, अर्थात् उसे प्रसन्नता के साथ अग्नि को समर्पण कर दिया जावे। हमारा यहाँ तात्पर्य शिक्षालय के पुस्तकालय के पूर्ण विवरण से नहीं है। आज का युग विशेष-विषयों के पुस्तकालयों पर अधिक बल दे रहा है। साधारण पुस्तकालय (Journal Library) के अतिरिक्त विषय-विशेष के पुस्तकालय भी होने चाहिये। उच्च-कक्षाओं में विषय-पुस्तकालयों (Subject Libraries) से अनेक लाभ हैं। प्रत्येक विषय-अध्यापक के पास अपने विषय की उपयोगी पुस्तकें हों और वह उनमें नवीन साहित्य की वृद्धि करता रहे।

इतिहास का एक अलग पुस्तकालय होना आवश्यक है जिससे कि छात्रों में स्वतन्त्र रूप से ऐतिहासिक साहित्य पढ़ने की प्रवृत्ति पड़े। इतिहास को ठीक प्रकार से समझने के लिये तथा उसमें रुचि उत्पन्न करने के लिये पाठ्य-पुस्तक के अतिरिक्त सहायक-पुस्तकों को पढ़ने

की आदत डालनी चाहिये। पुस्तकालय इतिहास-कक्ष में रक्खा जा सकता है। परन्तु हमारे विचार में इतिहास की पुस्तकों को इतिहास-कक्ष में नहीं रक्खा जाना चाहिये, वरन् इसके लिए एक कक्ष अलग हो। इसका कारण है कि इतिहास का अपना एक साहित्य है जो प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। इस साहित्य को इस प्रकार रखना चाहिये जिससे छात्र इससे अधिकाधिक लाभ उठा सकें। इतिहास की पुस्तकें, चित्र, मानचित्र, पत्र-पत्रिकाएँ, जनरल, (Journals), पीरियोडिकल (Periodicals) ऐसी वस्तुएँ हैं जो बालकों को सरलता से उपलब्ध हो सकें जिससे उनमें पढ़ने की रुचि उत्पन्न हो। इसके अतिरिक्त इतिहास के शिक्षक को इतिहास के पुस्तकालय को दो विभागों में विभाजित करना चाहिये एक विभाग में वे पुस्तकें होनी चाहिये जो शिक्षक के लिये उपयोगी तथा आवश्यक हैं। दूसरे भाग में बालकों की रुचि, आवश्यकता तथा योग्यता के अनुसार पुस्तकें होनी चाहिये।

इसमें कोई सन्देह नही कि इतिहास-पुस्तकालय अच्छी ऐतिहासिक रचनाओं को रखे। परन्तु कक्षा-शिक्षण के लिये समस्त ऐतिहासिक रचनाएँ आवश्यक नहीं हैं। शिक्षक के पुस्तकालय में उन समस्त रचनाओं का संग्रह होना चाहिये जिनको जानना शिक्षक के लिये आवश्यक है। ये सब रचनाएँ प्रसिद्ध लेखकों, जैसे सर जदुनाथ सरकार, डा० भाण्डारकर, डा० ईश्वरी प्रसाद आदि, के द्वारा लिखी हुई होनी चाहिये, जिन्होंने ऐतिहासिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। शिक्षक अपने पुस्तकालय में सूत्रों तथा निर्देश-पुस्तकों (Reference Books) को अवश्य रखे। इसके अतिरिक्त इसमें इतिहास-शिक्षण पर भी पुस्तकें होनी चाहिये।

छात्रों का पुस्तकालय उनकी रुचि तथा योग्यतानुसार पुस्तकों का संकलन करे। पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त सामान्य अध्ययन के लिये भी पुस्तकें होनी चाहिये। उच्च-कक्षा तथा योग्य छात्रों के लिये कुछ सूत्रों का होना भी आवश्यक है। पाठ्य-पुस्तकें तथा सामान्य पुस्तकें प्रादेशिक या मातृभाषा में लिखी हुई होनी चाहिये। इस पुस्तकालय

में अभिनयात्मक ढंग से लिखी हुई कुछ पुस्तकें भारतीय इतिहास, तथा विश्व-इतिहास के कुछ प्रकरणों पर होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त कुछ पुस्तकें आत्मकथाओं पर भी रक्खे।

पाश्चात्य देशों में शिक्षा की उन्नतिशील पाठन विधियों में वस्तु-संग्रहालय को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यह बीसवीं शताब्दी की देन है। मुदालियर-आयोग ने भी भारतीय शिक्षालयों के लिये वस्तु-संग्रहालय स्थापित करने के लिये संस्तुति की है। उसके अनुसार प्रत्येक राज्य में राज्य द्वारा एक वस्तु-संग्रहालय स्थापित किया जाय और विभिन्न जिलों में छोटे-छोटे वस्तु-संग्रहालय स्थापित किये जायँ। उसने माध्यमिक विद्यालयों को भी इनकी स्थापना करने के लिये कहा है। परन्तु उसने इनके स्थापन के लिये एक सुझाव यह दिया है कि प्रत्येक शिक्षालय के लिये इनको स्थापना करना सम्भव नहीं है इसलिये कई शिक्षालय मिलकर इनकी स्थापना कर सकते हैं। वस्तु-संग्रहालय इतिहास के लिये अति उपयोगी हैं। इसमें विभिन्न सम्राटों के सिक्के, मुहर, हथियार, औजार, खोजों के द्वारा प्राप्त हुई वस्तुएँ संग्रह करके रखी जायँ। इसके अतिरिक्त उनमें एक चित्र-प्रसारक यंत्र होना चाहिये और केन्द्रीय तथा राज्य की सरकारों से ऐतिहासिक फिल्म लेकर विद्यार्थियों को दिखायी जायँ। इतिहास के शिक्षण में वस्तु-संग्रहालय अपनी एक विशेष महत्ता रखता है। प्रत्येक विद्यालय को एक छोटा सा वस्तु-संग्रहालय स्थापित करना चाहिये जिससे इतिहास के शिक्षण को सफल बनाया जा सके तथा छात्रों के सम्मुख भूत को वर्तमान में प्रस्तुत किया जा सके।

प्रश्न

१—आप माध्यमिक विद्यालय में इतिहास-कक्ष किस प्रकार संगठित तथा अलंकृत करोगे ?
(How would you proceed to equip a history-room in a High School ?) (B. T. 1957)

२—"इतिहास की प्रयोगशाला इतिहास के अध्ययन के लिये रुचि तथा महत्ता प्रदान करती है।" आप इस प्रकार की प्रयोगशाला को किस प्रकार अलंकृत करोगे।

(Historical laboratory gives added charm and dignity to historical study." Explain how you would equip such a laboratory.)

(B. T. 1958)

३—इतिहास-कक्ष पृथक रूप से विद्यालय में क्यों रखा जाता है ?

(What is the necessity of existing History-Room separately in the School.)

४—इतिहास-पुस्तकालय के अंगों तथा उसकी महत्ता पर प्रकाश डालिये।

(Discuss the importance and parts of History-Library.)

५—आप एक उच्चतर माध्यमिक शिक्षालय में इतिहास-कक्ष तथा वस्तु-संग्रहालय किस प्रकार अलंकृत करोगे ?

(How would you equip the History-Room and Museum of a Higher Secondary School ?)

(B. T. 1960)

अध्याय—११

इतिहास-शिक्षक (History Teacher)

इतिहास के अध्यापक में हम किसी महान् गुण की कल्पना नहीं करते। उसे न विश्व-कोष ही समझते हैं वरन् उससे हम इतना चाहते हैं कि वह अपने विषय का पूर्ण ज्ञान रखे। जो गुण अन्य विषयों के अध्यापकों में होते हैं उन गुणों का इतिहास के अध्यापक में होना आवश्यक है। इनके अतिरिक्त वह निम्नलिखित गुणों को भी अपने में उत्पन्न करने का प्रयत्न करे :—

(१) **विषय में निष्ठा** (Faith in the Subject) :—प्रत्येक विषय के अध्यापक को अपने विषय में निष्ठा रखना आवश्यक है। जो अध्यापक अपने विषय में निष्ठा नहीं रखता है वह अध्यापक कहलाने योग्य नहीं है, अर्थात् उसको एक सफल शिक्षक नहीं कहा जा सकता है। निष्ठा सीखने की क्रिया (Learning Process) को प्रोत्साहित करती है तथा विषय में सदैव के लिये रुचि उत्पन्न करती है। इतिहास का अध्यापक निष्ठा के बिना भूतकाल के महत्त्व को नहीं समझ सकता है। निष्ठा अन्ध-विश्वास से पूर्ण तथा तर्क रहित नहीं होनी

चाहिये क्योंकि इससे वैज्ञानिक तथा विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का विकास नहीं होगा, जिसको उत्पन्न करना इतिहास के शिक्षक का मुख्य उद्देश्य है।

(२) **विषय का ज्ञान** (Knowledge of the Subject) :—इतिहास के शिक्षक से जिस बात की अपेक्षा की जाती है, वह है इतिहास का ज्ञान। प्रत्येक शिक्षक को स्वस्थ्य-शरीर, स्वस्थ-चित्त तथा व्यक्तित्व के साथ ही विषय का भी पूर्ण ज्ञान रखना चाहिये। विषय का अपूर्ण ज्ञान सदैव हानिकारक होता है। प्रत्येक इतिहास के शिक्षक को प्रथम कोटि का विद्यार्थी होना चाहिए। अनेक बातों की केवल सूचना रखने वाला व्यक्ति इतिहास का शिक्षक नहीं हो सकता है। ज्ञान को सूचना से स्पष्टतया भिन्न प्रदर्शित कर देना चाहिये। वेदों के अनुसार, 'ज्ञान तथा क्रिया का संयोग एक मनुष्य को प्रकाश प्रदान करता है'। ज्ञान सूचना से अधिक विस्तृत है। एक विद्वान के अनुसार ज्ञान एक बहुत बड़ा संश्लेषण है। ज्ञान के लिये सूचना तथा अन्य बातों की आवश्यकता होती है। सूचना (Information) ज्ञान का एक अंग है। इतिहास के ज्ञान से हमारा तात्पर्य यह है कि जिस व्यक्ति को इतिहास का ज्ञान हो वह उसके काल-क्रम का भी ज्ञान रखता हो। उसे इतिहास के विषय में अनेक सूचनाएँ तो अवश्य ही प्राप्त हों, साथ में वह उनका महत्त्व, सीमाएँ तथा उपयोगिता भी जानता हो, अर्थात् वह कब, कैसे, क्यों तथा क्या का उत्तर देने की सामर्थ्य रखता हो। इतिहास एक घटना है, तो इतिहास के शिक्षक के लिये यह जानना अति आवश्यक है कि यह घटना कब, कैसे और क्यों घटित हुई। इसके अतिरिक्त उसे इन तथ्यों को प्रस्तुत करने का भी ज्ञान होना चाहिये। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि शिक्षक विश्व-कोष नहीं हो सकता परन्तु वह मानव-इतिहास के किसी काल पर विशेष योग्यता प्राप्त करे।

(३) **विश्व-इतिहास का ज्ञान** (Knowledge of World History) - हमें इस बात की आवश्यकता नहीं कि वह विश्व-इतिहास का पारंगत पंडित हो, वरन् उसको विश्व-इतिहास का ज्ञान हो जिससे वह अपने

कार्य को सुचारु रूप से चला सके। यदि वह मानव-जाति के पूर्ण इतिहास का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता है तो वह उससे एक काल का पूर्ण ज्ञान अवश्य प्राप्त करे जिससे वह इतिहास के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने के लिये बच्चों की बुद्धि को ठीक मार्ग पर लगा सके। भारत के राज्यों की शिक्षा पद्धति में विश्व-इतिहास को पहले महत्त्व नहीं दिया गया था परन्तु धीरे-धीरे सभी राज्य अपने पाठ्य-क्रम में विश्व-इतिहास का प्रारम्भिक ज्ञान सम्मिलित कर रहे हैं। इसके लिये यह अति आवश्यक है कि इतिहास के अध्यापक को विश्व-इतिहास का ज्ञान अवश्य प्राप्त हो। किसी भी देश की संस्कृति का विकास स्वतंत्र रूप से नहीं हो सकता है। बहुत से मनुष्यों की धारणा है कि भारतीय संस्कृति का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ था। उस पर किसी देश की संस्कृति का प्रभाव नहीं पड़ा है। विश्व के इतिहास का ज्ञान इस भ्रम को दूर करने के लिये तथा वसुधैव कुटम्बकम् की भावना उत्पन्न करने के लिये अति आवश्यक है। इसके ज्ञान से अध्यापक छात्रों में विश्व-बन्धुत्व की भावना उत्पन्न करने में सफल हो सकेगा।

(४) **निष्पक्षता तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण** (Impartiality and Scientific Outlook) :—इतिहास एक विज्ञान है, इसलिये इतिहास के शिक्षक में वैज्ञानिक दृष्टिकोण होना चाहिये। वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा निष्पक्षता ही उसको दूसरे सामाजिक विषयों के शिक्षकों से अलग करती है। एक वैज्ञानिक के रूप में इतिहास का शिक्षक सत्या-सत्य की खोज से सम्बन्धित है। उसको पक्षपात तथा हठधर्मी से पृथक रहना चाहिये। उसमें संकुचित राष्ट्रीय भावनाओं का समावेश न होने पावे। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अपने को इनसे पृथक रखे, वरन् वह सदैव एक तीसरे व्यक्ति का-सा कार्य करे। किसी सिद्धान्त अथवा घटना के प्रतिपादन के अवसर पर उसे दोनों पक्षों पर शान्तिपूर्वक विचार करना चाहिये। इसके पश्चात् उनके महत्त्व तथा सीमाओं पर विचार करे। जिस समय अध्यापक अपनी जाति तथा

धर्म के विषय में वर्णन कर रहा हो उस समय उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह अन्य जातियों या धर्मवालों को हेय न समझे, क्योंकि प्रत्येक वस्तु में गुण-दोष हुआ करते हैं। अतः वह निष्पक्ष भाव से उनकी विवेचना करे और सत्य की खोज करके छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करे। कुछ विद्वानों का विचार है कि ऐसी परिस्थितियों में उसको सत्य का कथन भी संयत रूप में ही करना चाहिये और वह छात्रों तथा स्वयं अपने में तटस्थ रहने की प्रवृत्ति उत्पन्न करे। उसे तटस्थ व्यक्ति के समान अपना मत व्यक्त करना चाहिये।

(५) **प्रान्तीय इतिहास का ज्ञान** (Knowledge of Provincial History) :— इतिहास के योग्य शिक्षक के लिये यह भी अनिवार्य है कि वह प्रान्तीय इतिहास के तथ्यों को भली प्रकार जानता हो, जिससे वह सतर्कता के साथ उनको अपने छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत कर सके। भारतवर्ष का प्रत्येक प्रान्त अपना-अपना इतिहास रखता है, उदाहरणार्थ गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, बंगाल आदि। इतिहास का शिक्षक इनका पृथक-पृथक वर्णन न करे वरन् इनके इतिहास का वर्णन राष्ट्र के इतिहास के लिये उपयोगी बनाकर करे। इन्होंने राष्ट्र की उन्नति के लिये क्या-क्या देन प्रदान की हैं। संकुचित प्रान्तीय भावनाएँ राष्ट्र की उन्नति के लिये हानिकारक सिद्ध होंगी, इसलिये इतिहास के योग्य अध्यापक के लिये यह आवश्यक है कि वह इनके इतिहास को इस प्रकार छात्रों के सम्मुख रखे जिससे उनको अपने प्रान्त के इतिहास का ज्ञान हो जाय और राष्ट्रीय हित को कोई हानि न पहुँचे।

(६) **कथा-वाचक** (Story-Teller) :—इतिहास के अध्यापक को एक कुशल कथा-वाचक भी होना चाहिये। कहानी-कहना एक कला है। कला ईश्वरीय देन है, लेकिन कुछ कलाएँ अभ्यास के द्वारा ग्रहण की जा सकती हैं। कहानी-कहने की कला को ग्रहण करने के लिये अहम् की भावना को दबाना चाहिये। इतिहास के अध्यापक को कहानी कहते समय अपने पद का ध्यान नहीं करना चाहिये वरन् वह

विद्यार्थियों के साथ मिलकर अपने पद का ध्यान किये बिना कहानी सुनाता रहे। इतिहास के अध्यापक को कुशल कथा-वाचक बनने के लिए अधोलिखित गुणों को ग्रहण करना चाहिये :—

(अ) नाटक के पात्र के गुण;

(ब) अच्छी तथा उपयुक्त कहानियों के चयन का अनुभव;

(स) प्रभावशाली ध्वनि;

(द) आत्म विश्वास;

(य) ऐतिहासिक व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति; तथा

(र) कहानी की पाठ्य-वस्तु का पूर्ण ज्ञान।

(७) **इतिहास-शिक्षण का ज्ञान** (A Knowledge of Teaching History) :—प्राचीन काल में शिक्षकों के प्रशिक्षण को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता था। यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उस काल ने भी बहुत ही प्रतिष्ठित शिक्षक उत्पन्न किये, परन्तु वे शिक्षण के कार्य में इतने प्रतिष्ठित नहीं थे। शिक्षण एक कला है। मध्यकालीन विश्वविद्यालयों ने इस कला के सामान्य सिद्धान्तों को निरूपित किया। अध्यापक के लिये इन सिद्धान्तों तथा विधियों को जानना आवश्यक है। विधियाँ उसके साधन हैं जिनके द्वारा वह अपनी पाठ्य-वस्तु को रोचक तथा आकर्षक ढंग से अपने छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकता है। जो जन्मजात शिक्षक नहीं हैं उनके लिये पाठन-विधियों का प्रयोग विशेष लाभदायक है। उनके द्वारा वे अपने शिक्षण को विकसित कर सकते हैं। इनके प्रयोग से शिक्षक अपने कार्य को सरल बना सकता है। पाठन विधियों के ज्ञान से शिक्षक अपने ऐतिहासिक तथ्यों को अपने छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करना सीख जावेगा कि ये तथ्य कब, कैसे और क्यों प्रदान किये जायँ।

ये विधियाँ शिक्षक की पथ-प्रदर्शक तथा साधन होनी चाहिये। विधियाँ उसके लिये हैं न कि वह उनके लिये। विधियाँ उसकी शिक्षक नहीं वरन् उसकी सेवा करने वाली हैं। उसको इनका प्रयोग लोच के साथ करना चाहिये। बहुत से शिक्षक इन विधियों को हेय दृष्टि से

देखते हैं। उनका विचार है कि इनको प्रशिक्षण की समाप्ति के पश्चात् भूल जाना चाहिये। यह उनकी भूल है। ऐसा करना मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के विरुद्ध है, क्योंकि इन विधियों का आधार मनोविज्ञान है। जब हम मनोवैज्ञानिक ढंग से अपने छात्रों को शिक्षा प्रदान करेंगे तभी उनका विकास समुचित रूप से हो पावेगा। बहुत से इतिहास के शिक्षक अधिक तिथियाँ देते हैं। उनको यह मनोवृत्ति समाप्त करनी चाहिये। इन स्तरों पर मुख्य तिथियाँ ही दी जानी चाहिये। बहुत से इतिहास के अध्यापक टिप्पणियाँ लिखाने में ही विश्वास करते हैं यह भी मनोविज्ञान के विरुद्ध है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि इतिहास के अध्यापक को पाठन-विधियों तथा सिद्धान्तों का ज्ञान हो जिससे वह तथ्यों के संघटन तथा चयन को ठीक प्रकार से कर सके और शिक्षण को रोचक बना सके।

(८) **नागरिक शास्त्र का ज्ञान** (Knowledge of Civics)—इतिहास के अध्यापक के लिये यह अति आवश्यक है कि वह नागरिक-शास्त्र का ज्ञान रखे। इस ज्ञान के द्वारा वह अपने छात्रों को समाज के आदर्श नागरिक बनने के लिये प्रोत्साहन दे सकता है अर्थात् उनको आदर्श नागरिक बनाने में सहायता प्रदान कर सकता है। नागरिक शास्त्र राज्य तथा सरकार के संगठन से सम्बन्ध रखता है, परन्तु वह इनको सीमित रूप में ही बताता है। वर्तमान काल भूतकाल की देन है। यदि हम मौर्य काल का स्वायत्त-शासन पढ़ा रहे हैं तो हमको वर्तमान काल के स्वायत्त-शासन का ज्ञान होना आवश्यक है तभी हम अपने छात्रों के साथ न्याय कर सकते हैं। इसलिये इतिहास के अध्यापक को नागरिक-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना नितान्त आवश्यक है।

(९) **प्रचलित घटनाओं से सुपरिचित हो** (Familiarity with the Current Affairs)—एक योग्य इतिहास के शिक्षक को प्रचलित या वर्तमान घटनाओं से अभिज्ञ होना चाहिये। इस अभिज्ञता के निम्नलिखित कारण हैं—

(अ) इन घटनाओं की अभिज्ञता से वह अपने शिक्षण को रोचक तथा प्रभावशाली बना सकता है।

(ब) वह अपने प्रकरण के शिक्षण के लिये प्रभावशाली वातावरण निर्मित कर सकता है।

(स) बहुत-सी वर्तमान घटनाएँ तत्कालीन भूत की देन हैं। इसके द्वारा इतिहास का अध्यापक परावर्तन (Regressive) कर सकता है, और दूर के भूत का पता लगा सकता है। ये वर्तमान की घटनाएँ शिक्षक को प्रस्तावना के लिये पाठ्य-विषय का ज्ञान प्रदान करेंगी।

(द) इन घटनाओं की अभिज्ञता से मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति में विशेष सहायता मिलती है, जिसको प्राप्त करना इतिहास के शिक्षक के लिये आवश्यक है।

(१०) **शिक्षक का व्यक्तित्व** (Personality of the Teacher)—प्रत्येक देश की शिक्षा-पद्धति में शिक्षक का स्थान धुरी (Pivot) के समान है। एक विद्वान का विचार है कि शिक्षक के गुण ही शिक्षा-पद्धति को सफल बनाते हैं न कि पाठ्य-क्रम। शिक्षक के गुण उसकी सफलता के लिये पर्याप्त सीमा तक उत्तरदायी हैं, परन्तु पाठ्य-क्रम भी अपने क्षेत्र में सफलता प्रदान करता है। शिक्षक का स्वर उसका रक्षात्मक शस्त्र है। इसके द्वारा वह अपने व्यक्तित्व को प्रदर्शित कर सकता है। उत्तम व्यक्तित्व आधा शिक्षण है। उसमें मानव के सभी गुण होने चाहिये, जिनके द्वारा वह मानवता की भलाई के लिये कार्य कर सके। इतिहास के अध्यापक के लिये संवेग-सन्तुलन अति आवश्यक है। उसका व्यक्तित्व चुम्बक-शक्ति के समान हो, जिस के द्वारा दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर सके अर्थात् वह सभी मानवीय गुणों का अपने में समावेश करे।

(११) **पर्यटन योग्यता**—बेकन (Bacon) का कहना है कि देशाटन शिक्षा का एक साधन है। पर्यटन (Excursion) से देश-विदेश के मनुष्यो और स्थानो के विषय में गम्भीर अभिज्ञता हो जाती है। इतिहास के शिक्षक को विभिन्न ऐतिहासिक स्थानों को देखना चाहिये ; क्योंकि

बहुत से ऐसे स्थान हैं जहाँ पर छात्रों को भ्रमण करने के लिये नहीं ले जाया जा सकता है। यदि वह उन स्थानों का भ्रमण कर आवेगा तो उनको छात्रों के सम्मुख स्पष्टतम रूप से रखने में सफल होगा तथा छात्रों का भ्रमण में पथ-प्रदर्शन करने में सफल सिद्ध होगा। इसलिये इतिहास के शिक्षक को पर्यटन योग्यता होनी चाहिये।

के० डी० घोष (K. D. Ghosh) के विचार के अनुसार हम अन्त में कह सकते हैं कि जब तक इतिहास का अध्यापक अपने में निम्नलिखित गुणों का समावेश नहीं करेगा तब तक वह सफल अध्यापक नहीं कहा जा सकता है—

(अ) उसमें सत्य की खोज के लिये वास्तविक उत्साह होना चाहिये।

(ब) उसमें ऐतिहासिक व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति हो, तथा

(स) वह मानव-चरित्र तथा उसकी सर्वतोमुखी उन्नति को प्रोत्साहित करने के लिये सतर्क रहे और उसके आदर्श महान् हों।

प्रश्न

१—'आदर्श इतिहास-शिक्षक' पर एक छोटा सा निबन्ध लिखिये।

(Write a short essay on 'an ideal History Teacher'.)

(B. T. 1958)

२—एक इतिहास के अध्यापक में कौन-कौन से गुण होने चाहिये ?

(What should be the qualities of an History Teacher)

अध्याय—१२

इतिहास में समय-ज्ञान (Time-Sense in History)

किसी समय इतिहास-शिक्षरण का उद्देश्य यह था कि बालकों को सन् तथा तिथियाँ मौखिक रूप से स्मरण करा दी जायें। शिक्षा की इस विधि से इतिहास एक नीरस तथा मरणासन्न विषय बन गया। इसलिये छात्रों को इससे कोई रुचि न थी और प्रथम अध्याय में इतिहास की जिन धारणाओं का वर्णन किया गया है उनका आविर्भाव इन्हीं कारणों के फलस्वरूप हुआ। ऐसी ही एक धारणा इस प्रकार है—

हिस्ट्री जॉगरफी बड़ी बेवफा,
रात को याद करो दिन को सफा।

इसके पश्चात् इतिहासकारों ने विचार किया कि सन् तथा तिथियाँ छोड़ दी जायँ। इसका यह फल निकला कि छात्र ऐतिहासिक घटनाओं तथा सनों में कोई सम्बन्ध न स्थापित कर सके। उनके मस्तिष्क से यह बात निकल गई कि मुहम्मद तुगलक ने आज से कितने वर्ष पहले दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाया था; अकबर तथा शाह-

जहाँ का स्वर्ण युग आज से कितने वर्ष पूर्व हुआ था; गौतम बुद्ध ने किस शताब्दी में निर्वाण प्राप्त किया और अपने धर्म की स्थापना की तथा किन-किन राजाओं ने किस-किस काल में इस धर्म को फैलाने में भाग लिया। इसी काल से पहले या पश्चात् कौन-कौन से अन्य आंदोलन प्रारम्भ हुए, जिन्होंने विश्व के एक कोने से दूसरे कोने तक क्रांति उत्पन्न कर दी। यदि हम इन विभिन्न घटनाओं की तिथियों को, जो देश और जाति की संस्कृति तथा समाज की उन्नति का कारण हुईं, अपने मस्तिष्क में न रखें तो हम यह न समझ सकेंगे कि एक घटना से दूसरी घटना और दूसरी से तीसरी में समय के विचार से कितना भेद है। यही नहीं, वरन् उस काल में अन्य राष्ट्रों में जो घटनाएँ घटित हुईं, वे भी न समझ सकेंगे। दूसरे घटनाविहीन तथा जीवनविहीन समय से हमारा कोई अभिप्राय नहीं है। इतिहास की दृष्टि से ऐसे काल का अथवा ऐसे समय का कोई महत्त्व नहीं है जिस काल अथवा समय में कोई विशेष घटना नहीं घटी। इतिहास की दृष्टि से उस काल का ही महत्त्व है जिस काल में सृष्टि के जीव क्रियाशील और सजीव रहे हैं। क्रियाशील और जीवन-युक्त समय का इतिहास हमारे लिये उपयोगी है। इसके साथ ही इतिहास को पूर्णतया समझने के लिये समय का ज्ञान अत्यन्त अनिवार्य है।

समय एक भावना की वस्तु है, जो समझी जा सकती है, और अनुभव की जा सकती है परन्तु वह दृश्यात्मक नहीं है। समय अपनी प्रकृति के अनुसार जटिल तथा कठिन वस्तु है, क्योंकि यह अपने में पूर्ण नहीं है। इसके विषय में हम दूसरी घटनाओं के सम्बन्ध के अभाव में कुछ नहीं कह सकते हैं। भावनात्मक वस्तुओं में बालकों की रुचि कम होती है। उनके सम्मुख क्रियाशीलतापूर्ण तथा जीवित पदार्थों और दृश्यात्मक वस्तुओं के रूप में ज्ञान उपस्थित किया जाना चाहिए तभी वे उसमें रुचि लेंगे। शिक्षक का यह परम कर्त्तव्य है कि वह समय के ज्ञान को छात्रों के समक्ष स्थूल रूप में प्रस्तुत करे जिससे वे उसका ज्ञान सरलता से प्राप्त कर सकें और उस भाव-

युक्त विचार को दृश्यात्मक रूप में ग्रहण कर सकें। समय-ज्ञान को किस प्रकार छात्रों के समक्ष मूर्त्त रूप में रखा जाय इस प्रश्न पर विचार करने से पूर्व यह जानना अति आवश्यक है कि समय-ज्ञान का क्या अर्थ है ?

समय ज्ञान का अर्थ (Meaning of time Sense)

प्रायः छात्र इसे समझने में भूल कर जाते हैं। वे तिथियों, सन्-सम्वतों को स्मरण करना ही समय-ज्ञान मान लेते हैं परन्तु यह ऐसा नहीं है। प्रो० घाटे ने कहा है कि समय-ज्ञान एक वह शक्ति है जिसकी सहायता से हम जीवन और क्रियाशीलता का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु यह तभी संभव हो सकता है जब कि जीवन तथा क्रियाशीलता का संबध घटनाओं से हो। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि समय की तिथियों, सन्-सम्वतों का यही महत्त्व है कि वे महापुरुषों, घटनाओं तथा आन्दोलनों को समझने, क्रम स्थापित करने तथा उनकी प्राचीनता का आभास कराने में हमें सहायता प्रदान करें। उनका सम्बन्ध हमारे समक्ष इस प्रश्न का दूसरा पक्ष प्रस्तुत करता है, वह यह है कि समय ज्ञान के बनाने वाले मुख्य तत्त्व कौन-कौन से हैं। इस प्रश्न का उत्तर निम्न पृष्ठों में दिया जायगा। इतिहास-शिक्षण का एक मुख्य उद्देश्य यह है कि वह छात्रों में समय-ज्ञान विकसित करे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि छात्र शिक्षालय में प्रवेश करने से पूर्व समय का सम्बन्ध वस्तुओं के साथ स्थापित करना जान जाता है, उदाहरणार्थ— कल ४ बजे हमने हॉकी का मैच देखा था और हमारे यहाँ आज दो बजे सोशलिस्ट पार्टी के नेता का भाषण है। परन्तु यह विचार तथा ज्ञान पूर्णतया संगठित नहीं हो पाता है। अतः इतिहास के अध्यापक का परम कर्त्तव्य है कि वह उनके समय-ज्ञान को विकसित करके संगठित करे, जिससे उसका इतिहास-शिक्षण उपयोगी, रोचक तथा सजीव बन जाये। इस कार्य के लियें उसे चार बातों का जानना अति आवश्यक है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि समय पूर्ण नहीं है। यह सम्बन्धात्मक है जो कि विभिन्न वस्तुओं, घटनाओं तथा

महापुरुषों से सम्बन्धित है। इस संबंध को समझने के लिये उसके तत्वों का ज्ञान आवश्यक है। वे इस प्रकार हैं—

(१) स्थापन (Location)
(२) समय की दूरी (Distance)
(३) समय की अवधि (Duration)
(४) समय का सम्बन्ध (Relation of Time)

(१) **स्थापन**—समय अनन्त है जो कि बिना किसी अवरोध के अनादि काल से चला आरहा है। जब तक कि हम तथ्यों का स्थापन समय तथा स्थान में नहीं करेंगे तब तक हम समय की दूरी को नहीं नाप सकते हैं। इस प्रकार स्थानीयकरण का अर्थ यह है कि वस्तुओं तथा घटनाओं को रेखाओं या समय में चिह्नित किया जाय। एक बिन्दु या चिह्न दूसरे से सम्बन्धित होता है। साधारण भाषा में हम कह सकते हैं कि स्थापना का अर्थ तिथियों को घटनाओं से स्थिर करना है। यह कार्य इतिहास की आवश्यकता के अनुसार प्रारम्भिक है। मानव तथा वस्तुओं का सम्बन्ध आकस्मिक है और कोई भी घटना या व्यक्ति एकाकीपन में नहीं रह सकता है। इस प्रकार स्थापन समय-ज्ञान के विकास में मौलिक वस्तु है जिसको कार्यरूप में लाना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है।

(२) **समय की दूरी**—दूरी (Distance) का अर्थ समय की लम्बाई है जो ऐतिहासिक व्यक्तित्वों, महापुरुषों और हमारे बीच में होती है। कल्पना कीजिये कि भूतकाल में कोई घटना घटित हुई। वह कब घटित हुई, इसे जानने के लिये बालक उत्सुक रहते हैं। यदि इसे स्पष्ट करने के लिये सन्-सम्वतों का ही आश्रय लिया जाय तो समय का आभास छात्रों की समझ में नहीं आ सकता है। सन् १६३० ई० में शिवाजी का जन्म हुआ। यदि छात्रों को बताया जाय कि आज से बहुत काल पहले उनका जन्म हुआ था तो इससे भी उन्हें सन्तोष न होगा। वे यह जानना चाहेंगे कि शिवाजी का जन्म आज से कितने वर्ष पूर्व हुआ था ? यदि उनको स्पष्टतया यह बताया जाय

कि आज से ३३० वर्ष पूर्व शिवाजी का जन्म हुआ था तो इसको वे सुगमता से ग्रहण कर लेंगे। इस समय के अन्तर या दूरी के ज्ञान को समय की दूरी कहेंगे।

(३) **समय की अवधि**—ऐतिहासिकता के अनुसार समय की अवधि का विशेष महत्त्व है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि छात्रों को ऐतिहासिक आन्दोलनों की अवधि का ज्ञान प्रदान किया जाय। युगों, वंशों तथा आन्दोलनों का ज्ञान हमें ऐतिहासिक समझदारी प्रदान करता है। कोई भी घटना या आन्दोलन जब घटित होता है तो उसके पहले से कुछ कारण होते हैं। किसी घटना के घटित होने के लिये पहले से ही कुछ वातावरण तैयार रहता है। घटना के घटित हो जाने के पश्चात् भी उस घटना का कुछ समय तक प्रभाव रहता है। जब तक वह विशेष घटना समाज को प्रभावित किये रहती है तब तक के उस समय को उस घटना या आन्दोलन की अवधि कहते है। सन् १७८९ में फ्रेंच-क्रान्ति हुई, किन्तु उस क्रान्ति की अग्नि पहले से ही धधक रही थी। इस तिथि के पश्चात् भी वर्षों तक उसका प्रभाव विद्यमान रहा जब तक इस क्रान्ति का पहले तथा पश्चात् तक प्रभाव रहा उस काल को क्रान्ति-काल कहेंगे। समय की अवधि की सहायता से हम अपने निर्णय का संतुलन कर सकते हैं। इसके द्वारा छात्रों को यथार्थवादी तथा निर्णयात्मक बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अवधि की सहायता से हम सुगमतापूर्वक कह सकते हैं कि अमुक काल में इतनी उन्नति या अवनति हुई।

(४) **समय का सम्बन्ध** :—समय का ज्ञान कराते समय अध्यापक प्रायः छात्रों को कुछ महान् व्यक्तियों अथवा मुख्य घटनाओं की तिथियों को स्मरण करने के लिये कह देते हैं। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि तिथि एक बिन्दु है, चिह्न है न कि वह स्वयं कोई महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। असम्बन्धित तिथि में छात्रों की कोई रुचि नहीं होती है। ईसा ५४३ वर्ष पूर्व, सन् ६०६, १६०५, १६३०, १८५७, १८८५, १९०५, १९४२ ई० आदि का केवल इसलिये महत्त्व है कि इन तिथियों से

महान् व्यक्तित्वों अथवा महत्वपूर्ण घटनाओं का सम्बन्ध है। इन तिथियों को समय-स्तम्भ मान लेने से उस काल को समझने में सुगमता होती है। केवल तिथियों को स्मरण कर लेने से समय का ज्ञान नहीं हो सकता। इन तिथियों का घटनाओं से क्या सम्बन्ध है ? उससे पूर्व कौन सी घटनाएँ घटीं ? कब घटीं ? कितने वर्ष पूर्व घटीं ? उसके पश्चात् कौन-कौन घटनाएँ कब और कितने समय पश्चात् घटीं आदि बातों को जानना तथा उनका सम्बन्ध समझना अत्यन्त आवश्यक है। इन बातो को ध्यान में रखकर छात्रों को समय का ज्ञान कराना चाहिये।

समय-ज्ञान विकसित करने के लिये साधन

(Means for the Development of Time-Sense)

हम समय-ज्ञान तथा उसके मुख्य तत्वों के विषय में अध्ययन कर चुके हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि समय-ज्ञान किन साधनों के द्वारा किया जा सकता है। इतिहास का आधार काल है, अतः काल के सम्बन्ध को स्पष्ट करना बहुत ही आवश्यक है। इसके लिये विभिन्न प्रकार की समय-सूचियों (Time-chart) का प्रयोग होना चाहिये।

(अ) **समय-सूची** (Time-chart):—छोटी कक्षाओं में चित्र-समय-सूची (Pctorial-Time-Chart) तथा पनोरमा-सूची (Panorma Chart) का प्रयोग करना चाहिये। चित्र-समय-सूची में जिस वंश की सूची बनाई जाती है उसमें उसके राजाओं तथा शासकों के चित्रों को प्रदर्शित किया जाता है। उदाहरणार्थ, यदि मुगलवंश की समय-सूची बनानी है तो हम इस प्रकार बनायेंगे। बाबर मुगलवंश का प्रथम शासक था। वह जब गद्दी पर बैठा उस तिथि के सम्मुख उसका चित्र प्रदर्शित किया जायगा, उसके पश्चात् उसके उत्तराधिकारी का, इस प्रकार क्रमशः हम समय-सूची तैयार करेंगे। पनोरमा-सूची में भी चित्रों का प्रयोग किया जाता है लेकिन इसमें हम १०० वर्ष को एक मुख्य घटना से प्रदर्शित करते हैं। उदाहरणार्थ, चौथी शताब्दी को

प्रदर्शित करने के लिये समुद्रगुप्त के अश्वमेध-यज्ञ के घोड़े का चित्र दिखायेंगे, पाँचवी शताब्दी के लिये स्कन्दगुप्त का चित्र, छठी शताब्दी के लिये अजंता की चित्रकला के नमूने आदि। इनके बनाने में छात्रों को आनन्द भी प्राप्त होगा तथा क्रम याद रखने में सहायता मिलेगी। सम्पूर्ण राष्ट्रीय-इतिहास की एक समय-सूची प्रत्येक विद्यार्थी को बनानी चाहिये। उच्च कक्षाओं में विभिन्न प्रकार की तुलनात्मक समय-सूचियों (Comparative Time-Charts) का प्रयोग हो सकता है, जिनमें तिथि रेखा के दोनों ओर दो प्रकार की अथवा दो देशों की घटनाओं का उल्लेख हो। भारतवर्ष का अध्ययन कराते समय शिक्षक उत्तरी तथा दक्षिणी भारत की घटनाओं की तुलना समय-सूची द्वारा करा सकता है। एक ही सूची में कई प्रकार की घटनाएँ भी पृथक-पृथक विभागों में दिखाई जा सकती हैं। इन्हें Composite Time-Chart कहते हैं।

समय-सूची बनाते समय अध्यापकों तथा छात्रों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये—

(१) समय-सूची बनाने के लिये जो पैमाना (Scale) प्रयोग में लाया जाय वह एकसा (Uniform) हो तथा उसके विभागों में स्थान की शुद्धता होनी चाहिये अर्थात् विभागों में कम या अधिक स्थान न दिया जाय वरन् उनमें एकसा स्थान दिया जाय।

(२) समय-सूची तिथियों का दूरी के सम्बन्ध में प्रतिनिधित्व करे।

(३) यह आकर्षक होनी चाहिये।

(४) इसके द्वारा ऐतिहासिक ज्ञान तथा शुद्धता प्रदान की जावे।

(ब) **समय-रेखा** (Time-Line) :—समय-रेखा समय-ज्ञान विकसित करने के लिये सरल तथा प्रभावशाली साधन है। यदि हम छात्रों के सम्मुख तिथियों का ढेर बिना किसी क्रम के प्रस्तुत करें तो उनको समय का कुछ भी आभास नहीं होगा। यह सत्य है कि एक तिथि दूसरी तिथि के पश्चात् आती है, इसलिये हमको इन तिथियों को

क्रमानुसार प्रस्तुत करने के लिये समय-रेखा की सहायता लेनी चाहिये। इन पर तिथियों को काल-क्रमानुसार उपस्थित किया जाता है। तिथियों को प्रस्तुत करते समय पैमाना एक सा ग्रहण करना चाहिये तथा विभागों में समानता होनी चाहिये। कक्षा में समय-रेखा बताते समय अध्यापक को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिये—

(१) तिथियाँ बहुत थोड़ी तथा चुनी हुई हों। परन्तु अध्यापक को इनके चयन में सतर्कता रखनी चाहिये। ये तिथियाँ पर्याप्त विस्तृत समय को ढकती हों। अधिकतर समय रेखाओं का उपयोग राजाओं तथा शासकों के काल की घटनाओं को प्रस्तुत करने के लिये किया जाता है। इनके विरुद्ध यह सन्देह किया जाता है कि जब ये व्यक्ति-विशेष के काल को प्रस्तुत करने में सहायक हैं, तो ये छात्रों में समस्त समय-ज्ञान नहीं उत्पन्न कर सकती हैं। इसके लिये विद्वानों का विचार है कि इतिहास की मुख्य घटनाओं का चयन किया जाय, जैसे १५२६, १५५६, १६५७, १७०७, १७५७, १८५७, १९१९, १९३५, १९४२, १९४७, ई० आदि अर्थात् वे तिथियाँ चुनी जायँ जो कि मुख्य घटनाओं, मानवीय कार्यों तथा आन्दोलनों को प्रदर्शित करती हों।

(२) तिथियों के चयन में इस बात का ध्यान रखा जाय कि ये प्रभावपूर्ण हों और समाज में सामंजस्य स्थापित करने में उनका पूर्ण हाथ हो। इन तिथियों की यह विशेषता हो कि उस अवधि के अन्तर्गत शासन-व्यवस्था, समाज का रहन-सहन, कृषि, व्यापार, तथा कला का स्तर एक समान रहा हो। इसके अतिरिक्त उन तिथियों को चुना जाय जो किसी काल-विशेष की उन्नति, अवनति तथा परिवर्तनों का प्रतिनिधित्व करती हों।

(३) समय-रेखा बहुत अधिक छोटी नहीं होनी चाहिये। छोटी कक्षाओं में समय-ज्ञान कराने के लिये कहानियों को कालानुक्रम के अनुसार एक रेखा पर प्रदर्शित किया जा सकता है। हम इन का उपयोग किसी वंश के उत्थान तथा पतन अथवा किसी विचारधारा के उत्कर्ष तथा पतन को प्रदर्शित करने के लिये भी कर सकते हैं। इसके

अतिरिक्त विभिन्न वंशों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिये भी प्रयोग में ला सकते हैं।

(स) **समय-ग्राफ** (Time Graph) :—साम्राज्यों अथवा विचारों के उत्थान-पतन को ग्राफ-सूची (Graphic Chart) में दिखाया जा सकता है। इन सूचियों से घटनाओं का काल-सम्बन्ध स्पष्ट होता है। इनका उपयोग उच्च कक्षाओं में किया जाना चाहिये। तुलनात्मक समय-ग्राफ-सूची भी बनायी जा सकती है। जैसे स्टूअर्ट कालीन इगलैण्ड तथा भारत के सल्तनत-काल की घटनाओं को प्रदर्शित किया जा सकता है। तुलनात्मक समय-ग्राफ आधुनिक काल के इतिहास में पर्याप्त मात्रा में बनाये जा सकते हैं। परिशिष्ट न० ३ में कुछ समय रेखाएँ नमूने के रूप में दी गयी हैं। जो कि छात्रों को उपयोगी होंगी।

भारतीय इतिहास की मुख्य-मुख्य तिथियाँ, जिन्हें छात्रों को बतलाना आवश्यक है, निम्नलिखित हैं—

(१) मोहनजोदड़ो की सभ्यता का युग	ईसा ३००० वर्ष पूर्व
(२) आर्यों का आगमन तथा वैदिक युग	ईसा २००० वर्ष पूर्व से १४०० वर्ष पूर्व तक।
(३) गौतम बुद्ध की मृत्यु	ईसा ५४३ वर्ष पूर्व
(४) सिकन्दर महान् का आक्रमण	,, ३२६ ,, ,,
(५) सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य (भारत का प्रथम सम्राट)	,, ३२१ ,, ,,
(६) सम्राट अशोक	,, २६९ ,, ,,
(७) चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य	सन् ३७५ ई० पश्चात्
(८) हर्षवर्द्धन	,, ६०६ ,,
(९) महमूद गजनवी का आक्रमण	,, १००१ ,,
(१०) थानेश्वर का युद्ध	,, ११९२ ,,

(११) अलाउद्दीन खिलजी द्वारा देवगिरि पर अधिकार ,, १२९४ ,,
(१२) तैमूर का आक्रमण ,, १३९८ ,,
(१३) गुरु नानक का जन्म ,, १४६९ ,,
(१४) प्रथम पानीपत का युद्ध (बाबर तथा लोदी के मध्य में) ,, १५२६ ,,
(१५) अकबर की मृत्यु ,, १६०५ ,,
(१६) शिवाजी का जन्म ,, १६३० ,,
(१७) उत्तराधिकार का युद्ध ,, १६५७ ,,
(१८) औरंगजेब की मृत्यु ,, १७०७ ,,
(१९) पानीपत का तृतीय युद्ध (मराठों तथा अब्दाली के मध्य में) ,, १७६१ ,,
(२०) मेकॉले ,, १८३५ ,,
(२१) भारतीय-स्वतंत्रता का प्रथम युद्ध ,, १८५७ ,,
(२२) काँग्रेस का जन्म ,, १८८५ ,,
(२३) बंग-भंग ,, १९०५ ,,
(२४) प्रथम-विश्व-युद्ध ,, १९१४ ,,
(२५) दोहरा-शासन ,, १९१९ ,,
(२६) भारतीय-राज्य-विधान ,, १९३५ ,,
(२७) द्वितीय-विश्व-युद्ध ,, १९३९ ,,
(२८) भारत-छोड़ो-आन्दोलन ,, १९४२ ,,
(२९) भारतीय-स्वतन्त्रता ,, १९४७ ,,
(३०) गणतन्त्र-दिवस ,, १९५० ,,

प्रश्न

१—समय-ज्ञान का क्या अर्थ है ? इसको छात्रों में किन-किन साधनों की सहायता से विकसित करोगे ?

(What do you understand by Time-sense ? What measures will you adopt for the development of it among students?)

२—समय-ज्ञान के मुख्य तत्व कौन-कौन से हैं ? उदाहरण सहित बताइये ?

(What are the constituents of Time-sense. Explain them with examples.)

अध्याय — १३

इतिहास-शिक्षण में समन्वय (Correlation in History Teaching)

"इतिहास जो वर्णित करता है उसको कविता चित्रित करती है।" ("Poetry paints what History describes.")—Firdausi

"मैंने अपने इंगलैण्ड के इतिहास का ज्ञान शेक्सपीयर के नाटकों से प्राप्त किया है।" ("I have learnt all my English history from Shakespeare's plays.")—Chatham

समस्त ज्ञान अखण्ड है। वह पृथक-पृथक भागों में विभाजित नहीं किया जा सकता है, परन्तु पठन-पाठन की सुविधा के लिये हमने उसका वर्गीकरण कर लिया है और प्रत्येक वर्ग को एक विषय कहते हैं। परन्तु विषय ज्ञान का विभाजन नहीं है, वरन् एक ज्ञान के अध्ययन के दृष्टिकोण का अन्तरमात्र है। फिर भी विषय का अपना एक उद्देश्य तथा एक विशिष्ट दृष्टिकोण होता है। उसके उच्च आदर्श हैं, जिनको प्राप्त करने के लिये वह प्रयत्नशील रहता है तथा उसकी एक श्रेष्ठ परम्परा है जिसका वह आदर करता है। अतएव किसी विषय को

पढ़ाने में ज्ञान के अतिरिक्त जब तक छात्र इन बातों को ग्रहण नहीं करता तब तक उस विषय का अध्यापन अपूर्ण रहता है।

बालक का मस्तिष्क पृथक-पृथक विभागों का मिश्रण नहीं है, वरन् अविभाज्य है। समस्त विषयों की सामग्री उसी एक मस्तिष्क द्वारा ग्रहण की जाती है। अतएव मस्तिष्क भिन्न-भिन्न अनुभवों का पारस्परिक सम्बन्ध, तुलना तथा मिश्रण आदि करके उन्हें ग्रहण करता है। अनुभव करने के साथ ही यह सम्बन्धी-करण-क्रिया प्रारंभ हो जाती है, और जो भी ज्ञान हमारे मस्तिष्क में संचित होता है, इन्हीं सम्बन्धों का ज्ञान है। हमारा मस्तिष्क कुछ ऐसे तत्त्वों से निर्मित है कि वह बिना इन सम्बन्ध स्थापनाओं के रह ही नहीं सकता। अतः मानव मस्तिष्क स्वभावतः ही एक विषय के अनुभवों को दूसरे विषय के अनुभवों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने लगता है। अतएव यदि अध्यापक स्वयं इन सम्बन्धों का ध्यान रखे तो छात्रों को विषयों के समझने में बड़ी सरलता तथा सुगमता हो जाती है।

इस प्रकार ज्ञान की अखण्डता तथा मस्तिष्क की सम्बन्धी-करण-क्रिया को देखने के पश्चात् स्वतः ही यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि समन्वय का क्या अर्थ है ? समन्वय शब्द का अर्थ है सम्बन्ध स्थापित करना। शिक्षा में समन्वय स्थापित करने से क्या तात्पर्य है ? इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि विषयों को पृथक-पृथक करके न पढ़ाया जाय अर्थात् उनमें पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित किया जाय। विभिन्न विषयों के इस पारस्परिक सम्बन्ध को शिक्षा में समन्वय या अनुबन्ध कहते हैं। इस समन्वय के तीन रूप होते हैं। प्रथम किसी विषय के अन्तर्गत विभिन्न अंगों का समन्वय है, जैसे इतिहास-शिक्षण में सामाजिक इतिहास, आर्थिक इतिहास, राजनीतिक इतिहास, प्रादेशिक इतिहास, मानव-इतिहास, स्थानीय इतिहास आदि, जिनके शिक्षण में अधिकाधिक समन्वय या अनुबन्ध स्थापित करना परम आवश्यक है। इसमें विषय की सामग्री को इस प्रकार व्यवस्थित करना पड़ता है

जिससे कि प्रत्येक पाठ स्वभावतः पूर्ण पाठ के आधार पर विकसित हो और आगामी पाठ के लिये पूर्व-तैयारी का कार्य करे।

समन्वय का दूसरा रूप शिक्षालय-कार्य का बाह्य जगत से सम्बन्ध स्थापित करना है। शिक्षा का ध्येय बालक को भावी जीवन के योग्य बनाना है। अपने जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिये उसे वातावरण से परिचित होना नितान्त आवश्यक है, अतः विषय का शिक्षण करते समय पाठ का सम्बन्ध सामाजिक वातावरण से भी स्थापित करना चाहिये। उससे पाठ रोचक, सजीव तथा स्थायी बन जाता है। सामाजिक वातावरण का अत्यन्त व्यापक क्षेत्र है। इसमें छात्रों के जीवन, वातावरण (आर्थिक, सामाजिक, परिवार तथा प्रतिवास का वातावरण) तथा रुचि से सम्बन्ध रखने वाली सभी बातें आ जाती हैं। यदि पाठ का इनसे सम्बन्ध स्थापित किया जाय तो छात्र उस पाठ में रुचि लेंगे और उनका उसमें चित्त लगेगा।

समन्वय का तीसरा रूप विभिन्न पाठ्य-विषयों का सह-सम्बन्ध है। शिक्षा में जब हम समन्वय की चर्चा करते हैं तो हमारा तात्पर्य इसी सह-सम्बन्ध से है। अन्य विषयों में पढ़ाई गई जो सामग्री इतिहास के पाठ को समझने में सहायक हो उससे सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये। यह समन्वय दो प्रकार का होता है। वे इस प्रकार हैं—

(अ) आकस्मिक समन्वय (Incidental Correlation)

(ब) पूर्व-आयोजित समन्वय (Pre-Planned Correlation)

(अ) **आकस्मिक समन्वय**—इस प्रकार के समन्वय में दैनिक शिक्षण को रोचक और व्यापक बनाने के लिये आवश्यकतानुसार अन्य विषयों में पठित सामग्री का प्रयोग किया जाता है जिससे पाठ समझने में विशेष सहायता मिलती है और समस्त ज्ञान की एकता का बोध होता है। इसके लिये अध्यापक कोई पूर्व-व्यवस्था नहीं करता, वरन् पढ़ाते समय किसी बिन्दु अथवा प्रकरण को अधिक व्यापक दृष्टि से सरल बनाने के लिये दूसरे विषयों में अध्ययन की हुई सामग्री का प्रयोग कर लेता है। इतिहास पढ़ाते समय यदि भूगोल का आकस्मिक प्रसंग आ

गया और यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि भूगोल के उस अंश को पढ़ाये बिना इतिहास के उस अंश का ज्ञान नहीं कराया जा सकता तो भूगोल के उस अंश का ज्ञान कराना आकस्मिक समन्वय कहलायेगा। उदाहरणार्थ, जब हम शिवाजी की सफलता के विषय में पढ़ा रहे हैं। यहाँ आपको यह आवश्यकता प्रतीत होगी कि आप बालकों को उसके राज्य की भौगोलिक परिस्थिति का ज्ञान करावें, क्योंकि इसके ज्ञान के बिना उसकी सफलता के कारणों को स्पष्टतया नहीं समझाया जा सकता है। इस प्रकार का सह-सम्बन्ध आकस्मिक समन्वय होगा।

(ब) **पूर्व-आयोजित समन्वय**—इसमें विभिन्न विषयों की सामग्री को ऐसे क्रम से चुना जाता है कि एक विषय के शिक्षण से अन्य विषयों का निकट सम्बन्ध रहे; जो सामग्री एक विषय में पढ़ाई जाती है उसी का न्यूनाधिक अन्य विषयों में प्रयोग हो, परन्तु दृष्टिकोण की भिन्नता के साथ। ऐसे सम्बन्ध को पूर्ण-आयोजित समन्वय कहते हैं। जिस शिक्षालय में कक्षाध्यापक-प्रणाली (Class Teacher System) प्रचलित है वहाँ इस प्रकार के समन्वय के स्थापित करने में कोई कठिनाई नहीं होती। परन्तु जहाँ विशेषज्ञ-शिक्षक-प्रणाली (Specialist-Teacher System) है वहाँ इसके स्थापित करने में असुविधा उत्पन्न होती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये शिक्षा प्रारम्भ करने के समय सभी अध्यापको को एकत्रित होकर आपस में विचार-विमर्श करना चाहिए और मिलकर ऐसा समय-विभाग-चक्र बनावें जिससे विषयों का सम्बन्ध हो सके।

जब कभी हम शिक्षा में समन्वय की चर्चा करते हैं, तो हमारा संकेत समन्वय के तीसरे रूप के प्रथम प्रकार अर्थात् आकस्मिक समन्वय से ही समझना चाहिये। इतिहास एक ऐसा विषय है जिसके द्वारा अन्य विषयों से समन्वय करने के लिये सामग्री प्रदान की जाती है। हरबार्ट (Herbart) के शिष्य जिलर (Ziller) ने इतिहास को केन्द्रीय विषय बनाया था, जिसके द्वारा समस्त विषयों की शिक्षा प्रदान की जा सकती थी। परन्तु इतिहास का सम्बन्ध साधारणतया साहित्य,

भूगोल, नागरिकशास्त्र तथा हस्तकार्य से स्थापित किया जाता है। ये विषय ऐसे हैं जिनका उपयोग इतिहास के साथ समन्वय स्थापित करने में बड़ी सुगमता से किया जा सकता है। यहां हम, प्रत्येक विषय का इतिहास से पृथक-पृथक क्या सम्बन्ध है, इस पर विचार करेंगे और यह देखेंगे कि अन्य विषय इतिहास के साथ किस प्रकार पढ़ाये जा सकते हैं अथवा अन्य विषयों के साथ इतिहास किस प्रकार पढ़ाया जा सकता है।

इतिहास तथा साहित्य (History and Literature) :—हम प्रथम अध्याय में देख चुके हैं कि प्राचीन काल में इतिहास साहित्य का अङ्ग था। सहस्रों वर्षो के इतिहास की शिक्षा हमें साहित्य के रूप में ही प्राप्त होती है। प्रारम्भिक अवस्था में हम इतिहास की शिक्षा भी साहित्य के रूप में ही देते हैं। यदि हम साहित्यिक रोचकता का उपयोग न करें तो प्रारम्भिक अवस्था में इतिहास की उपयोगिता ही नष्ट हो जाय। साहित्य के उपयोग से छात्रों में कल्पना का विकास किया जाता है। इसके द्वारा एक व्यक्ति को वास्तविकता के समझने की योग्यता भी प्राप्त होती है। अतः इतिहासकारों का एक दल ऐसा है जो साहित्य के उस अंग को अत्यधिक बल देता है जिसमें ऐतिहासिक व्यक्तित्वों और घटनाओं का धारावाहिक वर्णन मिलता है। वे इतिहास को साहित्य के रूप में प्रदान करना चाहते हैं, परन्तु इस रूप में इतिहास का अपना अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में इन दोनों विषयों में समन्वय का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि इतिहास पूर्णरूप से साहित्य हो जाता है। लेडी क्लेरिंडा (Lady Clarinda) का विचार है कि इतिहास स्वयं एक उलझन तथा क्लांति उत्पन्न करने वाला विषय है, परन्तु जब उसको कल्पना प्रदान कर दी जाती है तो वह मानवीय हो जाता है।

वैज्ञानिक प्रवृत्ति ने इतिहास को वैज्ञानिकता प्रदान की और इतिहास एक वैज्ञानिक विषय बना। इस दल के समर्थकों का कहना है

कि इतिहास एक विज्ञान है अतः उसका सम्बन्ध साहित्य से नहीं होना चाहिये। वैज्ञानिकता की पोशाक पहनकर इतिहास संक्षिप्त तथा निश्चयात्मक विषय हो गया और इसने काल्पनिकता तथा साहित्यिक रोचकता को तिलांजलि दे दी। इस स्थिति में इतिहास तथा साहित्य में समन्वय स्थापित नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार के कट्टर विचारों के समर्थक समन्वय-पद्धति में निरन्तर उलझन ही उत्पन्न करेंगे। यह पूर्णतया सत्य है कि इन विषयों का घनिष्ठ समन्वय दोनों के लिये हानिकारक सिद्ध होगा।

इस प्रकार दोनों विचारों पर दृष्टिपात करने के पश्चात् यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इन दोनों विषयों को वास्तविक स्थिति क्या होनी चाहिए जिससे छात्रों को इनके ज्ञान से लाभान्वित किया जा सके। जेकोब ग्रिम (Jacob Grimm) का विचार है कि ज्ञान की इन दोनों शाखाओं के पृथक्करण ने इनमें अप्राकृतिक खाई उत्पन्न कर दी है। इनका समन्वय ज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न करने के लिये किया जाना चाहिए। प्रो० घाटे का विचार है कि इतिहास के शिक्षक को साहित्य का उपयोग ऐतिहासिक वातावरण उत्पन्न करने तथा विभिन्न कालों की सामाजिक दशा का ज्ञान प्रदान करने के लिये करना चाहिये। यदि इतिहास का सम्बन्ध साहित्य से स्थापित नहीं किया जायगा तो वह अत्यन्त सूक्ष्म तथा अवैयक्तिक हो जायगा। परन्तु इतिहास मानव के कार्यों तथा विचारों की व्याख्या करता है, दूसरी ओर साहित्य भी मानव के विचारों, संवेगों, कल्पनाओं तथा भावनाओं का लेखा-जोखा है, इसलिये इन दोनों में समन्वय स्थापित करना अति आवश्यक है। साहित्य इतिहास के लिये वैयक्तिकता, स्थूल परिस्थिति, सामाजिक दशाओं का विस्तृत वर्णन, रीति-रिवाज, संस्थाएं तथा रहन-सहन के ढङ्ग की सामग्री प्रदान करता है। इतिहास का शिक्षक इनको पढ़ाते समय साहित्य की सहायता ले सकता है। यदि इतिहास को वैज्ञानिक संकीर्णता की सीमा तक खींचा जायगा तो सम्भव है कि उसकी सरसता, यथार्थता तथा निजत्व

समाप्त हो जायगा। साहित्य के योग से इतिहास को सरसता, यथार्थता तथा ठोस रूप प्राप्त होता है। साहित्य ऐतिहासिक बातों को सजीव रूप प्रदान करता है। जब तक इतिहास की ऐतिहासिकता में बाधा नहीं पड़ती तब तक साहित्य का उपयोग अनुचित नहीं है। हमारी भाषा में अनेक ऐतिहासिक उपन्यास, कथा-कहानियाँ तथा कविताएँ हैं जिनका संयत रूप में उपयोग लाभप्रद ही होगा।

इतिहास के अध्यापक को उसके शिक्षण में महत्वपूर्ण साहित्यिक कार्यों का उपयोग करना चाहिये। यदि वह महाकाव्य काल का शिक्षण कर रहा है तो वह रामायण का, जो कि उस काल की सामाजिक दशा के सम्बन्ध में विशेष मात्रा में प्रकाश डालती है, उपयोग कर सकता है। इसके अतिरिक्त वह मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'साकेत' का भी उपयोग कर सकता है। यदि वह राणाप्रताप के विषय में पढ़ा रहा है तो वह श्यामनरायन पांडेय द्वारा रचित पुस्तकों का उपयोग वास्तविकता को प्रदान करने के लिये कर सकता है। इसी प्रकार शिवाजी के विषय में भूषण के विचारों से परिचित कराना इतिहास के शिक्षक का परम कर्त्तव्य है। इतिहास की पुस्तकों में हमें यह लिखा हुआ मिलता है कि सिकन्दर लोदी ने ग्वालियर के राजा मानसिंह को पराजित कर दिया था लेकिन यथार्थता कुछ और ही है। इतिहास के शिक्षक को इस यथार्थता को छात्रों के सम्मुख स्पष्ट करने के लिये वृन्दावन लाल वर्मा द्वारा रचित 'मृगनयनी' का उपयोग करना चाहिये। इसके अतिरिक्त अध्यापक छात्रों से ऐतिहासिक उपन्यासों, कविताओं तथा लेखों को पढ़ने के लिये कह सकता है। इनका उपयोग समुचित रूप से कक्षा में किया जाना चाहिए।

इतिहास तथा नागरिकशास्त्र (History and Civics)—नागरिक शास्त्र विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि नागरिकशास्त्र वर्तमान समय की शासन व्यवस्था का वर्णन करता है। दूसरे लोगों का विचार है कि यह एक देश की शासन-व्यवस्था के उद्गम तथा विकास का एक लेखा-जोखा है। नागरिकशास्त्र

यह प्रकट करता है कि आज की शासन-व्यवस्था किन-किन स्तरों को पार करके इस रूप में आयी है। परन्तु आधुनिक काल में इसका प्रयोग उदार अर्थ में किया गया है। इसके अध्ययन के द्वारा भावी युवकों को समाज तथा राष्ट्र के लिये उपयोगी बनाया जाता है। उन्हें इसको शिक्षा द्वारा उन तत्वों के विकास का अवसर प्रदान किया जाता है जिसके द्वारा वे आदर्श नागरिक बन सकें। कुछ विशेषज्ञों का विचार है कि नागरिकशास्त्र में मनुष्य की वर्तमान सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं का वर्णन होता है। परन्तु इतिहास केवल वर्तमान समय की शासन व्यवस्था के विषय में ही नहीं बतलाता, वरन् वह प्राचीन युग का पूर्ण गवेषणात्मक क्रम-बद्ध तथा तर्कपूर्ण अध्ययन है। यह मानव के किसी विशेष पहलू को ही स्पष्ट नहीं करता है अपितु मानव समाज के पूर्ण विकास पर दृष्टि डालता है। इतिहास का सम्बन्ध मानव समाज के आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक, राजनीतिक तथा कलात्मक विकास मे होता है। इतिहास हम को स्पष्ट करता है कि मानव-जाति ने किस प्रकार प्रगति करके वर्तमान सभ्यता को प्राप्त किया है अर्थात् इतिहास भूतकाल की सहायता से वर्तमान को स्पष्ट करता है।

इस प्रकार दोनों विषयों की परिभाषा पर विचार करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों विषय शासन-व्यवस्था के अध्ययन का अपने में समावेश करते हैं। इतिहास तथा सरकार (Government) का सम्बन्ध उसी प्रकार है जैसा कि जीव-विज्ञान का पौधों से या जन्तु-विज्ञान का जन्तुओं (Animals) से है। इस सम्बन्ध के कारण ही पो० फ्रीमेंन (Freemen) ने इतिहास को अतीत की राजनीति कहा है। इसी प्रकार के विचार प्रो० जॉनसन (Johnson) के हैं कि "शिक्षालयों में इतिहास की शिक्षा सरकार के स्वरूपों, परिवर्तनों तथा कार्यों के सम्बन्ध में रही है।" १९२० ई० में योरोप में राज नीति के शिक्षण को पृथक करने के लिये बल दिया गया। तदुपरान्त इसको पाठ्य-क्रम मे पृथक स्थान दिया गया। लेकिन फिर भी दोनों

विषयों में समन्वय के लिये बहुत अधिक स्थान है। यदि हम प्राचीन काल के भारतीय गणतंत्र के विषय में पढ़ा रहे हैं तो उसको स्पष्ट करने के लिये हम नागरिकशास्त्र का आश्रय ले सकते हैं और आज के गणतंत्र तथा प्राचीन गणतंत्र की तुलना करके गुणों तथा अवगुणों की विवेचना कर सकते हैं। नागरिकशास्त्र इतिहास का एक अंग है। परन्तु यह किसी देश की सरकार तथा जनता के राजनीतिक विचारों के विकास के लेखों के रूप में ही अंग हो सकता है। नागरिक शास्त्र का इतिहास से केवल उस सीमा तक सम्बन्ध है जिस सीमा तक उस काल में उसका विकास हुआ है। इतिहास के अध्यापक को नागरिकशास्त्र का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए, अर्थात् किसी राष्ट्र का काल-क्रम के अनुसार इतिहास पढ़ाने के अवसर पर उसकी शासन व्यवस्था का क्रमिक विकास इतिहास के साथ पढ़ाया जाय और वर्तमानकाल की शासन-व्यवस्था की शिक्षा पृथक रूप में दी जाय।

नागरिकशास्त्र तथा इतिहास क्षेत्र, पाठ्य-सामग्री तथा पद्धति के दृष्टिकोण से भिन्न हैं। सक्षेप में इन दोनों के भेद निम्नलिखित हैं—

(१) इतिहास तथ्यात्मक तथा निर्देशात्मक है, जब कि नागरिक-शास्त्र वृत्तान्तात्मक (Narrative) है।

(२) इतिहास मानव के अतीत की व्याख्या करता है और नागरिकशास्त्र वर्तमान तथा भूत दोनों की गवेषणा करता है।

(३) इतिहास का क्षेत्र व्यापक है। वह मानव की प्रत्येक क्रिया से सम्बन्धित है, जब कि नागरिकशास्त्र का क्षेत्र उसकी अपेक्षा सीमित है। वह केवल मानव के उन कार्यों से सम्बन्धित है जो नागरिकशास्त्र के क्षेत्र में आते हैं।

(४) इतिहास के अध्ययन की विधियों से नागरिकता की विधियाँ भिन्न हैं।

नागरिकशास्त्र ने आजकल हमारे देश में एक पृथक स्थान ग्रहण कर लिया है। जूनियर कक्षाओं तक तो इतिहास, भूगोल तथा नागरिक

शास्त्र का मिश्रित पाठ्य-क्रम है, परन्तु हाई स्कूल कक्षाओं में नागरिक शास्त्र को पृथक विषय बना दिया गया है ।

इतिहास तथा भूगोल (History and Geography) :—इतिहास तथा भूगोल में इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि इतिहास का अध्यापक निःसन्देह भूगोल का अध्यापक भी होता है, किन्तु दोनों विषयों में यह सम्बन्ध किस सीमा तक स्थापित हो सकता है यह सदैव स्पष्ट नहीं रहता । दोनों विषय समाज-शास्त्र के अग हैं । दोनों का ध्येय मानव समाज की गति का स्पष्टीकरण करना है । इतिहास अतीत से सम्बन्धित है और भूगोल वर्तमान से । मानव जिस-जिस स्थान पर गया, तथा जहाँ-जहाँ उसने जीवन बिताया उन सबका वर्णन इतिहास है और उनके वर्तमान रहन-सहन का वर्णन भूगोल है । भूत तथा वर्तमान में अन्तर होते हुये भी दोनों अन्योन्याश्रित हैं । एक के ज्ञान के बिना दूसरे का ज्ञान असम्भव है । इतिहास स्थल तथा काल के आधार पर चलता है । स्थल का विस्तारपूर्वक अध्ययन भूगोल प्रदान करता है, अतः इतिहास का अर्द्ध-आधार भूगोल को मानना चाहिये ।

इन दोनों विषयों में समन्वय सुगमता के साथ किया जा सकता है । समन्वय-पद्धति के समर्थकों का विचार है कि विभिन्न देशों में मनुष्य ने जो कुछ किया है वह उसके भौतिक अथवा प्राकृतिक वातावरण के कारण हुआ है । मानव पर उसकी बाह्य परिस्थितियों तथा वातावरण का प्रभाव पड़ता है । मानव ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति तथा जीवन को पूर्णता प्रदान करने के लिये इस पृथ्वी का उपयोग किया है तथा उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किया है । कुछ भूगोलशास्त्रियों का विचार है कि मानव पूर्णतः अपने प्राकृतिक वातावरण का दास है । उसका कोई स्वतत्र अस्तित्व नही है । उनके अनुसार राष्ट्र के धार्मिक राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विकास का-आधार भूगोल है । वे यहाँ तक कहते हैं कि जो भी धार्मिक तथा राजनीतिक आन्दोलन हुए वे सब भौगोलिक कारणों के अन्तर्गत हुए । यदि इन विचारों का समर्थन किया जाय तो इतिहास एक स्वतंत्र

विषय नहीं रहेगा, वरन् वह भूगोल का एक विभाग बन जायगा। वास्तविकता यह है कि इतिहास भूगोल का एक विभाग नहीं है। जिस प्रकार भौगोलिक तत्व की महत्ता है उसी प्रकार मानव की इच्छा-शक्ति की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह सत्य है कि प्राचीन काल में मानव प्रकृति के अधीन था, लेकिन आज वैज्ञानिक अनुसंधान की सहायता से मानव ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है। वह नदियों से खेतों को सिंचाई कर सकता है, उनके पानी के द्वारा बिजली बना सकता है, यहाँ तक कि रेगिस्तान को उर्वरा भूमि में परिवर्तित कर सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक देश के इतिहास के निर्माण मे भूगोल का महत्वपूर्ण हाथ है, लेकिन अध्यापकों को यह नहीं भूल जाना चाहिये कि जिस प्रकार इतिहास में भौगोलिक तत्त्व होता है उसकी प्रकार भूगोल में भी ऐतिहासिक तत्त्व होता है। इतिहास के शिक्षक का यह परम कर्त्तव्य है कि इन दोनों के तत्त्वों का समुचित रूप से ध्यान रखकर अपना शिक्षण कार्य पूर्ण करे।

उदाहरणार्थ, यदि वह शिवाजी के विषय में पढ़ा रहा है तो उसे शिवाजी का सफलता के कारणों पर दृष्टिपात करते समय भौगोलिक कारण पर प्रकाश डालना चाहिये। किस प्रकार महाराष्ट्र की भौगोलिक परिस्थितियों ने उनको सफलता में सहायता प्रदान की। परन्तु उसे इतना अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि शिवाजी को सफलता का मुख्य कारण भौगोलिक ही नहीं था, वरन् उनका शिक्षण, उत्साह तथा चातुर्य भी था। यदि अध्यापक जाति-प्रथा के विषय में पढ़ा रहा है तो उसे यह भी बताना चाहिये कि भूगोल ने भारतवर्ष में जातियों तथा उपजातियों के बनाने में कितना योग दिया है। दूरी अथवा धरातल की बनावट के कारण अलग हो जाने तथा एक ही स्थान के संकुचित वातावरण में बहुत समय तक रहने के कारण भारतवर्ष में बहुत सी जातियाँ बन गईं। सरयुपारीण, कोंकणस्थ, देशस्थ, कान्यकुब्ज, मैथिल आदि के निर्माण में भौगोलिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण हाथ है। अध्यापक इतिहास पढ़ाते समय इन परिस्थितियों पर अवश्य

प्रकाश डाले। विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी उत्तरी भारत को दक्षिणी से अलग करती है, यह तो छोटी कक्षा का बालक भी जानता है। किन्तु इसने भारतवर्ष के इतिहास को कैसे दो भागों में विभाजित कर दिया है, यह उच्च कक्षा के भी बहुत कम बालक समझ पाते हैं। इनका स्पष्टीकरण करना इतिहास के शिक्षक का परम कर्त्तव्य है। जर्मनी के शिक्षालयों में भूगोल-शिक्षण का कार्य इतिहास के अध्यापक को सौंपा जाता था। इसका यही कारण था कि ये दोनों विषय अन्योन्याश्रित हैं। जब तक इन दोनों का उचित समन्वय नहीं किया जाएगा तब तक दोनों का शिक्षण-कार्य सफल नहीं हो सकता है।

इतिहास तथा हस्तकार्य (History and Handwork)—इतिहास का हस्तकार्य से समुचित रूप से समन्वय स्थापित किया जा सकता है। प्रायः यह देखा गया है कि बालक शिक्षालयों में जो कार्य करते हैं उनमें उनकी अधिक रुचि रहती है। रूसो (Rousseau) ने शिक्षा में 'स्वक्रिया द्वारा सीखने' (Learning by doing) की पद्धति दी। इस पद्धति के अनुसार जो कुछ बालक करता है उसका अनुभव अधिक होता है क्योंकि उस कार्य में उनका निजत्व अधिक होता है तथा वे उसे अपना बनाया हुआ समझते हैं और देर तक उसकी स्मृति उनके मस्तिष्क में बनी रहती है तथा उसमें उनकी इन्द्रियाँ शिक्षित होती हैं। हस्तकार्य एक ऐसा विषय है जिसमें छात्रों को हस्त तथा नेत्रों की शिक्षा प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त इसमें बच्चों की क्रियाओं के लिये महत्त्वपूर्ण स्थान है। इतिहास-शिक्षक हस्तकार्य से इतिहास का समन्वय कर सकता है। वह अपने छात्रों से चित्र, प्रतिरूप तथा सूची बनवाने के लिये कह सकता है। इनके आधार पर दी गई शिक्षा जिज्ञासा पूर्ण, रोचक तथा प्रभावपूर्ण होती है। यह अनुभव किया गया है कि बालक केवल कान से सुनकर जो ज्ञान प्राप्त करते हैं वह शीघ्र स्मरण नहीं हो पाता तथा इन्द्रियों से प्राप्त किया ज्ञान शीघ्रता से स्मरण हो जाता है और अधिक देर तक मस्तिष्क में रहता है। इतिहास-शिक्षक चित्रों के बनवाने से उनको शिक्षित कर सकता है। यह

कार्य जूनियर कक्षाओं के लिये विशेष लाभप्रद है। इन दोनों विषयों का समन्वय बालक के विकास के लिये उपयोगी है। इससे उनकी रचनात्मक प्रवृत्ति भी संतुष्ट की जा सकती है तथा सहयोग की भावना भी उत्पन्न की जा सकती है। उच्च कक्षाओं में हस्तकार्य इतना प्रभावशाली नहीं जितना छोटी कक्षाओं में होता है। परन्तु हस्तकार्य से इस स्तर पर भी इतिहास का समन्वय कराया जा सकता है। उनको ऐतिहासिक चित्र तथा युद्ध-योजना बनाने के लिये प्रोत्साहित किया जा सकता है। इससे उनमें कला के प्रति सद्भावना उत्पन्न की जा सकती है।

प्रश्न

१—आप इतिहास के शिक्षण का समन्वय हस्तकार्य, भूगोल, साहित्य तथा नागरिकशास्त्र से किस प्रकार करेंगे? उदाहरण सहित समझाइये।
(How would you correlate the teaching of History with Handwork, Geography, Literature and Civics? Explain with examples.)

२—हाईस्कूल कक्षाओं के पाठ्य-क्रम के किसी एक विषय से इतिहास-शिक्षण का समन्वय उदाहरण सहित कीजिये।
(Indicate with illustrations of Correlating History with any one subject of the High School Curriculum.)
(B. T. 1957)

अध्याय—१४

इतिहास-परीक्षा (History Examination)

ऐतिहासिक भूमिका (Historical Background)–यह संस्था अत्यंन्त प्राचीन है। यह किसी न किसी रूप में प्रत्येक देश की शिक्षा में प्राचीन काल से चली आ रही है। चीन में परीक्षा तीन या चार सहस्र वर्ष से प्रचलित है। इसी प्रकार भारत, ग्रीस, रोम आदि देशों में यह काफी दिनों से स्थित है। मध्यकालोन योरोप के विश्वविद्यालयों ने मास्टर-डिग्री तथा डाक्टर की उपाधि प्रदान करने के लिये यह नीति अपनाई थी कि विद्यार्थी को प्रजा के प्रश्नों का उत्तर देकर संतुष्ट करना पड़ता था। वर्तमान काल में जो प्रणाली प्रचलित है वह १९वीं शताब्दी की देन है। भारतवर्ष को यह प्रणाली अंग्रेजों से प्राप्त हुई जो कि अभी तक उसी रूप में चल रही है।

परीक्षा का अर्थ तथा वर्गीकरण (Meaning of Examination and Its Classification) :— इस शब्द का शाब्दिक अर्थ ज्ञान या कार्य की व्यवस्थित परीक्षा या जाँच है, चाहे वह किसी बाह्य-शक्ति के द्वारा ली जाय या स्वयं शिक्षकों के द्वारा ली जाय, जिसको आन्तरिक परीक्षा

भी कहते हैं। परीक्षा का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप से किया जा सकता है—

(१) लिखित (Written)

(२) प्रायौगिक (Practical)

(३) मौखिक (Oral)

मौखिक परीक्षा में छात्र तथा परीक्षक का परस्पर सम्बन्ध होता है और इससे विद्यार्थी के अनेक गुणों की भी परीक्षा की जा सकती है। प्रायौगिक परीक्षा में छात्र अपने कार्य का नमूना प्रस्तुत करता है। लिखित परीक्षा में छात्र नियत समय में कुछ प्रश्नों के उत्तर लिखता है। लिखित परीक्षा तीन प्रकार की होती है

(१) निबन्धात्मक परीक्षा (Essay Type Examination)

(२) विवरणात्मक परीक्षा (Dissertation Type Examination)

(३) नवीन प्रणाली के प्रश्न (New Objective Type Test)

वर्तमान परीक्षा-प्रणाली के दोष (Defects of Present System of Examination) :—आधुनिक काल में परीक्षा-प्रणाली की विशेष आलोचना हो रही है, परन्तु साथ ही साथ विद्वान पुरुष यह भी अनुभव करते हैं तथा करते रहे हैं कि किसी न किसी प्रकार की परीक्षा-प्रणाली आवश्यक है। परन्तु आजकल हम परीक्षा की आलोचना इसलिये करते हैं कि परीक्षा साधन न बनकर साध्य बन गई है। इसी कारण उसकी कटु आलोचना की जाती है। उसके अधोलिखित कारण हैं—

(१) परीक्षा शिक्षा का साधन होनी चाहिये परन्तु आजकल वह शिक्षा का लक्ष्य बन रही है। बालक पढ़ते हैं, शिक्षक पढ़ाते हैं किसलिये ? किस उद्देश्य से ? केवल परीक्षा उत्तीर्ण करने व कराने के लिये।

(२) यह केवल पुस्तकीय ज्ञान तक सीमित रहती है। बालक की वास्तविक प्रगति की पूर्ण जाँच नहीं कर पाती।

(३) परीक्षा विद्यार्थियों के लिये भयानक स्वप्न बन गई है। इसने

छात्रों के नैतिक स्तर को भी निम्न कर दिया है, क्योंकि परीक्षा उत्तीर्ण करना तथा कराना ही शिक्षा का मुख्य ध्येय हो गया।

(४) यह विद्यालय के कार्य पर भी दूषित प्रभाव डालती है। सभी कार्य इसी की प्राप्ति के लिये उत्सर्ग कर दिये जाते हैं। यहाँ तक कि समय-चक्र तालिका, गृह-कार्य, पाठ्य-क्रम आदि सभी उसी के द्वारा शासित किये जाते हैं।

(५) यह छात्रों के मस्तिष्क में ज्ञान तो भर देती है, परन्तु उसका प्रयोग नहीं सिखाती है।

(६) विद्यार्थियों के स्वास्थ्य पर भी निकृष्ट प्रभाव डालती है। परीक्षा के दिनों में वे खेलना-कूदना, अपने मित्रों से मिलना, पर्याप्त विश्राम करना, सोना आदि सबको तिलांजलि दे देते हैं।

(७) परीक्षा में वैयक्तिक प्रभाव अधिक है। इसके अतिरिक्त छात्रों के लेख, विचार तथा लिखने के ढंग का भी प्रभाव पड़ता है। इसी कारण जाँचने तथा अंकों में विशेष विस्तार रहता है।

(८) यह स्मरण-शक्ति पर अधिक बल देती है।

(९) इसके द्वारा विद्यार्थी के वास्तविक ज्ञान की जाँच नहीं हो पाती, इसमें अवसर की ही प्रधानता रहती है।

(१०) यह कोई वैज्ञानिक विधि नहीं है। यह सिंह का पद एक चूहे या बिल्ली को प्रदान कर देती है और शृगाल का पद एक सिंह को।

इन समस्त दोषों का अवलोकन करने के पश्चात् स्वतः ही यह प्रश्न उठता है कि इसको क्यों न समाप्त कर दिया जाय, तथापि परीक्षा अत्यन्त आवश्यक है। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) छात्रों की योग्यता तथा उनके द्वारा प्राप्त किये हुए ज्ञान की जाँच करने के लिये यह आवश्यक है, क्योंकि माता-पिता यह देखना चाहते हैं कि उनका बालक अपने परिश्रम के अनुकूल लाभ प्राप्त कर

रहा है या नहीं। इसकी सूचना परीक्षा के बिना प्राप्त नहीं हो सकती है। समाज को भी इसी के द्वारा संतुष्ट किया जाता है।

(२) पथ-प्रदर्शन के लिये परीक्षा परमावश्यक है।

(३) सामाजिक तथा आर्थिक जीवन-स्तर स्थापित करने के लिये यह अनिवार्य है।

(४) छात्रों के श्रेणी-विभाजन, चयन तथा उन्नति के लिये आवश्यक है।

(५) सीखने की क्रिया तथा शिक्षण के प्रोत्साहन के लिये भी इस की आवश्यकता है।

(६) शिक्षक, विधि, पुस्तक, पाठ्य-क्रम तथा विषय सूची की उपयोगिता की जाँच करने के लिये भी यह अत्यन्त अनिवार्य है।

इस प्रकार परीक्षा की उपयोगिता पर विचार करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि इसको समाप्त नहीं किया जा सकता है वरन् इसमें सुधार किये जाने चाहिये। विभिन्न विद्वानों ने इसके सुधार के लिये अपने विचार तथा सुझाव प्रकट किये हैं। वे निम्नलिखित हैं—

(१) वैयक्तिक कारण को शिथिल किया जाय। इसको शिथिल करने के लिये नवीन प्रणाली के प्रश्न प्रयोग में लाये जायँ।

(२) परीक्षकों का चयन सतर्कता से किया जाय। इनमें उन्हीं शिक्षकों को रखा जाय जो उस विषय को पढ़ाते हों।

(३) बाह्य-परीक्षा कम की जायँ।

(४) विद्यार्थियों का आन्तरिक लेखा-जोखा (Record) रखा जाय और उनको कक्षोन्नति का आधार बनाया जाय।

(५) प्रश्न ऐसे दिये जायँ जो बालकों के विषय-सम्बन्धी समस्त ज्ञान की वास्तविकता की जाँच करें।

(६) शिक्षा तथा परीक्षा में सम्बन्ध हो। परीक्षा शिक्षण-कार्य को अधिक सफल बनाने में सहायक हो।

(७) परीक्षा छात्रों में किसी प्रकार का भय उत्पन्न न करे वरन् वे परीक्षा को अपना सहायक तथा मित्र समझें।

(८) परीक्षाएँ निष्पक्ष हों और उनके द्वारा बालक की पूरी-पूरी जाँच की जाय। उसके शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक सभी प्रकार के विकास की जाँच हो। दो परीक्षकों से वही परीक्षा-पुस्तिका जँचवानी चाहिये।

निबन्धात्मक परीक्षा (Essay Type of Examination) :— इस प्रकार की परीक्षा के प्रति इतिहास में उपयोगिता तथा सार्थकता के प्रश्न पर विवाद उठ गया है। कतिपय विद्वानों की सम्मति है कि इतिहास की परीक्षा के लिये यह उपयोगी नहीं है, क्योंकि इसमें अधिकरण सम्बन्ध तत्व (Subjective Element) अधिक है। इसके विपक्ष में निम्नलिखित बातें कही जाती हैं—

(१) ऐसा विश्वास है कि निबन्धात्मक परीक्षा स्मरण-शक्ति की ही जाँच करती है अर्थात् यह स्मरण-शक्ति की ही परीक्षा है।

(२) यह रटने पर अधिक बल देती है जो मनोवैज्ञानिक रूप से दोष पूर्ण है।

(३) इसमें भाषा का प्राधान्य है। जिस विद्यार्थी का भाषा पर अधिकार है वह इसमें अधिक सफलता प्राप्त कर सकता है। इसमें सुलेख, भाषा, स्पष्टीकरण का ढंग आदि बातें अधिक कार्य करती हैं।

इस परीक्षा के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं—

(१) यह सत्य है कि रटने की क्रिया अति हानिकारक है परन्तु एक अच्छे राजनीतिज्ञ, सम्वाददाता तथा सुवक्ता के लिये रटना अनिवार्य है।

(२) जॉन ड्यूवी ने बालक की चार स्वाभाविक शक्तियों का उल्लेख किया है, जिनमें एक शक्ति प्रदर्शन भी है। प्रदर्शन के लिये निबन्धात्मक परीक्षा विशेष लाभदायक है। वह इसको संतुष्ट करने के लिये भाषा पर अधिकार करने के लिये कहते हैं। भाषा के द्वारा बालक अपनी बात का आदान-प्रदान कर सकता है।

(३) इसके द्वारा विद्यार्थी किसी वस्तु को क्रम में रखना सीख

जाते हैं। प्रश्न का ठीक प्रकार से क्रम-बद्ध करना एक कला है।

नई प्रणाली के प्रश्न (New Type Tests or Objective Tests)

मनोविज्ञान ने शिक्षा को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देन प्रदान की है। मनोवैज्ञानिकों ने परीक्षा की कुछ नवीन विधियाँ निकाली हैं। इन विधियों का उपयोग आजकल लोकप्रिय हो गया है। इन विधियों के अन्तर्गत परीक्षार्थी से छोटे-छोटे प्रश्न पूछे जाते हैं और उन्हें थोड़े ही समय में उनका उत्तर देना पड़ता है। वे परीक्षाएँ कई प्रकार की हैं। इन परीक्षाओं द्वारा सत्यासत्य, तिथि-ज्ञान, व्यक्तित्व-ज्ञान, तथ्य-ज्ञान और विचार-ज्ञान की जाँच छोटे-छोटे प्रश्नों द्वारा ली जाती है। हम यहाँ पर कुछ प्रकार की परीक्षाओं का वर्णन उदाहरणों सहित करेंगे।

(अ) सत्यासत्य की परीक्षा (True and False Tests)—इस प्रकार की परीक्षाओं में विद्यार्थियों को चिह्नों द्वारा उत्तर देने के लिये कहा जाता है कि दिये हुए कथन सत्य हैं या-असत्य। ये परीक्षाएँ शिक्षालय के प्रत्येक स्तर के लिये प्रयोग में लायी जा सकती हैं। इस प्रकार की परीक्षा का नमूना निम्नलिखित है—

निम्नलिखित कथनों को पढ़ो और सत्य कथन के सम्मुख ✓ का तथा असत्य कथन पर × चिह्न लगाओ।

(१) महावीर स्वामी का जन्म महात्मा बुद्ध से पूर्व हुआ था।

(२) मुहम्मद तुगलक शक्की मस्तिष्क का था।

(३) औरंगजेब का व्यवहार हिन्दुओं के साथ अच्छा था।

(४) अकबर खिलजी वंश का प्रतापी राजा था।

(५) प्रथम महायुद्ध में इङ्गलैण्ड तथा जर्मनी दोनों मित्र राष्ट्र थे।

(६) शिवाजी छापामार रणनीति में कुशल था।

(७) पृथ्वीराज चौहान ने बलवन को तालीकोट के मैदान में हराया था।

(८) समुद्रगुप्त वीणा बजाने में प्रवीण था।

प्रो० घाटे का विचार है कि इन परीक्षाओं से तथ्य-ज्ञान तथा निर्णय-शक्ति दोनों को जाँचा जाता है। ये कथन बड़ी सतर्कता तथा ध्यान के साथ तैयार किये जायँ। इनको तैयार करते समय अध्यापक विद्यार्थियों की मानसिक आयु तथा योग्यता का ध्यान रखे। इसमें हम हाँ या नहीं (Yes or No) के स्थान पर कोई चिह्न रखने के लिये भी कह सकते हैं।

(ब) अपवर्त्य-चयन की परीक्षा (The Multiple choice Tests):- यह प्रथम प्रकार की परीक्षा की अग्रगामी है। इसमें विद्यार्थी को अनेक उत्तरों में से उपयुक्त उत्तर छाँटना पड़ता है। सत्यासत्य की परीक्षा में उसको केवल सत्य और असत्य को बताना पड़ता है। इसमे उसको यह निर्णय करना पड़ता है कि अनेक कथनों में से कौनसा सत्य है। यह परीक्षा बहुत से अभिप्रायों को पूर्ण करती है। उदाहरणार्थ—

(I) **तिथियों के ज्ञान की परीक्षा** (To Test the Knowledge of Dates)—

(१) पानीपत का प्रथम युद्ध १५५६, १५२७, १५२६ ई० में हुआ था।

(२) शिवाजी का जन्म १५५२, १७०७, १६०२, १६३०, १६०५ ई० में हुआ था।

(३) गान्धी जी की मृत्यु १८५७, १९१६, १९४२, १९४८ ई० में हुई थी।

(II) इस परीक्षा को हम व्यक्तित्वों के चरित्र को जाँचने के लिये प्रयोग में ला सकते हैं—

(१) शिवाजी (कमजोर, साहसी, उदार, विद्वान्) था।

(२) अशोक (धार्मिक, साहसी, विद्वान, निर्भय) था।

(३) औरंगजेब (शक्की, अविश्वासी, धार्मिक) मनुष्य था।

(III) **तथ्य-ज्ञान की परीक्षा** (To Judge the Knowledge of Facts)—

(१) मुमताजमहल का पति (अकबर, जहाँगीर, औरंगजेब, शाहजहाँ) था।

(२) शिवाजी ने अफजलखाँ का वध (पूना, प्रतापगढ़, रायगढ़, दिल्ली) में किया था।

(३) मुहम्मद तुगलक ने (चाँदी, सोने, ताँबे, कागज, पीतल, चमड़े) का सिक्का चलाया था।

(IV) **निर्णय-शक्ति की परीक्षा** (To Test the Power of Judgement)—

मराठे पानीपत के मैदान में हार गये थे, क्योंकि

(१) उनके पास रसद की कमी थी।

(२) उनकी सेना कम थी।

(३) उन्होंने छापामार रणनीति छोड़ दी थी।

(४) उनके सेनापति अयोग्य थे।

(स) पूर्ति परीक्षा (Completion Test)—यह परीक्षा सर्वोत्तम है क्योंकि इसमें विद्यार्थियों को रिक्त स्थानों की पूर्ति करनी पड़ती है। कुछ मुख्य शब्दों को नहीं दिया जाता है और उनकी पूर्ति छात्र वाक्यों को पूर्ण करने के लिये करते हैं। इस परीक्षा के कुछ उदाहरण अधोलिखित हैं—

(१) बलवन—वंश का शासक था।

(२) अकबर का जन्म—में हुआ था।

(३) औरंगजेब ने अपने भाई—का वध कराया था।

(४) भारत का प्रथम-स्वतन्त्रता-युद्ध—में हुआ था।

(५) स्थायी प्रबन्ध—के समय में हुआ था।

(६) लार्ड डलहौजी ने—द्वारा बहुत सी रियासतों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया था।

(द) तुलनात्मक या प्रतिद्वन्द्वात्मक परीक्षा (The Matching Test)—इस प्रकार की परीक्षा में बिना किसी क्रम या क्रम के अनुसार

वस्तुएँ दी जाती हैं। छात्रों को दोनों सूचियों के विषयों की समानता प्रदर्शित करने के लिये कहा जाता है। इसके द्वारा कई अभिप्राय सिद्ध किये जा सकते हैं। उनके उदाहरण निम्नलिखित हैं—

(i) हम तिथियों की तुलना उनकी उपयुक्त घटनाओं के साथ कर सकते हैं जो कि किसी भी क्रम में न दी गई हों—

(१) पानीपत का प्रथम युद्ध	१७५७ ई०
प्लासी का युद्ध	१५२७ ई०
फतहपुरसीकरी का युद्ध	१५२६ ई०
(२) औरंगजेब की मृत्यु	११६२ ई०
अकबर की मृत्यु	१८०० ई०
गौतमबुद्ध की मृत्यु	१६०५ ई०
पृथ्वीराज की मृत्यु	४३३ ई० पू०
बाबर की मृत्यु	१७०७ ई०
अशोक की मृत्यु	१६४८ ई०
नाना फडनवीस की मृत्यु	१५३० ई०
गान्धीजी की मृत्यु	२३२ ई० पू०

(ii) इस परीक्षा में सेनापतियों की समानता उनके द्वारा किये गये युद्धों से की जा सकती है और अन्वेषकों की अन्वेषणों से तथा खोज करने वालों की खोज किये हुए स्थानों से की जा सकती है। उदाहरणार्थ—

वास्कोडिगामा	अमेरिका
एमडसन	आस्ट्रेलिया
कोलम्बस	भारतवर्ष
कप्तान कुक	दक्षिणी ध्रुव
मेगेलेन	प्रशान्त महासागर

(य) कालानुक्रम परीक्षा (A Test for Time-Sequence)— यह परीक्षा समय के अनुक्रम की जाँच करने के लिये विशेष लाभदायक है—

(१) निम्नलिखित व्यक्तियों के नाम कालानुक्रम के अनुसार रखो—
शाहजहाँ
अशोक
गौतम बुद्ध
समुद्रगुप्त
महारानी विक्टोरिया
अलाउद्दीन खिलजी
शिवाजी
अकबर
नादिरशाह

(२) छात्रों से घटनाओं को कालानुक्रम के अनुसार रखने के लिये कहा जा सकता है—
बेसीन की सन्धि
पानीपत का द्वितीय युद्ध
सैनिक विद्रोह
शिवाजी का राज्याभिषेक
उत्तराधिकार का युद्ध

इस प्रकार नवीन-प्रणाली के प्रश्नों को देखने के पश्चात् यह प्रश्न उठता है कि इस प्रणाली के गुण-दोष क्या हैं ? इन प्रश्नों को शिक्षक द्वारा निर्मित परीक्षा (Teacher Made Tests) भी कहते हैं । उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर निम्न पंक्तियों में दिया जाता है ।

नवीन प्रणाली के गुण (Qualities of New Type Tests) :—

(१) इस प्रणाली के द्वारा हम अल्प समय में अनेक तथ्यों की जाँच कर सकते हैं । निबन्धात्मक परीक्षा में हमें इतना अवसर प्राप्त नहीं होता है, क्योंकि उसकी प्रकृति वर्णनात्मक है ।

(२) इसके द्वारा तथ्यों के ज्ञान की ही परीक्षा नहीं होती है, वरन्

कालानुक्रम तिथि-ज्ञान तथा निर्णय-शक्ति की जाँच की जाती है। यह परीक्षा निबन्धात्मक परीक्षा की पर्याप्त मात्रा में पूरक है।

(३) भाषा का भाग इसमें नहीं होता है, जो कि निबन्धात्मक परीक्षा में बहुत बड़ा भाग लेती है। भाषा निबन्धात्मक परीक्षा में परीक्षक को अत्यन्त प्रभावित करती है। निबन्धात्मक परीक्षा के इस दोष को यह परीक्षा दूर करतो है।

(४) इसमें वैयक्तिक प्रभाव को भी समाप्त किया गया है। निबन्धात्मक परोक्षा में परीक्षक का स्वभाव विशेष भाग लेता है परन्तु उसको यहाँ समाप्त कर दिया गया है।

नवीन-प्रणाली के दोष (Defects of New Type Tests) :—सामाजिक विषयों को जाँच के लिये जब इस प्रणाली का प्रयोग किया गया तब निम्नलिखित दोष दृष्टिगोचर हुए—

(१) इन प्रश्नों के बनाने में अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। सबसे अधिक कठिनाई अपवर्त्य-चयन की परीक्षा में होती है, क्योंकि सभी मनुष्यों की विचारधाराएँ एक समान नहीं होती हैं। उदाहरणार्थ—शिवाजी (बहादुर, राजनीतिज्ञ, साहसी, विद्वान) था। इसमें विभिन्न व्यक्तियों की विभिन्न विचारधाराएँ हो सकती हैं, क्योंकि मानव जटिलता से पूर्ण है और ऐतिहासिक चरित्र तो विशेष रूप से जटिल होते हैं। उनके विषय में परीक्षक कैसे कह सकता है कि मेरा विचार ही सत्य है। परन्तु प्रो० घाटे का विचार है कि यदि इतिहास का शिक्षक अपने विद्यार्थियों को योग्यता तथा निष्पक्षता के साथ इनके चरित्र के विषय में ज्ञान देगा तो ऐसी कठिनाई उत्पन्न नहीं होगी। छात्रों में शिक्षक वैज्ञानिक दृष्टिकोण उत्पन्न करे जिससे वे निष्पक्ष निर्णय कर सकें।

(२) यह परीक्षा कल्पित कार्यों के लिये छात्रों को प्रोत्साहित करती है। यह केवल छात्रों को इधर-उधर चिह्न लगाने के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं सिखाती है। ये छात्र कहानियों के विषय में कुछ नहीं लिख सकते हैं, क्योंकि उनको लिखने का कार्य कुछ नहीं दिया जाता है।

इससे छात्रों में प्रश्नों के उत्तर लिखने का ढंग नहीं उत्पन्न किया जा सकता है।

(३) इसके विरुद्ध तीसरा प्रबल आरोप यह है कि इन प्रयोगों द्वारा छात्रों के विचार, तर्क तथा बुद्धि की शक्तियों का विकास नहीं होता है। साधारण प्रश्नों तक ही इन प्रयोगों का उपयोग हो सकता है। इनके द्वारा किसी प्रकार की शृंखला अथवा क्रमबद्धता नहीं स्थापित की जा सकती है। साधारण विचार तथा तर्क शक्ति निबन्धात्मक परीक्षा से ही छात्रों में उत्पन्न की जा सकती है। यह परीक्षा निबंधात्मक परीक्षा का स्थान ग्रहण नहीं कर सकती है और न यह उच्चतर कक्षाओं के लिये उपयुक्त है। इसके द्वारा केवल उनके तथ्य-ज्ञान, तिथि तथा कालानुक्रम की जाँच की जा सकती है।

इतिहास में केवल तथ्यों की जाँच करना ही आवश्यक नहीं है वरन् इसमें प्रदर्शन की भी आवश्यकता है इसलिए निबन्धात्मक परीक्षा भी अनिवार्य है। प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी वस्तु को कण्ठस्थ करने की आवश्यकता पड़ती है। जॉनसन (Johnson) का विचार है कि शिक्षक भी बिना कण्ठस्थ किये शिक्षक नहीं बन सकता। यहाँ तक कि वकील, डाक्टर, राजनीतिज्ञ को भी इसे ग्रहण करना पड़ता है। नवीन परीक्षा-प्रणाली हमारे विद्यार्थियों को चलता फिरता विश्वकोष नहीं बना सकती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जॉनसन के इस कथन में सत्यता है कि, "इतिहास में स्मरण-शक्ति को कम करना इतिहास को कम करना है।" इतिहास में दोनों प्रकार की परीक्षा का प्रयोग किया जाना चाहिये।

परीक्षा के लिये प्रश्न-पत्र बनाते समय निम्नलिखित सिद्धान्तों को ान में रखना चाहिये --

निम्नस्तर के प्रश्न-पत्र के लिये सिद्धान्त (Principles for the Paper of Junior Stage):—

(१) यह स्तर कहानी बताने का है। इसलिये इस स्तर पर हम ऐतिहासिक पाठ्य-वस्तु को कहानियों या आत्मकथाओं के रूप में रखते

हैं। इसलिये हमको छात्रों से परीक्षा में कहानी या आत्मकथा लिखवाना चाहिये।

(२) छोटे-छोटे प्रश्न पूछे जाने चाहिये।

(३) नवीन परीक्षा-प्रणाली का प्रयोग किया जाय।

(४) शिक्षक छात्रों के समय-ज्ञान तथा तिथि-ज्ञान की जाँच करने के लिये कुछ प्रश्न रखें।

(५) मौखिक परीक्षा भी होनी चाहिये चाहे वह लिखित परीक्षा के पूर्व या पश्चात् कर ली जाय।

माध्यमिक स्तर के प्रश्न-पत्र के लिये सिद्धान्त (Principles for the Paper of Intermediate Stage)—

(१) प्रश्न छोटे-छोटे होने चाहिये।

(२) कुछ प्रश्न वियोजक प्रकृति (Deductive Nature) के हों। सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक दशा पर जो प्रश्न रखें वे स्पष्ट तथा मुख्य प्रकार के हों।

(३) प्रश्न-पत्र में नवीन परीक्षा-प्रणाली के प्रश्न भी रखे जायं।

(४) कालानुक्रम की जाँच करने के लिये भी प्रश्न रखने चाहिये।

(५) स्मरण-शक्ति तथा प्रदर्शन-शक्ति की जाँच के लिये कुछ प्रश्न निबन्धात्मक प्रणाली के रखे जायँ।

(६) नियमानुसार एक प्रश्न मानचित्र के कार्य का दिया जाय।

उच्चस्तर के प्रश्न-पत्र के लिये सिद्धान्त (Principles for the Question Paper of Senior Stage) :—

निम्न प्रकार की प्रवृत्ति के प्रश्न रखे जायँ—

(१) निबन्धात्मक;

(२) कालानुक्रम की जाँच करने करने वाले प्रश्न;

(३) वर्तमान काल की समस्याओं से सम्बन्धित प्रश्न;

(४) नियोजक प्रकृति वाले प्रश्न;

(५) मानचित्र के कार्य की रुचि उत्पन्न करने वाले प्रश्न।

उच्च तथा माध्यमिक स्तर के इतिहास के प्रश्न-पत्र निम्न बातों को रखें और उसमें अङ्कों का वितरण इस प्रकार हो—

(१) तथ्य ज्ञान के प्रश्न (आधुनिक परीक्षा-प्रणाली के अनुसार)	३०
(२) हस्तकार्य से सम्बन्धित प्रश्न (मानचित्र, युद्ध-योजना आदि)	२०
(३) साधारण योग्यता के प्रश्न (निबन्धात्मक प्रश्न)	२५
(४) सूत्रों पर प्रश्न	२५
	१००

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर दो प्रश्न-पत्र परिशिष्ट नं० २ में नमूने के रूप में दिये गये हैं।

प्रश्न

१—वर्तमान इतिहास-परीक्षा में कौन-कौन से दोष हैं और इनको किस प्रकार दूर किया जा सकता है ?

(What are the defects of present system of History examination and how they can be remedied.)

२—नवीन परीक्षा-प्रणाली से क्या अर्थ समझते हो ? इसके गुण-दोषों का विवेचन कीजिए ?

(What do you mean by New Type Tests or Objective Tests ? Give merits and demerits of them.)

परिशिष्ट—१

इतिहास में पाठ-योजना बनाने के लिए कुछ संकेत

(A Few Hints for the Preparation of Lesson Notes in History)

विश्व के समस्त शिक्षा प्राप्त व्यक्ति हरबार्ट के ऋणी हैं। वह मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का प्रवर्त्तक था। उसने सामान्य विधि को चार सोपानों में बाँटा था। उसके शिष्यों ने "स्पष्टता" नामक, सोपान को दो भागों में विभाजित किया; प्रथम 'प्रस्तावना' और द्वितीय 'विषय प्रवेश'। इस प्रकार उसी के नाम से पाँच सोपानों की सामान्य विधि प्रचलित है। शिक्षण दृढ़ क्रम नहीं हैं वरन् यह शिक्षक तथा उसके ढंग पर आधारित है। तथापि कुछ सामान्य सिद्धान्त पाठ-योजना के लिए प्रस्तावित किये गये हैं जो कि युवकों तथा प्रशिक्षण के विद्यार्थियों के लिए मार्ग दर्शक हैं :—

(१) पाठ योजना मनोवैज्ञानिक ढंग से बनायी जानी चाहिए।

(२) यह क्रम बद्ध होनी चाहिए।

(३) इतिहास के शिक्षक को पाठ-योजना तैयार करते समय सूत्रों का लाभ उठाना चाहिये; अर्थात् उसको स्थूल से सूक्ष्म की ओर, ज्ञात

से अज्ञात की ओर, सरल से कठिन की ओर आदि सूत्रों को ध्यान में रखकर योजना बनानी चाहिए।

(४) पाठ-योजना को अन्वितियों में विभाजित करना लाभदायक है। किसी भी पाठ की तीन से अधिक अन्वितियाँ नहीं करनी चाहिए। यदि किसी के जीवन-चरित्र की पाठ-योजना बनानी है तो उसे हम इस प्रकार तीन अन्वितियों में विभाजित कर सकते हैं :—(१) बाल्यावस्था अधिकार-प्राप्ति (२) कार्य (३) योग्यता-तुलना के रूप में। यदि किसी युद्ध का वर्णन है तो—(१) कारण (२) प्रत्यक्ष आक्रमण (३) सन्धि या परिणामरूप में।

(५) इतिहास की पाठ-योजना में समय, स्थल आदि का पूर्णरूपेण ध्यान रखना चाहिये। यदि कहानी निम्नस्तर के लिए चुनी गई है तो भी उनको कालक्रम में रखना चाहिए।

इन सामान्य सिद्धान्तों के अतिरिक्त जो पाँचों सोपानों में ध्यान देने योग्य बाते हैं वे इस प्रकार निम्नलिखित हैं :—

सर्व प्रथम श्यामपट या पुस्तिका पर निम्न बातें लिखी जानी चाहिये—विषय, कक्ष, दिनाङ्क, विद्यालय, छात्राध्यापक का नाम, अवधि, समय चक्र, प्रकरण तथा औसत आयु।

(१) **सामान्य उद्देश्य** (General Aims) :—इनका सम्बन्ध विषय से रहता है और ये इतिहास के प्रत्येक पाठ में लगभग एक से ही रहते हैं। सामान्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :—

(१) विद्यार्थियों को इतनी मानसिक सामर्थ्य प्राप्त कराना कि वे ऐतिहासिक तथा व्यावहारिक प्रमाणों की जाँच कर सकें।

(२) स्मरण-शक्ति, कल्पना-शक्ति तथा तथ्यातथ्यविचार-शक्ति को विकसित करना।

(३) देशाभिमान तथा विश्व-बन्धुत्व की भावना को जागृत करना।

(४) विद्यार्थियों की दृष्टि को विशाल बनाना और उनको अच्छे नागरिक बनने के लिए प्रोत्साहित करना।

(५) विद्यार्थियों को मानव समाज के विकास से परिचित कराना।

(६) दैनिक जीवन का उपयोगी तथा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कराना।

(७) विद्यार्थियों में वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण उत्पन्न करना।

यह आवश्यक नहीं है कि उपर्युक्त सभी उद्देश्यों को प्रत्येक पाठ के प्रयोग में लाया जा सके और न एक पाठ इन सबकी पूर्ति कर सकता है।

२. **मुख्य उद्देश्य** (Specific Aim) :—मुख्य उद्देश्य प्रकरण से सम्बन्धित होता है। यह अत्यन्त स्पष्ट तथा प्रमुख होना चाहिए। यह शिक्षक के उद्देश्य को प्रकट करे जो वह उस विशेष प्रकरण से प्राप्त करना चाहता है। यह लम्बा नहीं होना चाहिए वरन् सरल तथा संक्षिप्त होना चाहिए।

३. **सहायक सामग्री** (Material Aid) :—सहायक सामग्री वह साधन है जिसके द्वारा पाठ के शिक्षण में एक प्रभावशाली वातावरण स्थापित किया जाता है। परन्तु सहायक सामग्री को प्रत्येक पाठ में प्रयोग करना आवश्यक नहीं है। जहाँ इसकी आवश्यकता हो वहीं इसका प्रयोग किया जाय। सहायक सामग्री का चयन करते समय निम्न-लिखित गुणों को ध्यान में रखना चाहिये :—

(१) यह सीमित हो; अर्थात् सहायक सामग्री इतनो अधिक नहीं होनी चाहिये कि जिससे शिक्षक एक बाजीगर का स्थान प्राप्त कर ले।

(२) यह अधिक व्ययी नहीं होनी चाहिये।

(३) इसको उपयुक्त समय तथा स्थल पर प्रस्तुत करना चाहिए।

(४) यदि चित्र प्रदर्शित किये जायें तो वे एक साथ ही नहीं उतार लिये जायें वरन् उन पर प्रश्न पूछे जायें तथा उनका उचित प्रयोग करने के प्रश्चात् उतारा जाय।

(५) यह अत्युत्तम हो यदि शिक्षक कक्षा में स्वयं मानचित्र तथा युद्ध योजनाएँ श्यामपट पर बनाकर छात्रों को स्पष्ट करे।

(६) सहायक सामग्री औसत आकार की होनी चाहिए।

४. **पूर्व ज्ञान** (Previous Knowledge) :—शिक्षक इसको निर्धारित करने में सतर्क रहे, क्यों कि पाठ की प्रस्तावना का बनना-बिगड़ना इसी पर आधारित है। प्रस्तावना की आधार शिला ही पूर्व ज्ञान है। नवीन पाठ में शिक्षक को बड़ी सतर्कता के साथ इसको मानना चाहिए।

५. **प्रस्तावना** (Introduction) :—इससे पाठ प्रारम्भ होता है। यह अपना अपूर्व स्थान रखती है। "अच्छा आरम्भ ही आधा कार्य है" यह कहावत प्रस्तावना के विषय में सत्य है। इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं :—

(१) नवीन पाठ के शिक्षण के लिए प्रभावशाली वातावरण तैयार करना।

(२) पूर्व ज्ञान की परीक्षा लेना।

(३) विद्यार्थियों को नवीन पाठ ग्रहण करने के लिए तैयार करना।

अब प्रश्न यह उठता है कि अच्छी प्रस्तावना के क्या गुण होने चाहिये। वे निम्नलिखित हैं :—

(१) प्रस्तावना न अधिक लम्बी हो और न संक्षिप्त। तीन या चार प्रश्न पर्याप्त हैं।

(२) समस्त प्रश्न मनोवैज्ञानिक क्रम के अनुसार हों। उनमें पारस्परिक सम्बन्ध होना चाहिए। वे बिखरे हुए नहीं होने चाहिये।

(३) प्रस्तावना निर्धारित पूर्व ज्ञान पर आधारित होनी चाहिये।

(४) यह असीमित तथा निरर्थक नहीं होनी चाहिये।

इस स्तर पर शिक्षक जादूगर का स्थान ग्रहण करे। जिस प्रकार एक जादूगर दर्शकों के स्थान को अपनी ओर आकर्षित किये बिना अपना कार्य प्रारम्भ नहीं करता, उसी प्रकार शिक्षक भी अपने छात्रों

के ध्यान को प्रस्तावना द्वारा अपनी ओर खींचे और उनको तैयार करके नवीन पाठ प्रदान करे।

६. **उद्देश्य कथन** (Statement of Aim):—प्रस्तावना के पश्चात् शिक्षक अपना उद्देश्य छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करे। उद्देश्य कथन में निम्नलिखित गुण होने चाहिये—

(१) यह कथन उस पाठ के उद्देश्य को सरल तथा स्पष्ट करे जो कि उसको प्राप्त करना है।

(२) यह संक्षिप्त तथा सरल भाषा में हो।

(३) यह उस पाठ की तत्कालीन उपयोगिता पर प्रकाश डाले।

७. **प्रस्तुतिकरण** (Presentation) :—यह वह स्तर है जिसमें छात्रों को नवीन पाठ प्रदान किया जाता है। भाषा के पाठों में प्रस्तुतिकरण के प्रारम्भ करने में कोई कठिनाई नहीं आती है, वरन् यह इतिहास के पाठों में उत्पन्न होती है। निम्नलिखित सिद्धान्तों पर इतिहास के पाठ के शिक्षण में ध्यान देना चाहिये—

(१) यह स्तर अन्वितियों में विभाजित कर लेना चाहिये। यह सदैव उपयोगी सिद्ध होगा यदि पाठ को दो या तीन अन्वितियों में बाँट लिया जाय।

(२) पाठ्यवस्तु कालक्रम के अनुसार होनी चाहिये।

(३) समय ज्ञान तथा कालानुभव के लिए कुछ प्रश्न किये जाने चाहिये।

(४) प्रश्नों में मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध होना चाहिए। जहाँ मनोवैज्ञानिक क्रम असम्भव है वहाँ अध्यापक कथन के द्वारा सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।

(५) प्रस्तुतिकरण का प्रारम्भ यदि प्रश्नों के द्वारा किया जाय तो अच्छा होगा। हम उसका आरम्भ एक चित्र, मॉडल तथा कहानी से भी कर सकते हैं।

(६) वर्तमान काल का भूतकाल से सदैव सम्बन्ध जोड़ना चाहिये।

(७) पाठ छात्रों की प्रादेशिक भाषा में प्रस्तुत किया जाय।

(८) निम्नलिखित प्रकार के प्रश्नों को प्रयोग में नहीं लाया जाय—

(अ) जटिल प्रश्न

(ब) सूक्ष्म प्रश्न

(स) हाँ या नहीं में आने वाले प्रश्न

(९) प्रश्न विचार शक्ति को जागृत करने वाले हों।

(१०) सामान्यीकरण इतिहास में सम्भव नहीं है।

(११) प्रस्तुतिकरण छात्रों की बुद्धि तथा योग्यता के अनुसार होना चाहिए।

८. **पुनरावृत्ति** (Recapitulation) :—इस स्तर का मुख्य उद्देश्य छात्रों के ग्रहण किये हुए पाठ को जाँचना है तथा छात्रों के मस्तिष्क में नवीन पाठ को व्यवस्थित करना है। इस स्तर पर अधिक समय व्यय नहीं करना चाहिये। इसमें अधिक प्रश्न नहीं होने चाहिए। यह स्तर शिक्षक के कार्य की भी परीक्षा लेता है। इसमें चार या पाँच प्रश्न पूछे जाने चाहिये।

९. **श्याम-पट-सारांश** (Black-Board Summary) :—श्याम-पट-सारांश पाठ के साथ-साथ विकसित किया जाना चाहिए। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह पाठ के पश्चात् छात्रों की सहायता से विकसित होना चाहिए। वे पुनरावलोकन के प्रश्नों के उत्तरों को ही श्याम-पट-सारांश में रखते हैं। उत्तम यही है कि श्याम-पट-सारांश साथ साथ विकसित हो परन्तु छात्रों को साथ-साथ लिखने नहीं दिया जाय। इसमें पूर्ण वाक्य नहीं लिखे जायँ। उदारणार्थ—पानीपत का प्रथम युद्ध बाबर तथा इब्राहीम लोदी में हुआ था। इसके स्थान पर यह लिखा जाना चाहिए।

पक्ष—बाबर तथा इब्राहीम लोदी।

यह समस्त पाठ का सारांश होना चाहिए न कि उसका पूरक। श्यामपट लेख, स्वच्छ, सुन्दर तथा एक समान होना चाहिए।

१०. **गृहकार्य** (Home-work):—गृह-कार्य देना एक सुविधाजनक कार्य नहीं है। इसको देते समय शिक्षक को विचार कर लेना चाहिये। उसको गृह-कार्य देते समय निम्नलिखित सिद्धान्तों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) गृह-कार्य छात्रों की योग्यता तथा रुचि के अनुसार होना चाहिए।

(२) गृहकार्य छात्रों के लिए भाररूप न हो जाय।

(३) दूसरे विषयों के गृह-कार्य को ध्यान में रखकर इतिहास में गृह-कार्य दिया जाय।

(४) गृह-कार्य में विभिन्नता होना चाहिए। वह एक सा नहीं होना चाहिए।

(५) स्वाध्ययन को प्रोत्साहित करे।

(६) स्कूल के कार्य की भी पूर्ति करे।

(७) पुस्तकालय के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करे।

गृह-कार्य का विशेष महत्व है, परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिए कि गृह-कार्य तभी सफल हो सकता है जब वह निश्चित उद्देश्य से दिया जाय।

उपर्युक्त इन सभी बातों के अधिक स्पष्टीकरण के लिए कुछ पाठ सूत्र दिये जाते हैं, जिनकी सहायता से विद्यार्थी अधिक सरलता के साथ इतिहास की पाठ-योजना बना सकते हैं। सम्भवतः इन पाठ-सूत्रों को समझने में उन विद्यार्थियों को थोड़ी सी कठिनाई होगी जिनके प्रशिक्षण-महाविद्यालयों में वस्तु और विधि को पृथक-पृथक चक्र विभागों में लिखने की प्रणाली प्रचलित है। इस विधि के अनुसार एक चक्र विभाग में वस्तु को लिखा जाता है और दूसरे में विधि को। परन्तु यहाँ प्रत्यक्ष प्रणाली को अपनाया गया है। इस पर थोड़ा सा ध्यान देने से पाठ सूत्र आसानी से समझ में आ जायेंगे तथा दोनों विधियों में भी कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई पड़ेगा।

पाठ सूत्र—१

दिनाङ्क	५-३-६०	**समयचक्र**	तृतीय
कक्षा	६	**अवधि**	४० मिनट
विषय	भारतीय इतिहास	**औसत आयु**	११ वर्ष
प्रकरण	गौतम बुद्ध का प्रारम्भिक जीवन		

विद्यालय—आर० ई० आई० हाई स्कूल, दयालबाग
शिक्षण विधि—कथन और प्रश्नोत्तर प्रणाली
छात्राध्यापक—जे० बी० मिश्रा

सामान्य उद्देश्य—(१) छात्रों को इतिहास का वास्तविक ज्ञान करा कर उनकी बुद्धि एवं चरित्र का विकास करना।

(२) घटनाओं की परस्पर तुलना करते हुए भूत काल का वर्तमान काल से सम्बन्ध स्थापित करना।

(३) इतिहास के क्रमिक विकास से छात्रों में इसके प्रति रुचि उत्पन्न करना।

(४) छात्रों को योग्य एवं देशभक्त नागरिक बनाना।

विशिष्ट उद्देश्य—छात्रों को गौतम बुद्ध के प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं से परिचित कराना।

सहायक सामग्री—(१) सिद्धार्थ का चिन्तन मुद्रा में एक चित्र।
(२) सिद्धार्थ की हंस पर दया का एक चित्र।
(३) सिद्धार्थ का वृद्ध, रोगी एवं शव को देखने का चित्र।
(४) सिद्धार्थ के महाभिनिष्क्रमण का चित्र।
(५) तत्कालीन भारतवर्ष का मानचित्र।

पूर्व ज्ञान—छात्र महात्मा गांधी तथा उनके मुख्य सिद्धान्तों से परिचित हैं।

प्रस्तावना—

प्र० भारत के नेताओं में राष्ट्रपिता किसे कहा जाता है?
प्र० गांधीजी को राष्ट्रपिता क्यों कहा जाता है?
प्र० गान्धीजी के मुख्य सिद्धान्त क्या थे?

उद्देश्य कथन—आज हम ऐसे ही महान् व्यक्ति गौतम बुद्ध के प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं के विषय में पढ़ेंगे, जिसने सबसे पहले प्रेम, सत्य और अहिंसा का सुखदायी संदेश भारतीय जनता को प्रदान किया था।

प्रस्तुतिकरण

प्रथमान्विति :—सिद्धार्थ के जन्म से विवाह तक।

प्र० भारतवर्ष के उत्तर में कौन सा पर्वत है?
स० उ० हिमालय पर्वत है।

मानचित्र प्रयोग—छात्रों से मानचित्र में हिमालय पर्वत पूछा जायगा।

अ० कथन—इसी हिमालय पर्वत की तराई में लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व एक शुद्धोधन नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी राजधानी रोहिणी नदी के किनारे पर बसी हुई सुन्दर नगरी कपिलवस्तु थी। शुद्धोधन के दो रानियाँ थी—मायादेवी और प्रजापति। राजा के पास धन-दौलत आदि सबकुछ था। उनको केवल एक ही दुख था कि उनके कोई सन्तान नहीं थी।

प्र० तुममें से स्वप्न किस-किस ने देखा है?

स० उ० छात्र विभिन्न उत्तर देंगे।

प्र० तुमने अपना स्वप्न किसको सुनाया था ?

स० उ० छात्र विभिन्न उत्तर देंगे।

अ० कथन—तुम लोगों की ही भाँति शुद्धोधन की प्रथम रानी मायादेवी ने भी स्वप्न देखा। उसने देखा कि एक छः दाँतों वाला हाथी है जिस की सूँड़ में एक सफेद कमल का फूल है और वह हाथी उसके पलंग के चक्कर काट रहा है। रानी इस अद्भुत स्वप्न को देखकर जाग पड़ी। उसने अपना स्वप्न राजा को सुनाया। राजा ने स्वप्न का फल पण्डितों से पूछा तो उन्होंने बताया कि एक महान् व्यक्ति का जन्म होगा।

प्र० यात्रा से थककर तुम क्या करते हो ?

स० उ० हम आराम करते हैं।

मानचित्र प्रयोग—छात्रों से मानचित्र में लुम्बिनी पूछा जायगा।

अ० कथन—एक बार मायादेवी अपने पिता के घर जा रही थी। यात्रा के कारण जब थक गई तो

लुम्बिनी नामक वन में ठहर गई। वहीं पर मायादेवी के पुत्र पैदा हो गया।

प्र० बच्चे के जन्म के समय ज्योतिषियों को क्यों बुलाते हैं ?

उ० बच्चे के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए बुलाते हैं।

प्र० शुद्धोधन बच्चे के जन्म के समय क्या करता ?

उ० ज्योतिषियों को बुलाता।

अ० कथन— शुद्धोधन ने ज्योतिषियों को बुलाया और बच्चे के विषय में बताने को कहा। उन्होंने बच्चे का नाम सिद्धार्थ रखा और यह बताया कि यह एक महान् सम्राट् होगा। यदि इसने दुखी व्यक्तियों को देख लिया तो यह एक महान् संन्यासी होगा।

प्र० बच्चे के जन्म के समय उनके सम्बन्धी क्या करते ?

स० उ० बधाई देने आते।

अ० कथन— सिद्धार्थ के जन्म के समय बधाई देने वालों का ताँता लग गया। प्रजा के लोग, सामन्त-गण तथा प्रतिवासी राज्यों से मनुष्य आने लगे। इन्हीं आने वालों में एक असित नाम के सन्त भी थे। शुद्धोधन ने असित को अपना पुत्र दे दिया, परन्तु असित सिद्धार्थ को गोद में लेकर रोने लगे।

प्र० असित के रोने का क्या कारण हो सकता था ?

स० उ० छात्र विभिन्न उत्तर देंगे।

अ० कथन— शुद्धोधन को असित को रोते हुए देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। इस पर उनको अपने पुत्र के मरने का सन्देह हुआ। राजा से असित ने कहा कि मैं इसलिये रोया हूँ कि जब यह एक महान् संन्यासी होगा तब मैं इसे देखने के लिए न रहूँगा। कुछ दिन बाद सिद्धार्थ के जन्म के सात दिन पश्चात् मायादेवी की मृत्यु हो गई और सिद्धार्थ का पालन-पोषण प्रजापति ने किया।

प्र० सिद्धार्थ के संन्यासी होने की बात सुनकर शुद्धोधन क्या करते?

उ० सिद्धार्थ को संन्यासी होने से रोकते।

अ० कथन— सिद्धार्थ का बड़े लाड़ प्यार से पालन करना प्रारम्भ कर दिया। उनको भाँति-भाँति के खिलौनों तथा अन्य ऐश्वर्य की वस्तुओं में रमाने का प्रयत्न किया जाने लगा जिससे सिद्धार्थ सांसारिक बातों में फँस जाये और संन्यासी होने की प्रवृत्ति उत्पन्न न हो।

प्र० बच्चे खिलौना मिलने पर क्या करते हैं?

उ० उनसे खेलते हैं।

प्र० सिद्धार्थ को खिलौनों से क्या करना चाहिये था?

उ० खेलना चाहिए था।

प्र० (चित्र दिखाकर) इस चित्र में तुम क्या देखते हो?

स० उ० छात्र वर्णन करेंगे।

अ० कथन— शुद्धोधन ने सिद्धार्थ को सांसारिक बातों में रमाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया मगर वे

सफल न हो सके। सिद्धार्थ को न तो खिलौने ही अच्छे लगते थे और न उनका मन खेलने में लगता था। वे हर समय विचार मग्न रहते थे।

प्र० घायल पक्षी को देखकर तुम क्या करोगे ?

स० उ० हम उस पर दया करेंगे।

प्र० (चित्र दिखाकर) इस चित्र में तुम क्या देखते हो ?

स० उ० छात्र वर्णन करेंगे।

अ० कथन— एक वार सिद्धार्थ के चचेरे भाई देवदत्त ने एक पक्षी को अपने वाण से घायल कर दिया। सिद्धार्थ को इस घटना से अत्यन्त दुख हुआ। उन्होंने पक्षी को उठा लिया। देवदत्त ने अपना शिकार माँगा। सिद्धार्थ ने देने से मना कर दिया। अन्त में यह झगड़ा निर्णय के लिए शुद्धोधन के पास आया।

प्र० अगर तुम राजा होते तो क्या निर्णय करते ?

स० उ० हम पक्षी को सिद्धार्थ को दे देते।

अ० कथन— शुद्धोधन ने भी पक्षी सिद्धार्थ को ही दे दिया। इस घटना का सिद्धार्थ पर विशेष प्रभाव पड़ा। उनका हृदय दया से भर गया। वे और अधिक चिन्तनशील हो गये।

प्र० सिद्धार्थ के संन्यासी हो जाने से शुद्धोधन को क्या हानि होती ?

स० उ० उनकी शासन व्यवस्था खराब हो जाती।

अ० कथन— जब शुद्धोधन के सब प्रयत्न उनके चित्त को बदलने में असफल हो गये तो उनको बड़ी चिन्ता हुई। वे जितना ही सिद्धार्थ को सांसारिक बातों में रमाना चाहते थे उतना ही सिद्धार्थ का मन संसार से हटता जाता था। अन्त में उन्होंने सिद्धार्थ का विवाह करना ही उचित समझा। इस प्रकार शुद्धोधन ने अपने सामन्त केलिनगर के राजा सुप्रबुद्ध को कन्या यशोधरा से सिद्धार्थ का विवाह करा दिया।

श्यामपट-सारांश

(१) सिद्धार्थ कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन के पुत्र थे।

(२) पण्डितों ने उनके विषय में बताया था कि वे या तो एक महान् सम्राट् या संन्यासी होंगे।

(३) सिद्धार्थ बचपन से ही चिन्तनशील थे। उनका ध्यान इस ओर से हटाने के लिए यशोधरा से उनका विवाह करा दिया गया था।

द्वितीयान्विति

अ० कथन— शुद्धोधन ने सिद्धार्थ को हर प्रकार से प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। उनके लिए एक महल बनवा दिया जिसमें सब प्रकार के सुख थे। इस महल में रहते-रहते सिद्धार्थ ऊब गये ?

प्र० मन को प्रसन्न करने के लिए सिद्धार्थ क्या करते ?

स० उ० बाहर घूमने के लिए जाते।

अ० कथन—सिद्धार्थ ने ऐसा ही किया। उन्होंने अपने पिता से बाहर घूमने की आज्ञा माँगी। शुद्धोधन ने आज्ञा दे दी। परन्तु शहर में ऐसा प्रबन्ध करा दिया कि सिद्धार्थ को कोई दुखी व्यक्ति दिखाई न दे।

प्र० सिद्धार्थ को दुखी व्यक्ति दिखाई दे जाता तो क्या होता ?

स० उ० सिद्धार्थ का मन दुखी हो जाता।

प्र० (चित्र दिखाकर) इस चित्र में तुम क्या देखते हो ?

स० उ० छात्र वर्णन करेंगे।

अ० कथन—जब सिद्धार्थ घूमने गये तो पिता के लाख प्रयत्न करने पर भी उनको वृद्ध मनुष्य दिखाई दे गया। उन्होंने सारथी से पूछा कि यह व्यक्ति ऐसा क्यों हो गया है ? उत्तर मिला कि बुढ़ापे के कारण हो गया है। सिद्धार्थ ने फिर पूछा कि बुढ़ापे से यही ऐसा हो गया है या सब हो जाते हैं ? उत्तर मिला कि सब हो जाते हैं। सिद्धार्थ आगे न जाकर वहीं से लौट आये।

प्र० सड़क पर पड़े रोगी मनुष्य को देखकर तुम क्या करोगे ?

स० प्र० छात्र विभिन्न उत्तर देंगे।

प्र० (चित्र दिखाकर) इस घित्र में तुम क्या देखते हो ?

स० उ० छात्र वर्णन करेंगे।

अ० कथन—इस व्यक्ति को देखकर सिद्धार्थ का मन दुख से भर गया। उन्होंने अपने सारथी से पूछा कि यह ऐसा क्यों हो गया है ? सारथी न कहा कि रोग से हो गया है। सिद्धार्थ ने पूछा कि रोग से ऐसा यही हो गया है या सब हो जाते हैं ? उत्तर मिला कि सब हो जाते हैं। सिद्धार्थ दुखी मन से लौट आये।

प्र० (चित्र दिखाकर) इस चित्र में तुम क्या देखते हो ?

स० उ० छात्र वर्णन करेंगे।

अ० कथन—तीसरी बार जब सिद्धार्थ घूमने गये तो उनको एक शव मिला। उन्होंने उसी प्रकार अपने सारथी से प्रश्न किये। सारथी ने कहा कि मृत्यु सबके लिए आती है। इन घटनाओं से सिद्धार्थ का मन संसार से उचट गया। एक बार उनको एक संन्यासी मिला। सिद्धार्थ ने उसके संन्यासी होने का कारण पूछा। उसने बतलाया कि वह मोक्ष प्राप्त करने के लिए संन्यासी हो गया है। इस घटना से प्रभावित होकर सिद्धार्थ ने संन्यास लेने की मन में ठान ली।

प्र० (चित्र दिखाकर) इस चित्र में तुम क्या देखते हो ?

स० उ० छात्र वर्णन करेंगे।

अ० कथन—एक दिन रात्रि को सिद्धार्थ अपने पुत्र व स्त्री को सोती हुई छोड़कर घर त्याग कर चले गये।

प्र० सिद्धार्थ ने यशोधरा को क्यों नहीं जगाया था ?

स० उ० यशोधरा उनको जाने नहीं देती ।

अ० कथन—सिद्धार्थ ने सोचा कि यशोधरा के जागने पर मेरे मन में मोह उत्पन्न होगा साथ ही ऐसा भी हो सकता है कि वह मुझे जाने से रोके। इसलिए वे चुपचाप चले गये । उनके इसी जाने को महाभिनिष्क्रमण कहा जाता है ।

श्याम-पट-सारांश

(१) घूमने के समय सिद्धार्थ ने प्रथम बार वृद्ध-पुरुष, द्वितीय बार रोगी तथा तृतीय बार मृतक और चतुर्थ बार संन्यासी को देखा ।

(२) इन घटनाओं का प्रभाव यह हुआ कि वे छोड़कर चले गये ।

पुनरावलोकन—

प्र० सिद्धार्थ को संसार में रमाने के लिए शुद्धोधन ने क्या किया था ?

प्र० सिद्धार्थ किन घटनाओं से प्रभावित होकर वन चले गये थे ।

प्र० सिद्धार्थ घर से चुपचाप क्यों चले गये थे ?

गृह-कार्य—सिद्धार्थ के भ्रमण की घटनाओं पर अपने विचार प्रगट कीजिए ।

पाठ सूत्र—२

दिनाङ्क ४-३-६०
कक्षा ६
विषय भारतीय इतिहास
प्रकरण पानीपत का तृतीय युद्ध
समय विभाग ३
अवधि ४० मिनट
औसत आयु १२ वर्ष

विद्यालय डी० ए० वी० इन्टर कालिज, आगरा
छात्राध्यापक पी० एल० शर्मा

सामान्य उद्देश्य :—

(१) छात्रों को इतिहास का वास्तविक ज्ञान कराकर उनकी बुद्धि का विकास करना।

(२) घटनाओं की एक दूसरे से तुलना करते हुए भूतकाल का वर्तमान काल से सम्बन्ध स्थापित करना।

(३) छात्रों को यह ज्ञान कराना कि इतिहास का क्रमिक विकास किस प्रकार हुआ तथा उस

से हमारी संस्कृति तथा रहन सहन पर क्या प्रभाव पड़ा ?

(४) छात्रों में इतिहास के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम तथा भ्रातृभाव जागृत करना।

(५) मानचित्र पर घटनाओं सम्बन्धी स्थलों तथा राज्यसीमा का ज्ञान कराकर भौगोलिक स्थिति से परिचित कराना।

मुख्य उद्देश्य :—छात्रों को पानीपत के तृतीय युद्ध के विषय में ज्ञान कराना।

सहायक सामग्री :—भारत का तत्कालीन मानचित्र, सेनासहित अहमद शाह अब्दाली का चित्र, भाऊ तथा उसकी सेना का चित्र, युद्ध योजना।

पूर्व ज्ञान :—छात्र पानीपत के प्रथम और द्वितीय युद्ध के विषय में ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं तथा वे भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति से भी परिचित हैं।

प्रस्तावना :—

प्र० पानीपत का प्रथम युद्ध किन-किन शक्तियों में हुआ था ?

स० उ० बाबर तथा इब्राहीम लोदी में हुआ था।

प्र० इस युद्ध का क्या परिणाम हुआ था ?

स० उ० बाबर विजयी हुआ और मुगल साम्राज्य की उसने नींव डाली।

प्र० पानीपत का दूसरा युद्ध किन-किन शक्तियों में हुआ था ?

स० उ० अकबर तथा हेमू में हुआ था।

प्र० इस युद्ध का क्या परिणाम हुआ ?

स० उ० अकबर विजयी हुआ और उसने मुगल साम्राज्य की नींव को दृढ़ किया।

उद्देश्य कथन :—आज हम पानीपत के तृतीय युद्ध के विषय में पढ़ेंगे और देखेंगे कि इस युद्ध से किस प्रकार मराठों की सम्पूर्ण शक्ति का विनाश हो गया और उनकी भारत में राज्य स्थापित करने की आशाओं पर पानी फिर गया।

[पानीपत को मानचित्र में प्रदर्शित किया जायगा]

प्रस्तुतिकरण— प्र० समुद्रगुप्त दिग्विजय करने के लिए किस दिशा से किस दिशा की ओर गया ?

स० उ० उत्तर से दक्षिण की ओर गया।

प्र० अलाउद्दीन का सेनापति मलिक काफूर द्वारसमुद्र तक जीतने के लिए किस दिशा से किस दिशा की ओर गया।

स० उ० मलिक काफूर उत्तर से दक्षिण की ओर गया।

[मानचित्र द्वारा द्वारसमुद्र प्रदर्शित किया जायगा]

प्र० औरंगजेब मराठा शक्ति को समाप्त करने के लिए किस दिशा से किस दिशा की ओर गया।

स० उ० उत्तर से दक्षिण दिशा की ओर गया।

अध्यापक कथन :—इससे स्पष्ट है कि अधिकांश रूप में अभी तक उत्तर के निवासियों ने दक्षिण के निवासियों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयत्न किया, परन्तु पानीपत के तीसरे

युद्ध के कुछ समय पूर्व से दक्षिण निवासियों पर अपना आधिपत्य स्थापित करने के लिए आक्रमण करने प्रारम्भ कर दिये ।

प्र० उस समय दक्षिण में कौनसी शक्ति सबसे प्रबल थी ?

उ० दक्षिण में मराठा शक्ति प्रबल थी ।

अ० कथन— पेशवा बाजीराव ने मराठा शक्ति को प्रोत्साहित करने के लिए कहा था "मुगल साम्राज्य की जड़ पर चोटें करो । शाखाएँ स्वयं गिर पड़ेंगी । यदि मेरी बात मानो तो मैं मराठा झण्डे को अटक की दीवारों पर जाकर गाड़ दूँगा ।"

[मराठा राज्य मानचित्र में दिखाया जायगा]

प्र० उस समय दिल्ली में किस वंश का राज्य था ?

स० उ० दिल्ली में मुगल वंश का राज्य था ।

[दिल्ली मानचित्र में प्रदर्शित किया जायेगा]

प्र० उस समय मुगल साम्राज्य की कैसी दशा थी ?

स० उ० मुगल साम्राज्य शक्तिहीन हो चुका था ।

अ० कथन— मराठे भारत में अपना हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करना चाहते थे । इसी प्रकार रुहेला सरदार नजीबखाँ भी भारत में अफगान राज्य स्थापित करना चाहता था ।

प्र० इस दशा में नजीब खाँ तथा मराठों में कैसे सम्बन्ध हो सकते थे ?

उ० उनमें आपस में शत्रुता हो सकती थी ।

अ० कथन— भारत में मराठों की शक्ति के समान शक्ति-
शाली अन्य कोई शक्ति नहीं थी। नजीबखाँ
की शक्ति उनसे कमजोर थी।

प्र० ऐसी दशा में नजीब खाँ किस उपाय से
मराठों की शक्ति को समाप्त कर सकता था ?

स० उ० किसी अन्य शक्ति से सहायता लेकर।

अ० कथन— नजीबखाँ ने मराठों की शक्ति को नष्ट
करने के लिये दूसरी शक्ति की सहायता
चाही।

प्र० इस समय कौनसा विदेशी मुसलमान भारत
पर आक्रमण कर रहा था ?

स० उ० अहमदशाह अब्दाली भारत पर आक्रमण
कर रहा था।

अ० कथन— नजीब खाँ ने अब्दाली से मित्रता की और
उसको भारत पर आक्रमण करने के लिये
निमन्त्रण दिया।

प्र० इस स्थिति में मराठों के अब्दाली के प्रति
कैसे भाव हो सकते थे ?

स० उ० उन में विरोधी भाव हो सकते थे।

अ० कथन—पेशवा बालाजी राव ने रोघोबा की अध्यक्षता
में १७५८ ई० में एक सेना अब्दाली द्वारा
जीते हुए पंजाब प्रदेश पर आक्रमण करने
के लिये भेजी। राघोबा ने दिल्ली तथा
पंजाब से अब्दाली के अधिकारियों को मार
भगाया और अटक की दीवारों पर मराठा-
झण्डा फहरा दिया।

[अटक, दिल्ली, और पंजाब प्रदेश मानचित्र
में प्रदर्शित किये जायेंगे।]

प्र० अब्दाली अपने खोये हुये भारतीय प्रदेशों को पुनः अपने अधिकार में करने के लिये क्या करता ?

स० उ० अब्दाली भारत पर आक्रमण करता।

अ० कथन—अब्दाली ने भारत पर चढ़ाई की और पंजाब तथा दिल्ली में मराठा फौजों को परास्त करता हुआ अलीगढ़ में आ डटा।
[सेना सहित अब्दाली का चित्र दिखाया जायेगा।]

प्र० इस दशा में मराठा सरदार पेशवा क्या करता।

स० उ० पेशवा अब्दाली का युद्ध में सामना करता।

अ० कथन—पेशवा ने अपने भाई सदाशिवराव भाऊ की अध्यक्षता में अब्दाली के विरुद्ध सन् १७६० ई० में एक सेना भेजी। भाऊ ने समस्त हिन्दू राज्यों को संगठित करने के लिये इस युद्ध को राष्ट्रीय रंग दिया। परन्तु राजपूतों ने फिर भी मराठों का साथ नहीं दिया।
[सदा शिवराव भाऊ तथा उसकी सेना का चित्र दिखाया जायगा।]

प्र० राजपूतों ने मराठों का साथ क्यों नहीं दिया था ?

स० उ०—मराठे पहले राजपूतों का बहुत अपमान कर चुके थे।

अ० कथन—भाऊ मराठा सरदारों की सहायता से मथुरा तथा दिल्ली पर अधिकार करके कुंजपुरा पहुँच गया।

[भाऊ का रास्ता तथा दिल्ली, कुंज-
पुरा और मथुरा मानचित्र द्वारा प्रद-
र्शित किये जायँगे]

प्र० इस समय अब्दाली को क्या करना चाहिये
था ?

स० उ० अब्दाली को भाऊ को पीछा करना चाहिये
था ।

अ० कथन—अब्दाली ने ठीक ऐसा ही किया । उसका
साथ नजीब खाँ ने दिया लेकिन नजीब खाँ
ने "इस्लाम खतरे में है" की आवाज लगा
कर अवध के नवाब शुजाउद्दौला को
भाऊ की ओर से तोड़ लिया ।

[अवध का राज्य मानचित्र द्वारा प्रदर्शित
किया जायगा]

प्र० इस से अब्दाली की शक्ति पर क्या प्रभाव
पड़ा ?

स० उ०—अब्दाली की शक्ति बढ़ गई ।

अ० कथन—भाऊ कुंज पुरा से वापस लौटा और पानी-
पत के मैदान में आकर डट गया ।

प्र० इस स्थिति में अब्दाली क्या करता ?

स० उ० वह भी पानीपत के मैदान में आता ।

अ० कथन—अब्दाली भी पानीपत के मैदान में आकर
डट गया और दोनों की सेनाएं पानीपत के
मैदान में युद्ध के लिए एकत्र हो गईं । दोनों
की फौजें दो महीने तक आमने सामने पड़ी
रहीं ।

[अध्यापक श्यामपट पर युद्ध-योजना समझा
देगा तथा स्पष्ट करेगा कि दोनों सेनाओं

के अपने-अपने घर जाने के मार्ग रुक गये, अतः युद्ध अनिवार्य हो गया ।

अ० कथन—भाऊ के पास रसद की कमी हो गई और उसके पास रसद भी नहीं आ सकती थी, क्योंकि वह उत्तर में था और अब्दाली दक्षिण में था । अब्दाली को दिल्ली से रसद मिलती रही । भाऊ की सेना भूख से मरने लगी ।

प्र० ऐसी स्थिति में भाऊ क्या करता ?

स० उ० भाऊ आक्रमण करता ।

अ० कथन—भाऊ ने १४ जनवरी १७६१ ई० को लगभग ६ बजे दिन के अब्दाली की सेना पर आक्रमण कर दिया । ६ घन्टे तक घमासान युद्ध चला । इस बीच में भाऊ का भतीजा विश्वासराव मारा गया ।

प्र० भतीजे की मृत्यु का भाऊ पर क्या प्रभाव पड़ा ।

स० प्र० भाऊ को उसकी मृत्यु का बड़ा दुख हुआ ।

अ० कथन—भाऊ क्रोध तथा आवेग में आकर अब्दाली की सेना पर टूट पड़ा परन्तु वह भी मारा गया ।

प्र० सेनापति के मरने पर सेना की क्या दशा होती है ?

स० प्र० सेना हताश होकर भागने लगती है ?

अ० कथन—अब्दाली ने मराठों की भागती हुई सेना पर प्रबल आक्रमण किया जिससे उसकी विजय हुई ।

प्र० अब्दाली की जीत की सूचना जब पेशवा को मिली होगी तो उसने क्या किया होगा ?

स० प्र० पेशवा ने अब्दाली की सेना पर आक्रमण करने के लिए सोचा होगा।

अ० कथन—पेशवा एक सेना लेकर अब्दाली से लड़ने के लिए चल दिया लेकिन नर्मदा नदी के पास उसको एक सिपाही ने एक पत्र दिया पत्र में लिखा था :—

"दो मोती टूट गये हैं; सत्ताईस स्वर्ण मुद्राएँ खो गईं और चाँदी तथा ताँबे की हानि का कोई अनुमान ही नहीं।"

प्र० इस कथन को पढ़कर बताओ कि मराठा सेना में दो मोती कौन-कौन थे ?

स० उ० सदा शिवराव व भाऊ तथा विश्वासराव थे।

प्र० इस घटना का पेशवा पर क्या प्रभाव पड़ा ?

स० उ० इससे पेशवा को बड़ा दुख हुआ।

अ० कथन—पेशवा बड़ा दुखी हुआ और थोड़े दिनों पश्चात् वह इसी दुख में परलोक सिधार गया। इस युद्ध से मराठों की शक्ति को बड़ा धक्का लगा और भारत में साम्राज्य स्थापित करने की आशाओं पर पानी फिर गया। अब्दाली थोड़े दिन दिल्ली में रहकर और नजीबखाँ को दिल्ली का अधिकारी बनाकर तथा बहुत-सा धन लेकर वापिस

चला गया। परन्तु उसकी इतनी हानि हुई कि भारत में नजीब खाँ की सहायता करने फिर नहीं आया।

श्याम पट सारांश

(१) **पक्ष**— अब्दाली और मराठा सरदार सदाशिवराव भाऊ।

(२) **कारण**—(अ) नजीबखाँ तथा मराठे दोनों भारत में अपना-अपना राज्य स्थापित करना चाहते थे।

(ब) अब्दाली भारत का धन चाहता था।

(स) नजीबखाँ मराठों को परास्त करने के लिए अब्दाली से मिल गया।

(३) **वर्णन**— पानीपत के मैदान में यह युद्ध १४ जनवरी १७६१ ई० को हुआ और जिसमें भाऊ तथा विश्वासराव दोनों मारे गये।

(४) **परिणाम**—(अ) अब्दाली तथा नजीबखाँ विजयी हुए।

(ब) इस युद्ध से मुगल साम्राज्य प्रायः समाप्त हो गया।

(स) मराठों का हिन्दू साम्राज्य स्थापन का स्वप्न अधूरा ही रह गया।

पुनरावलोकन—प्र० अब्दाली को भारत पर आक्रमण करने के लिए किसने बुलाया था?

प्र० नजीबखाँ ने अब्दाली को क्यों बुलाया था?

प्र० राजपूतों ने मराठों का साथ क्यों नहीं दिया था ?

प्र० पानीपत के तृतीय युद्ध का मराठा-शक्ति पर क्या प्रभाव पड़ा ?

गृह कार्यः— पानीपत के तृतीय युद्ध की योजना बनाइये तथा संक्षेप में इसके कारणों तथा परिणामों पर प्रकाश डालिये ।

परिशिष्ट—२

जूनियर स्तर के लिये प्रश्न-पत्र

भारतीय इतिहास

पूर्णांक—१००
समय—२ घण्टा

(१) एक शब्द में निम्नलिखित प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लिखो— २०

(i) जैनधर्म को किसने चलाया था ?

(ii) अशोक ने किस धर्म का अधिक प्रचार किया था ?

(iii) गुप्त राजाओं में सबसे प्रमुख सम्राट् कौन था ?

(iv) ह्वेनसांग किसके समय में आया था ?

(v) दिल्ली का प्रथम सुल्तान कौन था ?

(vi) बाबर ने पानीपत में किसके विरुद्ध युद्ध किया था ?

(vii) १५७६ ई० में राणाप्रताप तथा मानसिंह में किस स्थान पर युद्ध हुआ था ?

(viii) ताजमहल किस स्थान पर स्थित है ?

(ix) महात्मा गान्धी की कब मृत्यु हुई थी ?

(x) भारतवर्ष का प्रथम राष्ट्रपति कौन था ?

(२) निम्नलिखित कथनों को पढ़ो और सत्य के सम्मुख ✓ और असत्य के सामने × का चिह्न लगाओ— १६

(i) अशोक का जन्म गौतम बुद्ध से पूर्व हुआ था।
(ii) चन्द्रगुप्त मौर्यवंश का प्रथम सम्राट् था।
(iii) चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य गुप्त वंश का अन्तिम सम्राट् था।
(iv) अकबर इस्लाम धर्म का कट्टर अनुयायी था।
(v) राणाप्रताप ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी।
(vi) गुरुनानक ने सिक्ख धर्म चलाया था।
(vii) औरंगजेब ने दाराशिकोह का बध कराया था।
(viii) गान्धीजी ने असत्य और हिंसा का पाठ पढ़ाया था।

(३) निम्नलिखित प्रत्येक वाक्य के सम्मुख कोष्ठक में लिखे शब्दों में से वह शब्द चुनो जो कि कथन को सत्य तथा उपयुक्त बनाता है— १२

(i) पृथ्वीराज चौहान ने (सीता, द्रोपदी, रजिया, संयोगिता) का अपहरण किया था।
(ii) नूरजहाँ का पति (शाहजहाँ, अकबर, जहाँगीर, दाराशिकोह) था।
(iii) जजिया एक (खिताब, टैक्स, पद) था।
(iv) शिवाजी ने अफजलखाँ का बध (पूना, आगरा, दिल्ली, प्रतापगढ़, बीजापुर, रायगढ़) में किया था।
(v) बाबर तथा राणासांगा का युद्ध (हल्दी घाटी, पानीपत, खानवा, घाघरा, चौसा) के मैदान में हुआ था।
(vi) शाहजहाँ ने मोती मस्जिद (लाहौर, दिल्ली, आगरा, काश्मीर) में बनवाई थी।

(४) सबसे उपयुक्त उत्तर के सम्मुख × का चिह्न लगाओ। ६

(i) शिवाजी औरंगजेब के दरबार में मूर्छित हो गये थे, क्योंकि

उनको यह बीमारी थी।

वह अत्यन्त दुर्बल थे।

दरबार में वायु आने का कोई प्रबन्ध नहीं था।

वह अपमान नहीं सह सके थे।

(ii) इब्राहीम लोदी पानीपत के प्रथम युद्ध में हार गया था, क्योंकि

उसके पास सेना कम थी।

सेना का संगठन ठीक नहीं था।

सेनापति अयोग्य थे।

छापामार रणनीति को नहीं अपनाया था।

वह एक अच्छा सङ्गठनकर्त्ता तथा योद्धा नहीं था।

(५) रिक्त स्थानों की पूर्ति करो— १०

(i) वैदिक काल में—को समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

(ii) सिन्धु घाटी की सभ्यता के लोग—ईंटों का प्रयोग करते थे।

(iii) मुहम्मद तुगलक ने—का सिक्का चलाया।

(iv) अकबर ने—धर्म चलाया।

(v) सुभाषचन्द्रबोस ने—फौज बनायी थी।

(६) निम्नलिखित नामों को काल-क्रम के अनुसार लिखो— ६

महात्मागान्धी

राजाराम मोहनराय

अशोक

हर्ष

अकबर

रजिया बेगम

(७) मानचित्र में निम्नलिखित स्थानों को दिखाओ— १०

अयोध्या, पाटलिपुत्र, दिल्ली, पानीपत, चित्तौड़, आगरा, खानवा, दौलताबाद, अहमदाबाद, फतहपुरसीकरी।

(८) औरंगजेब या अकबर के चरित्र के विषय में अपने विचार संक्षेप में प्रकट करो ? १०

(९) मुहम्मद तुगलक के नवीन प्रयोगों के विषय में अपने विचार प्रगट कीजिये ? १०

उच्च स्तर के लिए प्रश्न-पत्र

भारतीय इतिहास

पूर्णाङ्क—१००
समय—३ घण्टा

टिप्पणी—केवल पाँच प्रश्न करने हैं। प्रत्येक खण्ड से एक प्रश्न करना अनिवार्य है जिसमें कम से कम एक प्रश्न *चिन्ह वाला करना है। सब प्रश्नों के अंक समान हैं।

खण्ड १

(१) निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो—

(i) चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन प्रबन्ध;
(ii) नालन्दा विश्वविद्यालय;
(iii) कालीदास;
(iv) मुस्लिम सभ्यता का भारतीय सभ्यता पर प्रभाव;
(v) शेरशाह का शासन प्रबन्ध;
(vi) अकबर की राजपूत नीति;

(vii) दीनइलाही;
(viii) स्थायी प्रबन्ध;
(ix) दोहरा शासन प्रबन्ध;
(x) १६४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन।

(२) सिन्धु घाटी की सभ्यता भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास पर क्या प्रकाश डालती है?

या

भारत की भौगोलिक परिस्थितियों ने भारतीयों को कहाँ तक प्रभावित किया है?

*(३) सिकन्दर की रणनीति के गुणों का वर्णन करते हुए झेलम नदी के युद्ध की योजना बनाओ।

(४) अशोक के सम्राज्य को मानचित्र में प्रदर्शित करो तथा उसमें विभिन्न मौर्य सम्राटों के द्वारा जीते हुए प्रदेशों को दिखाओ।

खण्ड २

(५) "मुहम्मद तुगलक एक पागल बादशाह था" विवेचना कीजिये।

*(६) अकबर के राज्य की समय-तालिका निम्नलिखित तिथियों से बनाओ और घटनाओं को उनके सम्मुख लिखो—

१५५६, १५६२, १५६४, १५७६, १५८२, १५६६, १५७२, १५७६, १६००, १६०५.

या

निम्नलिखित तिथियों को समय-रेखा पर घटनाओं सहित रखो—

१६१५, १६२७, १६३०, १६३६, १६५८, १६६६, १६८०, १६६०, १७०७.

*(७) मानचित्र में मुगलसाम्राज्य की सीमा निम्नलिखित तिथियों के अनुसार दिखाओ—

१५५६, १६०५· १७०७.

(८) मुगलकाल के लोगों के जीवन की वर्तमान काल के लोगों के जीवन से तुलना कीजिये।

खण्ड ३

(९) 'वारेन हेस्टिंग्ज महाभियोग का अधिकारी था' इस कथन की पुष्टि कीजिए।

*(१०) ब्रिटिश सत्ता के विस्तार को निम्नलिखित तिथियों में मान-चित्र के द्वारा प्रदर्शित कीजिये—

१७६५, १८००, १८२३, १८५५, १९१०.

या

निम्नलिखित तिथियों से समय-तालिका घटनाओं सहित तैयार करो—

१७५७, १७६१ १७७३, १७९३, १८०२ १८१८, १८५३, १८५४, १८५७, १८५८, १८८५.

(११) "राजाराम मोहन राय भारतीय पुनुरुत्थान के पिता थे" इस कथन की विवेचना कीजिये।

(१२) "लार्ड कर्जन दूरदर्शी तथा उच्च दृष्टिकोण का मनुष्य था लेकिन उसके विषय में गलत निर्णय दिया गया है।" इस कथन को स्पष्ट कीजिये और बताइये कि लार्ड कर्जन के चरित्र के विषय में यह कथन कहाँ तक सत्य है ?

(१३) निम्नलिखित नामों को कालानुक्रम के अनुसार रखो—

शाहजहाँ
महात्मा गांधी
हर्ष वर्द्धन
समुद्र गुप्त
लार्ड क्लाइव
अशोक

अकबर
शिवाजी
कालीदास
पृथ्वीराज चौहान

(ii) निम्नलिखित को उपयुक्त ढंग से रखिये—

अकबर की मृत्यु	२३० ई० पूर्व
शिवाजी की मृत्यु	१७०७ ई०
औरंगजेब की मृत्यु	१९४८ ई०
गान्धीजी की मृत्यु	१६०५ ई०
अशोक की मृत्यु	१६८० ई०

परिशिष्ट—३

छत्रपति शिवाजी का कार्यकाल

१६५०
१६५५
→ जवाली के किले पर अधिकार—अफजलखाँ की सेना का विनाश।
→ अफजलखाँ की प्रतापगढ़ में मृत्यु
१६६०
→ शाइस्ताखाँ पर अचानक आक्रमण
→ सूरत की लूट—शाहजी की मृत्यु
१६६५
→ पुरन्दर की सन्धि
→ शिवाजी का आक्रमण
१६७०
→ तानाजी ने सिहगढ़ पर अधिकार किया
→ रामदास जी से मिलन
→ रायगढ़ में शिवाजी का राज्यभिषेक—दक्षिणी चढ़ाई
१६७५
१६८०
→ रायगढ़ में शिवाजी की मृत्यु।

क्रम-बद्ध पाठों में प्रयोग की जा सकने वाली समय-रेखा

वर्ष	घटना
१७००	
२	
४	
६	→ औरंग की मृत्यु—बहादुरशाह का राज्याभिषेक
८	→ शाहु का मुक्तिकरण
१७१०	→ सिखों की हार
१२	→ जहाँदरशाह का राज्याभिषेक—बालाजी विश्वनाथ पेशवा बना।
१४	→ फरुखसियर को गद्दी पर बिठाना सैयद भाइयों के द्वारा।
१६	→ ईस्ट इडिया कम्पनी को ग्राण्ट प्रदान की गई।
१८	→ फरुखसियर को गद्दी से हटाना और सैयद भाइयों द्वारा मुहम्मदशाह को गद्दी पर बिठाना।
१७२०	→ सैयद भाइयों का पतन
२२	→ हैदराबाद तथा अवध का उत्थान स्वतन्त्र राज्य के रूप में
२४	
२६	→ सआदतखाँ तथा चीह किलच खाँ के नेतृत्व
२८	
१७३०	
३२	
३४	→ मराठों का मालवा पर अधिकार
३६	→ नादिरशाह का आक्रमण
३८	→ बेसीन पर मराठों का अधिकार
१७४०	→ बालाजी बाजीराव पेशवा
४२	→ ग्वालियर, इन्दौर, नागपुर, बड़ौदा में मराठों की राजधानियाँ स्थापित हुईं।
४४	
४६	
४८	— शाहु की मृत्यु, पूना में सत्ता की स्थापना. निजाम की मृत्यु
१७५०	

शिखर
बाबर
हुमायूं
अकबर
जहाँगीर
शाहजहाँ
औरंगजेब - अन्तिम मुगल सम्राट
१५२६
१५३०
१५५६
१६०५
१६२७
१६५८
१७०७
१७६१
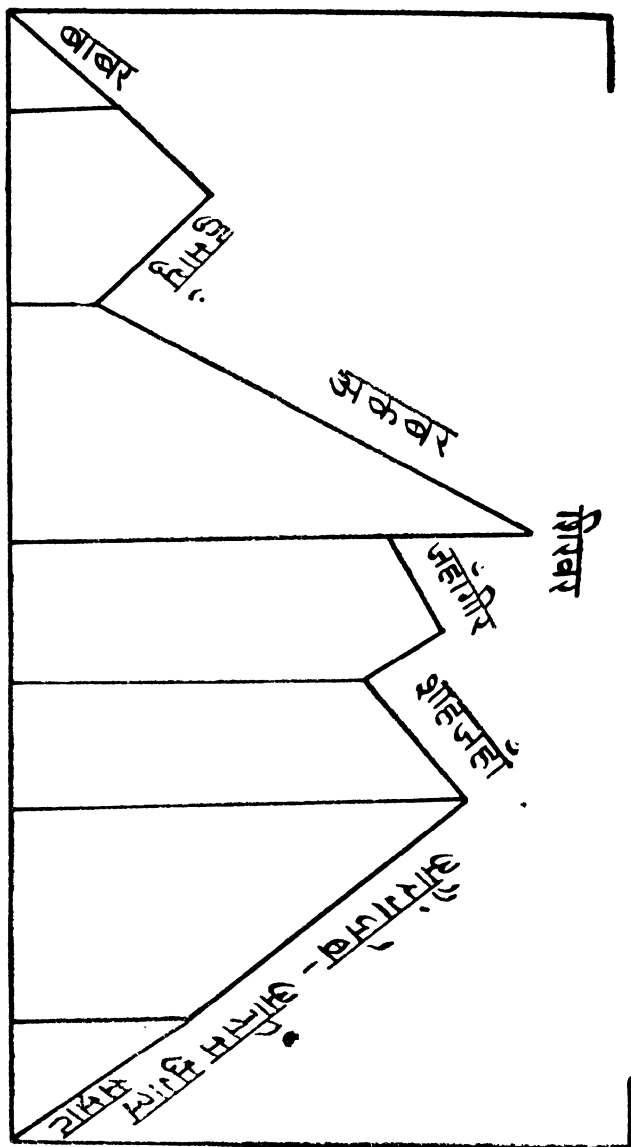
सन् १६६१ के लिये सम्भावित प्रश्न

1. "The aim of teaching History in schools is to make the pupils good citizens." How far do you agree with this view ? What according to you, should be the aim of teaching History in Schools ?
2. Discuss the aims of teaching of History and State how best they can be realized in the Schools of our country.
3. Name the different methods of teaching History. State at what stage each can best be used and why ?
4. Distinguish between the Chronological and Concentric presentation of History. Discuss the advantages and disadvantages of each. What methods would you follow in presenting India History to classes IX and X. Illustrate your answer.
5. How far is dramatitization an effective aid to the teaching of History. Illustrate with reference to any period of Indian History.
6. Why is the teaching of Stories from World-History to pupils of average age 9 interesting but difficult ? Explain with reference.

7. In which period of Indian History would your local history work prove most useful to you as History Teacher in that locality ? Indicate clearly the use that would make of it in the teaching of National History.

8. Write a short essay on 'an Ideal History Teacher'.

9. 'Examination in History is defective at present.' Explain this and give suggestions for its improvement.

10. Describe the value of the following in the teaching of History—
    (a) Models
    (b) Excursions.
    (c) Text-book
    (d) Maps
    (e) Pictures
    (f) Timelines and Time-Charts.
    (g) Blackboard
    (h) Radio & films

11. Draw up a lesson plan on any topic for class IX.

विशेष अध्ययन योग्य पुस्तकें

Beales, A. C. F. :—'A guide to the teaching of History in Schools; University of London Press, 1937.

Findlay-Johnson—'The Dramatic Method of Teaching.' London Nisbet, 1911.

Ghate, V. D. :—'The Teaching of History.' Oxford University Press, 1940.

Ghose, K. D. :—'Creative Teaching of History.' Oxford University Press, 1951.

Happold, F. C. :—'The Approach to History.' London, Christophers, 1928.

Hasluck, E. L. :—'The Teaching of History' Cambridge University Press, 1926.

Hill C. P. :—'Suggestions on the Teaching of History.' U. N. E. S. C. O.

Jarvis, C. H. :—'The Teaching of History.' Oxford University Press, 1917.

Johnson H. :—'Teaching of History' Macmillan Company New York, 1950.

J. J. Findlay :—'History and its place in Education.' London University Press.

Klapper, P. :—'The Teaching History' (Black 1910)

Keatinge, M. W.:—'Studies in Teaching of History.' (A & C. Black)

Mac Nee, E. A. :—'Instruction in Indian Secondary Schools.' Oxford University Press, 1950.

Worts :—'The Teaching of History in Schools.' A New Approach, London, Heinemann, 1935.

—:❀❀:—